इटली का शहीद

(महात्मा सावोनारोला)

लेखक—

प्रोफ़ेसर वेनीमाधव अग्रवाल एम० ए०

नालन्द कालेज बिहार

प्रकाशक—

हिन्दी-साहित्य-मण्डल

बाज़ार सीताराम

देहली

[प्रथम संस्करण] १९३३ [मूल्य सजिल्द २)

प्रकाशक—
हिन्दी-साहित्य-मण्डल
बाज़ार सीताराम, देहली।

मुद्रक—
बाबू हरनामदास गुप्त
भारत प्रिंटिंग वर्क्स
बाज़ार सीताराम देहली।



महात्मा सावोनारोला

निवेदन

महात्मा सावोनारोला के दर्शन करने के लिये हिन्दी-संसार को निमन्त्रित करते हुए मेरे हृदय में उत्साह के भाव उठ रहे हैं। यह उत्साह मुझे साहस प्रदान करता है कि मैं उन्हें एक सुदूर विदेश के ४५० वर्ष पहले के युग में लेजाऊँ। वहां उन्हें भिन्न जाति, भिन्न भाषा, भिन्न संस्कृति, भिन्न धर्म तथा वातावरण से परिचय करने का कष्ट उठाना पड़ेगा। किन्तु वहां पहुंच कर वे एक ऐसे धर्मवीर तपस्वी के दर्शन करेंगे जो कि हमें स्वदेश के साधु-महात्माओं का स्मरण दिलावेंगे। तब हम देखेंगे कि विविध बाह्य भिन्नताओं के ऊपर मानव व्यक्तित्व में एक ऐसा समान तत्व भी होता है जिसका अभिनन्दन सब सहृदय पुरुष कर सकते हैं। सावोनारोला का जीवन हमें बतलाता है कि पुण्य-जीवन की आराधना, मनुष्य-जाति की सेवा, ईश्वर की सच्ची उपासना है। मानव-जीवन एक ईश्वरीय अनुग्रह है और मनुष्य का यह परम कर्त्तव्य है कि उसे ईश्वर की सेवा के लिये ही अर्पित करे। इस पावन उद्देश्य की उपासना में साधन सिद्धि के अंग हैं, इसलिये आशा निराशा, विजय पराजय, का प्रश्न धर्मवीर के लिये उठता ही नहीं।

इतिहास के अध्ययन से उत्पन्न सावोनारोला की अस्पष्ट स्मृति मेरे हृदय में बहुत दिनों से बनी थी। सन् १९३० ईस्वी के मई मास में मुझे बड़ौदा के प्रसिद्ध पुस्तकालय में जाने का सौभाग्य प्राप्त

हुआ। उसके अध्यक्ष श्री न्यूटन मोहनदत्त लोगों के लिये अध्ययन की सामग्री जुटाने में पटु ही नहीं, वरन् अति उत्सुक भी रहते हैं। ज्योंही मैंने यह इच्छा प्रगट की कि मैं सावोनारोला का अध्ययन करना चाहता हूँ त्योंही उन्होंने पुस्तकों की एक सूची तैयार कर दी और उनके विशाल पुस्तकालय में जो ग्रन्थ उस विषय के थे उन्हें भी मंगवा दिया। मैं उत्साह के साथ उनका अध्ययन करने लगा और अध्ययन के साथ २ हिंदी में सावोनारोला की जीवनी लिखने की इच्छा भी बलवती होने लगी। जून के अंत में जब मैं बड़ौदा से लौटने लगा उस समय श्री दत्त महाशय ने मुझे सावोनारोला सम्बंधी पुस्तकें साथ ले जाने की आज्ञा भी दे दी। इन सब उपकारों के लिये मैं उन्हें हृदय से धन्यवाद देता हूँ।

यह पुस्तक पूर्णरूपेण ऐतिहासिक है। इसमें मैंने १॥ वर्ष तक कठिन परिश्रम किया है। बंधुवर श्री हरनामदास जी गुप्त ने उस के प्रकाशन का भार लेकर मुझे अत्यंत अनुग्रहीत किया है।

संसार के एक स्मरणीय तेजस्वी महापुरुष की यह जीवनी यदि हिंदी साहित्य की एक रोचक, सुपठन एवं शिक्षाप्रद पुस्तक बन सकी तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूंगा।

नालन्द कालेज विहार
२७-७-३३

बेनीमाधव अग्रवाल

भूमिका

यूरोप महाद्वीप का इटली नामक देश सावोनारोला का कार्य क्षेत्र है। उसका जीवन-काल १५ वीं शताब्दि के उत्तरार्द्ध के अन्तर्गत है। उस देश और युग को कौन २ सी विचारधारायें, कौन २ से घटना-प्रवाह, आन्दोलित कर रहे थे, उस समय की क्या २ विशेषतायें थीं, इन्हें भली-भांति समझ लेने पर ही हम सावोनारोला के जीवन-कार्य एवं विचारों की प्रेरक-शक्तियों को तथा उसके व्यक्तित्व की महानता को समझ सकेंगे। अतएव यह आवश्यक है कि हम इटली और विशेषकर फ्लोरेन्स की अवस्था का दिग्दर्शन करें, और यह जानने का प्रयत्न करें कि कहां तक इस महापुरुष के व्यक्तित्व पर देश और काल का प्रभाव पड़ा था, और कहां तक यह अपनी अपूर्व प्रतिभा से अपने जमाने को बदल देना चाहता था।

१५ वीं शताब्दि यूरोपीय इतिहास में पुनर्जागृति का युग है। इटली इसकी जन्म-भूमि थी। इस युग में नये २ आविष्कार हुए, नवीन २ विचार और आदर्श मनुष्यों के जीवन को प्रभावित करने लगे। कला की अनुपम उन्नति हुई। ज्ञान और साहित्य सम्पन्न हुए। लोगों के हृदय में नयी उथल-पुथल, नूतन उत्साह और नयी आशायें उत्पन्न होने लगीं। नव-जीवन का प्रादुर्भाव हुआ। पुनर्जागृति का यह आन्दोलन इटली से यूरोप के अन्य

देशों में फैला, १५वीं शताब्दि के अन्त में तो इसका प्रभाव चरम-सीमा तक पहुँच गया। इसी के साथ २—इसी के कारण—यूरोपीय इतिहास के मध्यकालीन युग का अन्त तथा अर्वाचीन युग का उदय होता है।

अन्तर्राष्ट्रीयता के भाव तथा रोमन पोप के आधिपत्य में पश्चिमी यूरोप की धार्मिक एकता—ये मध्य-युग की दो विशेषतायें थीं। यह धार्मिकताप्रधान युग था। उस समय सन्यास के सिद्धान्त का बहुत आदर होता था। शास्त्र-विधान एवं पौराणिकता का सर्वत्र शासन था। परम्परागत रूढ़ियों तथा अन्धविश्वासों ने मनुष्यों के बुद्धि-विवेक को सब तरफ से जकड़ रखा था। परन्तु पुनर्जागृति का एक प्रधान सन्देश था—विचार स्वातन्त्र्य, बुद्धिवाद। कला, साहित्य, राजनीति, आचार-नीति, धर्म आदि के क्षेत्रों में, मनुष्य की बुद्धि एवं प्रवृत्तियों को शास्त्रों और रूढ़ियों की शृङ्खलाओं से मुक्त करना, उसका उद्देश्य था। पाश्चात्य सभ्यता की जन्म-भूमि यूनान के सदियों के विस्मृत ज्ञान का पठन-पाठन असीम उत्साह के साथ प्रारम्भ हुआ और इससे विचार-स्वातंत्र्य के आन्दोलन को एक अत्यन्त प्रभावशाली प्रेरणा मिली। यूनानी कला, साहित्य, दर्शन आदि के अध्ययन का राग और लोकप्रियता इतनी बढ़ी, कि उसके बिना लोग शिक्षा और संस्कृति को अधूरी समझने लगे। सत्य, स्वातन्त्र्य एवं सौन्दर्य के आदर्शों का प्रचार होने लगा। विद्वान बड़ी उत्सुकता से हस्तलिखित, मौलिक अथवा प्रामाणिक ग्रन्थों की खोज करने लगे। इसी समय मुद्रण का भी आविष्कार हुआ, जिससे कि पुस्तकों के प्रचार में

बड़ी सहायता मिलने लगी। इटली के विश्व-विद्यालयों में बड़े उत्साह के साथ यूनानी ज्ञान की शिक्षा दी जाने लगी। दूसरे देशों के विद्वान वहां आकर अध्ययन करते और स्वदेश लौटकर उस ज्ञान को फैलाते। राजे-महाराजे, धनी-महाजन, महन्त-पुरोहित, सभी इस आन्दोलन की सहायता करने में अपना गौरव समझते। इटली के नगरों ने इसमें बड़ी स्फूर्ति दिखलाई। वे इसके प्रचार में एक दूसरे से आगे बढ़ने की चेष्टा में व्यग्र रहते। इन नगरों में फ्लोरेंस का प्रधान स्थान था।

यूनानी सभ्यता का उत्थान और विकास ईसाइयत की उत्पत्ति से सदियों पहिले हुआ था। किन्तु मध्य-कालीन सभ्यता पर ईसाई-धर्म की गहरी छाप लगी थी। अतएव दर्शन व सदाचार-नीति पर पुनर्जागृति के अभिभावकों के जो विचार थे, वे ईसाई-धर्म के समय-मान्य विचारों से अनेक अंशों में भिन्न थे। मध्य-कालीन शास्त्रवाद एवं रूढ़िवाद के विरुद्ध जो आन्दोलन अब शुरू हुआ, उसके प्रवाह में यूनानी मानवत्ववाद का इटली में ऐसा अन्ध-अनुकरण होने लगा जिससे कि धार्मिक भावों की अवहेलना होने लगी। साथ ही साथ अब ईसाईयों की आदि धर्म-पुस्तक का अध्ययन भी किया जाने लगा। यह यूनानी भाषा में लिखी थी। विद्वान् लोग धार्मिक सिद्धान्तों एवं विधानों को तर्क एवं प्रामाणिकता की कसौटी पर कस कर जांचने लगे। वाद-विवाद और विरोध प्रारम्भ हुआ। इसने आगे चलकर वह उग्र रूप धारण कर लिया जिससे कि ईसाई-संप्रदाय सदा के लिये दो परस्पर विरोधी भागों में बंट गया।

किन्तु इटली में इस आन्दोलन का एक बुरा परिणाम यह हुआ कि लोग धर्म व सदाचार के प्रति प्रगट रूप से उदासीन बन गये। मध्य-युग में आत्म-संयम, सन्यास,तपस्विता आदि को कम से कम सिद्धान्त रूप में बहुत महत्व प्राप्त था। किन्तु नई रोशनी ने परंपरागत धार्मिकता के प्रति ऐसी उदासीनता उत्पन्न कर दी कि लोगों ने उपरोक्त सिद्धान्तों के आवरण को भी फाड़ डाला। उनके मानवतत्ववाद का सदाचारवाद से कोई सम्बन्ध ही नहीं रहा। श्रेयस्कर तो यही था कि पुनर्जागृति के इस युग में ईसाई पुरोहितों, महन्तों, भिक्षुओं, आदि के व्यसन, व्यभिचार एवं सांसारिकता के विरुद्ध आवाज उठाई जाती और धार्मिक पवित्रीकरण एवं चरित्रसुधार का आन्दोलन भी उसके अन्तर्गत होता। किन्तु ऐसा नहीं हुआ, प्रत्युत उनके प्रदर्शन में और भी अधिक निर्लज्जता व नग्नता को उत्तेजना मिली। सौंदर्य विलासिता को, तथा विचार-स्वातंत्र्य उच्छृंखलता को, प्रोत्साहन देने लगा। सावोनारोला ने इन प्रवृत्तियों के विरुद्ध सिंहनाद किया। उसने धार्मिक पवित्रता तथा सदाचार के लिये आवाज उठाई। पुनर्जागृति के विचारों को धर्म व सदाचार-नीति की कसौटी पर कसकर, वह उन्हें एक नया रूप देना चाहता था। सावोनारोला की विद्वत्ता, उसका गम्भीर विस्तृत अध्ययन तथा आलोचनात्मक दृष्टिकोण—ये सब गुण पुनर्जागृति की उपज थे। किंतु वह उसकी सभी प्रवृत्तियों का अन्ध-भक्त नहीं था। इसलिये हम उसके तेजस्वी व्यक्तित्व को तत्कालीन विलासिता, पाखण्ड एवं धार्मिक उदासीनता के विरुद्ध घोर विद्रोह के भावों से ओतप्रोत

पाते हैं। नवयुग के प्रकाश में इस सन्यासी ने ईसाई-धर्म के तत्वों की महानता को समझा था। वह चाहता था, कि सभ्यता के इस नवजागरण में पुण्यशीलता को उच्चासन मिले। इसलिये अपने युग के अधःपतन के विरुद्ध किसी दैवी प्रतिक्रिया का मूर्तिमान प्रतिनिधि बन कर, साबोनारोला इतिहास के रंगमच पर प्रगट होता है।

मध्ययुग में इटली की राजनीतिक अवस्था बहुत खराब थी। महान् रोमन साम्राज्य के पतन के बाद ही से इटली यूरोप की शक्तिशाली जातियों के आक्रमण का क्षेत्र बन गया। गॉथ, जर्मन, फ्रैंक आदि बर्बर जातियों के हमले हुए। ११ वीं शताब्दि के आरंभ में अरब की सेरासन जाति के लोगों ने सिसली द्वीप पर अधिकार ज़माया और इटली पर धावा कर वहां बसने लग गये। इसके बाद नार्मन जाति के आक्रमण हुए। ये लोग पोप की मातहती में मध्य-इटली में बस गये। इन्होंने सेरासन लोगों को हरा कर सिसली को जीत लिया। १० वीं से १२ वीं सदी तक रोमन पोपों तथा जर्मन सम्राटों के बीच बराबर युद्ध चलता रहा और अनेक सेनाओं ने इटली पर चढ़ाई की। परन्तु १३ वीं सदी के बाद से लगभग २०० वर्षों तक इटली बाहरी हमलों से बचा रहा। फिर भी उसकी राजनीतिक अवस्था नहीं सुधरी। देश छोटे २ सैकड़ों राज्यों में बंटा हुआ था। कोई स्वतंत्र थे, कोई नाममात्रके लिये जर्मन सम्राट् अथवा पोप का आधिपत्य मानते थे। कहीं राजाओं का शासन था, कहीं सम्राट् व पोप की दी हुई उपाधियों से विभूषित सरदार राज्य करते थे, कहीं गण-तंत्र था, कहीं प्रजा-

सत्ता थी। इन सब में परस्पर वैमनस्य व ईर्ष्या के भाव बने रहते थे, आपस में लड़ाइयां भी खूब होती थीं। स्वायत्त संस्थाओं व प्रजातन्त्रों में दलबन्दियां थीं, गृहयुद्धों की खूब भरमार रहती थी। इटली के लोगों में इस समय जातीय व राजनीतिक एकता के भावों की बहुत कमी थी। जो भक्ति और अभिमान उन्हें अपने देश के प्रति दिखलाना चाहिये था, उसे उन्होंने अपने नगर व गण के लिये ही रख छोड़ा था। उनकी सारी शक्ति राष्ट्र के एकीकरण व संगठन में नहीं, वरन् अपने सीमित क्षेत्र में ही खर्च होती थी। इसका परिणाम यह हुआ कि देश तो निर्बल बना रहा, परंतु वहां के नगर-जीवन को अपूर्व प्रोत्साहन मिला।

इटली के नगरों ने पुनर्जागृति में उल्लेखनीय भाग लिया। उसकी सहायता करने में वे एक दूसरे के प्रतिस्पर्धी बनगये। इससे उस आन्दोलन का अधिकाधिक प्रचार हुआ। कला की उन्नति के कारण नगरों में अच्छी २ इमारतें बनाई गईं। सर्वत्र मूर्तिकारों, चित्रकारों, शिल्पियों और कवियों का सम्मान होने लगा। विश्वविद्यालयों की वृद्धि हुई। वहां ग्रीक-विद्वानों का स्वागत किया जाने लगा। इस बौद्धिक उन्नति के साथ २ नगरों की आर्थिक उन्नति भी हुई। उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन मिला, शिल्प-वाणिज्य तथा व्यापार की बढ़ती हुई। इसका एक नतीजा हुआ—व्यापारियों तथा सेठ-साहूकारों के दल की वृद्धि। इनकी संगठित संस्थायें थीं। अनेक राज्यों में तो इनकी सत्ता इतनी बढ़ी कि शासन भी इनके हाथों में आगया—प्रजासत्ता धनिकों की सत्ता में बदल गई। धनिक-मण्डली भी विविध गणों व घरानों में

विभाजित थी। अतएव इसमें भी कई दल बनगये और सत्ता के लिये आपस में झगड़ने लगे।

विविध राज्यों में युद्ध चलते ही रहे। इससे भी गणों व नगरों के प्रजातन्त्रात्मक भावों को हानि पहुँची। क्योंकि युद्ध-काल में राज्य-रक्षा व सैन्य-संचालन के लिये किसी योग्य नेता की आवश्यकता होती है और ऐसी परिस्थिति बहुत दिन तक बनी रहने से उसकी प्रधानता बढ़ने लगती है। विशेषकर उत्तर इटली के स्वायत्त राज्यों में ऐसा ही हुआ। यद्यपि उनका उत्थान प्रजातन्त्र के भावों को लेकर हुआ था, यद्यपि वे इन भावों का बहुत आदर करते थे, तथापि राजनीतिक परिस्थिति की आवश्यकताओं के कारण, वहां एकतन्त्र शासन की स्थापना होने लगी। कहीं गृह-कलह अथवा धनिक-सत्ता के कारण भी एक नेता के शासन को उत्तेजना मिली। जनसाधारण के कार्यकुशल नेताओं ने धनवानोंसे सत्ता छीन ली और गृह-कलह को कुचल तथा सुव्यवस्था की स्थापना कर स्वयं सर्वेसर्वा बन गये। ऐसे शासक अपनी लोकप्रियता को बनाये रखने तथा शत्रुओं को निर्मूल करने के लिये अपनी तलवारको म्यान में नहीं रख सकते थे। वे छोटे २ राज्यों को जीतकर अपने राज्य में मिलाने लगे। इस प्रकार कालांतर में कितने ही छोटे २ गणों व नगर-राज्यों का नाश हो गया।

हमने ऊपर उन प्रवृत्तियों व विशेषताओं की संक्षिप्त चर्चा की है जो कि सावोनारोला के उत्थान के समय इटली के राजनीतिक जीवन को प्रभावित कर रहीं थीं। अब हम उस काल के प्रमुख इटालियन राज्यों का कुछ परिचय देंगे।

मिलेन—१३१२ ईस्वी में जर्मन सम्राट् हेनरी द्वितीय ने विस्कोंटी घराने के एक सरदार को मिलेन राज्य का सूबेदार नियुक्त किया। १३९६ में उसके उत्तराधिकारी को ड्यूक की पदवी मिली। ड्यूक गियां गलियाजो ने अपनी लड़की वेलेन्टिना का विवाह फ्रांस के राजा के भाई ड्यूक आफ ओरलियां से किया। इसी के बल पर बाद में फ्रांस के राजाओं ने मिलेन के शासक-पद का दावा किया और राज्य पर चढ़ाई की। मिलेन और वेनिस में बहुत दिनों तक घोर युद्ध चलता रहा। उस जमाने के इटालियन लोग सैनिक-वृत्ति को अधिक पसंद नहीं करते थे, इसलिये राजाओं को किराये की फ़ौजों से काम लेना पड़ता था। इन बाहरी सैनिकों को केवल रुपये से ही मतलब रहता था। मिलेन तथा वेनिस के युद्ध में इसी प्रकार की फौजें लड़ रही थीं। इनका एक सरदार स्फोर्जा कभी मिलेन की मदद करता, कभी वेनिस की। वह इतना शक्तिशाली था, कि दोनों राज्य उसकी मित्रता के लिये उत्सुक रहते और वह दोनों पक्षों से खूब फायदा उठाता। धीरे २ मिलेन के ड्यूक फिलिपो पर उसका प्रभाव इतना प्रबल हो गया कि ड्यूक ने अपनी एक-मात्र सन्तान बियान्का का विवाह स्फोर्जा के साथ कर दिया। १४४७ ईस्वी में फिलिपो की मृत्यु हुई। तब मिलेन में प्रजातन्त्र की घोषणा की गई और स्फोर्जा प्रजातंत्र का प्रधान सेनापति बनाया गया। किन्तु वह अत्यन्त महत्वाकांक्षी था। तीन साल बाद उसने प्रजातंत्र को उलट दिया और मिलेन में अपना राज्य क़ायम किया। उसके उत्तराधिकारी सावोनारोला के समकालीन थे।

पोप का राज्य—ईसाई-संसार के प्रधान धर्म-गुरु पोप कहलाते थे। पोप सन्त पीटर के उत्तराधिकारी माने जाते थे। ईसाई लोगों का यह विश्वास था कि ईसा मसीह ने अपने एक प्रमुख, शिष्य सन्त पीटर को स्वर्ग के राज्य की कुञ्जियाँ देदी थीं। इसलिये पोप ईसा के प्रतिनिधि समझे जाते थे। प्रसिद्ध रोमन सम्राट् कोन्स्टेन्टाइन ने जब ईसाई-धर्म स्वीकार किया, उसी समय से रोम नगर पोपों का केन्द्र बन गया। रोम एक प्रकार से ईसाई-संसार की राजधानी माना जाने लगा। पोप की एक धर्म-सभा होती थी जिसके सदस्य कार्डिनल कहलाते थे। ये कार्डिनल ही पोप का निर्वाचन करते थे। ईसाई-धर्म के प्रचार में पोपों ने बहुत कार्य किया और धर्म के प्रसार के साथ २ उनकी भी प्रतिष्ठा बढ़ती गई। यशस्वी जर्मन सम्राट् शार्लमेन ने पोप के इलाके की वृद्धि की। धीरे २ उनके अधिकार भी बढ़ते गये। वे ईसाई-संप्रदाय की सभी भूमि व संपत्ति के स्वामी माने जाने लगे। वे अपने को राजाओं के अधिकार से स्वतंत्र समझने लगे। उनका दावा था कि चर्च (ईसाई-धर्म-संस्था) ही संसार की सर्वोच्च संस्था है, क्योंकि उसकी शक्ति का उद्गम ईश्वर है; पोप ईश्वर के प्रतिनिधि हैं, इसलिये वे सांसारिक-सत्ताधारी राजा-महाराजाओं से ऊपर हैं और उन्हें गद्दी से भी उतार सकते हैं। पोपों की सत्ता के कारण मध्य इटली में उनका राज्य स्थापित हो गया जिसे बहुधा चर्च-राज्य भी कहा जाता है। जर्मन-सम्राटों तथा रोमन पोपों में २०० वर्ष तक जो युद्ध चलता रहा, उसकी चर्चा हम नहीं करेंगे। किस प्रकार दो-दो तीन-तीन पोप हो गये और इससे

पोप-पद के महत्व एवं प्रभाव को क्या हानि पहुँची, इसका वर्णन भी हमारे विषय से कोई गहरा सम्बन्ध नहीं रखता। हमारा तात्पर्य यही बतलाने का था कि धीरे २ पोप चर्च-राज्य के शासक बन गये और इटली के राजनीतिक मामलों में भाग लेने लगे।

पोपों ने पुनर्जागृति में बहुत हाथ बटाया। पोप निकोलस पंचम विद्वानों का संरक्षक था। उसके दरबार में कलाविदों तथा साहित्य-पंडितों का बड़ा आदर होता था। उसके बाद पियुस द्वितीय पोप हुआ। यह स्वयं एक बड़ा विद्वान् था।

किन्तु १५ वीं शताब्दि के पोप ईसा के प्रतिनिधि कहलाने के योग्य नहीं थे। कहां शांति, त्याग, दया और अहिंसा का अवतार महात्मा ईसा, कहां सांसारिकता एवं विलासिता के पुतले ये पोप! उन्हें अपने धार्मिक एवं नैतिक कर्त्तव्य तथा उत्तरदायित्व की चिन्ता नहीं थी, तथापि वे अपने उच्च पद की सत्ता को नीच एवं स्वार्थी उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये काम में लाने में नहीं शर्माते थे। उनके निर्वाचन में बहुधा नीच साधनों से काम लिया जाता। जिस के पास धन, चमता व कुटिलता होती, वह बिना कठिनाई के पोप बन जाता। पुण्याचरण अथवा धर्मशीलता की कोई गणना ही नहीं करता। इन पोपों का चरित्र भी निन्दनीय था। सदाचरण, तपस्विता, त्याग, संयम आदि उच्च ईसाई-गुण थे। परन्तु ये पोप कामी, अहंकारी तथा धूर्त थे। कितने ही पोप वेश्यायें रखते और अपने वेश्या-पुत्रों को अपने भतीजे कह कर उन्हें उच्च पद दिलवाते थे। धर्म-गुरु के

आचरण में स्वेच्छाचारी शासकों की नक़ल करना ही इनका काम हो गया था। ईसा के प्रतिनिधि तथा चर्च-राज्य के अनियन्त्रित शासक, इन दो बेमेल पदों का अपने व्यक्तित्व में वे सम्मिलन करना चाहते थे।

सावोनारोला के समकालीन पोपों का उदाहरण-स्वरूप कुछ चरित्र-वर्णन करना अप्रासंगिक न होगा। सन् १४५५ ईस्वी में अल्फोन्सो बोर्जिया कालिक्सटस की उपाधि धारण कर पोप बना। यह स्पेन के एक नीच घराने में पैदा हुआ था। इसने राड्रिगो तथा पीटर नामक अपने भतीजों को बड़े २ पद दिये। इसके बाद पियुस द्वितीय पोप हुआ। यह एक बारी का बेटा था और उसका बाल्यकाल तथा यौवनावस्था घृणित व्यभिचार में बीती थी। फिर पाल छठवां पोप हुआ। उसे वैद्यक में बड़ी रुचि थी। वह स्वयं दवा तैयार किया करता था। बुढ़ापे में भी उसे शृंगार से बड़ा शौक था। वह हीरे-मोती के आभूषण पहिनता और अच्छे २ कपड़ों व तेल फुलेलों से अपने शरीर की शोभा बढ़ाने की कोशिश में लगा रहता। वह कहा करता कि "धर्म को विज्ञान का नाश कर देना चाहिये क्योंकि विज्ञान ही धर्म का महाशत्रु है।।" उसकी मृत्यु के बाद जिनोवा के एक मल्लाह का बेटा पोप चुना गया। उसने सिक्सटस चतुर्थ की उपाधि धारण की। इतिहासकारों ने इसकी काम-वासना के बारे में कितनी ही बातें लिखी हैं। इसने आज्ञा निकाली कि पोप के पुत्रों और भतीजों को राजपुत्रों के अधिकार दिये जांय। उसके बाद इन्नोसेंट आठवां पोप हुआ। इसके १६ अनौरस पुत्र

थे। कहते हैं कि जब यह बीमार पड़ा उस समय दवा के लिये नये खून की जरूरत पड़ी, और मनुष्य मात्र के पापों के प्रायश्चित के लिये आत्म-बलिदान करने वाले महात्मा ईसा के इस प्रतिनिधि ने दस-दस वर्ष के तीन बालकों के प्राण लिये। इसके बाद पोप केलिक्सटस् का भतीजा, रोड्रिगो बोर्जिया, धन से कार्डिनलों की वोट खरीद कर पोप चुना गया। अधिकार-लालसा में, घृणित से घृणित व्यभिचार में, तथा धूर्तता, दुष्टता एवं कुटिलता में इसका कोई सानी नहीं हुआ। फिर भी यह अपने पद की ईश्वरीय पवित्रता एवं अमोघता का दम भरने में नहीं शर्माता था। ऐसा उच्च पद इस प्रकार के पतित आचरण वाले व्यक्ति को इतिहास में और कहीं मिला है या नहीं, यह कहना कठिन है। रोड्रियो बोर्जिया जब एलेक्सेंडर की उपाधि धारण कर पोप बना, तब पाखंड उसके द्वारा मानो अपनी पराकाष्ठा तक पहुँच गया। इसी पोप के विरुद्ध सावोनारोला ने आवाज उठाई और अपने प्राणों का बलिदान दिया।

वेनिसका राज्य—वेनिस एक विख्यात बन्दरस्थान था। पूर्वीय देशों के साथ व्यापार का यह प्रधान केन्द्र था। उसके नागरिक बड़े ही व्यापारकुशल थे। उन्होंने इटली के प्रायद्वीप के कई स्थानों को जीत कर अपने राज्य का विस्तार किया। इसी से मिलेन उनका शत्रु बन गया और बहुत दिनों तक उनमें लड़ाई होती रही। नाम के लिये वेनिस का शासन प्रजातन्त्र था। परन्तु वास्तव में वहां थोड़े से धनिक-घरानों को ही सत्ता थी। तथापि वहां के लोग सुखी और समृद्ध थे और यहां का शासन-संगठन

मजबूत था। वेनिस की नीति थी इटली के राज्यों के पारस्परिक वैमनस्य से लाभ उठा कर अपने राज्य को बढ़ाना। जहां ऐसा मौका नहीं रहता, वहां वेनिस इटली के राजनीतिक मामलों से दूर रहता। सावोनारोला ने फ्लोरेंस के लिये जिस नवीन शासन-विधान की योजना की, उस पर वेनिस की संस्थाओं का प्रभाव पड़ा था।

नेपिल्स-इटली के दक्षिण में नेपिल्स का राज्य था। १२६६ ई० में फ्रांस के ओन्जेविन घराने का राजपुत्र वहां का राजा हुआ। किन्तु १२८२ ईस्वी में सिसली द्वीप के लोगों ने विद्रोह किया और फरासीसी सेना का कत्ल कर डाला। इसके बाद नेपिल्स का राज्य स्पेन के एरागोन वंश को मिला। इससे फ्रांस और स्पेन में तनातनी रही। १४३५ ई० में अल्फोन्सो नेपिल्स और सिसली का राजा हुआ। वह एरागोन वंश का था। फ्रांस ने नेपिल्स पर दावा करना नहीं छोड़ा। पोप भी नेपिल्स को हस्तगत करना चाहते थे। वे कहते थे कि नेपिल्स धर्म-राज्य का एक आधीनस्थ प्रान्त है, उसे प्रति वर्ष पोप को कर देना चाहिये, और जब तक पोप राज्याभिषेक न करे तब तक कोई भी वहां का न्याय्य राजा नहीं हो सकता।

फ्लोरेंस—मध्य-इटली के पश्चिमी भाग में टस्कनी प्रान्त था। फ्लोरेंस उसकी राजधानी तथा प्रधान नगर था। बहुत दिनों तक वह जर्मन साम्राज्य के अन्तर्गत रहा और जर्मन-सम्राट् द्वारा नियुक्त सरदार वहां का शासन करते रहे। किन्तु ११ वीं शताब्दि के अन्त में फ्लोरेंस स्वाधीन होगया और वहां प्रजातंत्र की स्थापना हुई। फ्लोरेंसवासी प्रजातंत्र-शासन को अत्यन्त गौरव

की वस्तु मानते और उसकी रक्षा के लिये सदैव कटिबद्ध रहते थे। उन्होंने व्यापार की उन्नति की। उनके राज्य का भी विस्तार हुआ। राजसत्ता को हस्तगत करने के उद्देश्य से नगर में दलबन्दियां भी होने लगीं। फ्लोरेंस की जनता तीन भागों में बंटी थी। पहिला-धनवान् व्यापारी। इनके सात गण संगठित थे। दूसरा—साधारण उद्योग धंधों में लगे रहने वाले नागरिक। इनके चहुत से गण थे। तीसरा—वे लोग जिनके कोई संगठित गण नहीं थे। ये लोग राजनीतिक अधिकारों से वंचित थे। पहिला दल अमीरों का दल था, दूसरा और तीसरा जन-साधारण का। इनमें भयंकर द्वेष और शत्रुता रहती। खूब झगड़े होते। रास्तों में खून की नदियां बहतीं। घरानों में पुश्त-दर-पुश्त से दुश्मनी चली आती। १२८२ ई० में क्रान्ति हुई। जनसाधारण का जोर बढ़ा। कितने ही अमीर राज्य से निकाल दिये गये। नये शासन-विधान की रचना की गई जिसमें कि अमीरों को कोई स्थान ही नहीं दिया गया। किसी व्यक्तिविशेष का एकान्त आधिपत्य स्थापित न होने पाये, इस विचार से शासन-समिति के सदस्य बहुत थोड़ी अवधि के लिये नियुक्त किये जाते। किन्तु परिस्थिति के कारण ऐसी व्यवस्था दृढ़ व सफल न हो सकी।

यह विचित्र भले ही प्रतीत हो पर इतिहास इसका साक्षी है, कि यद्यपि राजनीतिक विप्लव,गृहयुद्ध तथा दल दल में, गण गण में और घराने घराने में वैमनस्य,फ्लोरेंस में सामान्य बातें होगयीं थी तथापि वहां की उन्नति अबाध गति से जारी रही। इतना ही नहीं। रास्तों में मारकाट होती परंतु घरों में कवि काव्य-रचना

में तल्लीन रहते, मूर्तिकार आज भी संसार को चकित कर देने वाली मूर्तियां बनाते रहे, शिल्पी उन विशाल सुन्दर भवनों तथा उपासना-मंदिरोंका निर्माण करते रहे जिन्हें कि आजतक फ्लोरेंस अपने गौरव एवं अभिमान की वस्तु समझता है। राजनीतिक कलहों के साथ २ भी फ्लोरेंस की व्यापारिक एवं कलाविषयक उन्नति का क्रम जारी रहा। व्यापार की वृद्धि हुई, महाजनों की संख्या बढ़ी, राज्य का विस्तार होता गया। समता के जिस ध्येय को सामने रखकर शासन का विधान किया गया था— उसे उन्नति द्वारा उत्पन्न परिस्थितियों ने असंभव सा कर दिया। व्यापारी महाजनों की सत्ता बढ़ने लगी। व्यापार तथा विस्तृत राज्य के कारण परराष्ट्र-नीति का महत्व बढ़ा और उस नीति को सुदृढ़ व समयानुकूल बनाने के लिये यह आवश्यक होगया कि उसका सिलसिला न तोड़ा जाय और अनुभवी राजनीतिज्ञ तथा अर्थ-शास्त्री ही उसकी बागडोर अपने हाथमें रक्खें। शासक-मण्डल के सदस्यों को थोड़ी अवधि के लिये नियुक्त करने की नीति को उपरोक्त परिवर्तनों से भारी धक्का पहुँचा। जिस राज्य के अधिकारी महीने महीने बदलते हों, उसकी परराष्ट्रनीति में तारतम्य, दृढ़ता एवं एकस्वरता कैसे रह सकती है? फिर व्यापारी महाजनों का प्रभाव बढ़ने लगा। इनके दो प्रधान घराने थे—अल्बिजी और मेडिसी। फ्लोरेंस की राजसत्ता पर किस घराने का प्रभुत्व हो, इस प्रश्न को लेकर इनमें प्रतिद्वंद्विता चली। दलबन्दियां हुईं, वैमनस्य गंभीर हुआ, गृह-युद्ध शुरू हुए। कभी इसकी जीत होती, कभी उसकी। पहिले अल्बिजियों का हाथ ऊंचा हुआ परंतु जनता ने मेडिसियों

का साथ दिया। अंत में सन् १४३४ ईस्वी में,मेडिसियों की शक्ति इतनी बढ़ गई कि उनके नेता कासिमो मेडिसी ने अल्बिजियों तथा उनके अभिभावकों को राज्य से निकलवा दिया।

कासिमो की व्यापार-बुद्धि का दबदबा सारे यूरोप में था। वह केवल अतुल धनका स्वामी ही नहीं था, उसकी चतुरता व राजनीतिज्ञता भी ऊंचे दर्जे की थीं। उसने राज्य में शांति और सुव्यवस्था की स्थापना की। वह फ्लोरेंसवासियों में लोकप्रिय बनने का सदैव प्रयत्न करता, उनके हितों को अपना हित मानता और उनकी उच्चकांक्षाओं से सहानुभूति रखता। वह पुनर्जागृति का एक प्रमुख पृष्ठपोषक तथा विद्वानों और कलाविदों का मित्र और सहायक था। उसने बहुत से उपासना-मंदिर बनवाये और मुक्तहस्त से धन खर्च कर प्रसिद्ध शिल्पी माइकेल माइकेलोजी से संत मार्क के मठ का जीर्णोद्वार करवाया। सुरम्य विशाल भवन तैयार किया गया। साधु अंजेलिको ने महात्मा ईसा की जीवन-घटनाओं के चित्रों से वहां की दीवालों को अलंकृत किया और स्वयं अपने शिष्यों के साथ वहां बस गया। प्लेटो के दर्शन-शास्त्र के पठन-पाठन के लिये एक विद्यालय की स्थापना भी कासिमो ने की।

कासिमो फ्लोरेंस की इज्जतका हमेशा ख्याल रखता। उसकी परराष्ट्र-नीति ऐसी थी कि इटली के बड़े २ राज्य भी फ्लोरेंस का सम्मान करते और उसके कृपाकांक्षी बने रहते। यद्यपि कासिमो फ्लोरेन्स का सर्वेसर्वा बन गया था तथापि वह नागरिकोंके साथ ऐसी नीति व सम-भाव से बर्ताव करता कि उन्हें यह बात कभी

खटकती तक नहीं थी। फ्लोरेंसवासी अपनी चिरसम्मानित स्वतन्त्रता को खो बैठे, किंतु उन्हें इस बात का पता तक नहीं लगा। कासिमो की नीतिमत्ता ने उन्हें भुलावे में डाल दिया। इससे उनकी शृंखलायें और भी दृढ़ होगईं। सुराज की माया ने स्वराज्य के भावों को अभिभूत कर दिया। कासिमो ने फ्लोरेंस-वासियों को सुनहरी बेड़ियों से बांधा और वे उनका सुनहरी रूप देखकर उन्हें गले से लगाने लगे। एक पुरुष का फ्लोरेंस पर अनियन्त्रित अधिकार जम गया, फिर भी वहां के लोग प्रजातन्त्र व स्वतन्त्रता का दम भरना न भूले। कासिमो ने राजा कीउपाधि नहीं ली। ऊपर से वह एक प्रमुख नागरिक ही रहा, वास्तव में सारी सत्ता उसी के हाथ में थी। इस प्रकार फ्लोरेंस में मेडि-सियों की प्रतिष्ठा हुई।

कासिमो की मृत्यु के बाद उसका पद उसके पुत्र पाइरो को मिला। उसमें योग्यता तो थी, किन्तु शारीरिक व्याधियों के कारण वह राजकार्य में अधिक भाग नहीं ले सकता था। इसलिये उसने अपने पुत्र लारेन्जो को शासक-पद के लिये शिक्षित व दीक्षित किया। सन् १४६९ में पाइरो की मृत्यु हुई और लारेन्जो फ्लोरेंस का स्वामी बना। लारेन्जो मेडिसी-वंश का सब से अधिक यशस्वी एवं प्रतिभाशाली व्यक्ति था। वह सावोनारोला का समकालीन था। सावोनारोला के जीवन की घटनाओं से लारेन्जो का घनिष्ट सम्बन्ध है, अतएव उसके चरित्र एव महानता की चर्चा हम यथा-स्थान करेंगे। यहां इतना कह देना उचित होगा कि फ्लोरेंस के स्वत्वाधिकारों का अपहरण करने वाले निरंकुश शासनके विरोध

में, अर्थात् लारेन्जो के विरुद्ध सावोनारोला ने अपनी आवाज उठाई।

पुनर्जागृति का एक अंग था—राष्ट्रीय भावों का विकास। इन्हीं से प्रेरित हो कर इंग्लैण्ड, फ्रांस आदि देशों के नरपति प्रबल केन्द्रीय शासनों की स्थापना कर रहे थे। वहां राजनीतिक विश्लेषण को उत्तेजना देने वाली जागीरदारी तथा अन्य स्वायत्त संस्थाओं का नाश हो रहा था। किन्तु पुनर्जागृति की जन्म-भूमि इटली में राष्ट्रीयता का नितान्त अभाव था। इटली भौगोलिक नाममात्र ही रह गया था। वहां फूट और द्वेष का ही बोल बाला था। कहीं-कहीं, कभी-कभी, राष्ट्रीय एकीकरण की आवाज उठती थी। परन्तु वह सर्वव्यापी स्वार्थ और अनैक्य के गर्जन में विलीन हो जाती थी। लोगों के चरित्र भी हीन हो गये थे। हिंसा, क्रूरता, दगा, झूठ, धूर्त्तता, हत्या आदि राजनीति में निन्दनीय नहीं समझे जाते थे। धर्म एवं नीति का कहीं आदर नहीं था। अनर्गल वासना लोगों को अन्धा बना रही थी। वे स्वार्थ-सिद्धि व सफलता के लिये साधनों के औचित्य एवं अनौचित्य की तनिक भी परवाह नहीं करते थे। इटली का कौटिल्य मकियावेली लिखता है, "नैतिक नियम राजनीतिज्ञों पर लागू नहीं होते। शासक को अपना राज्य बनाये रखने के लिये बहुधा दया, विश्वास, मनुष्यता तथा धर्म के विरुद्ध भी कार्य करना आवश्यक होता है।" यह कूटनीतिज्ञ मकियावेली फ्लोरेंस का रहने वाला और सावोनारोला का समकालीन था।

उस नवयुग में जब कि पुनर्जागरण के प्रकाश में नवीन

विद्या तथा नूतन कलायें अभिनव बुद्धि एवं सौन्दर्य की सृष्टि कर रही थीं, जब कि यह बुद्धि स्वतन्त्रता के अनर्गल उत्साह में धर्म व सदाचार के प्रति उदासीन बन कर उच्छृङ्खलता की ओर जा रही थी, जब कि यह नूतन सौन्दर्य आध्यात्मिक संयम से विलग हो कर विलासिता को उत्तेजन दे रहा था, जब कि वैभव लोगों को व्यसनी और अहंकारी बना रहा था, जब कि फूट देश को निर्बल कर रही थी, जब कि बौद्धिक आन्दोलन के रहते हुए भी धर्म के चिरंतन तत्वों के तिरस्कार की रुचि बढ़ रही थी, जब कि लोग स्वार्थ-लालसा से पागल हो साधनों की पवित्रता या नीचता की परवाह नहीं करते थे, जब स्वतन्त्रता को खो कर भी लोग उसका महत्व भूल गये थे और उन्हीं बेड़ियों को चूम रहे थे जो कि उन्हें गुलामी में जकड़े हुए थीं, उस समय एक महापुरुष का जन्म होता है। वह तपस्वी उद्दीपन आध्यात्मिक आदर्श के द्वारा विचार-स्वातंत्र्य में सदाचार का, बुद्धि में धार्मिकता का, सौंदर्य में संयम का तथा राजनीति में स्वाधीनता का संचार करने का प्रयास करता है। फ्लोरेंस उसका लीला-क्षेत्र है। वह धर्म, पुण्य, सरलता और स्वतन्त्रता के सामञ्जस्य से पृथ्वी पर एक नूतन स्वर्ग की सृष्टि करने की चेष्टा करता है। वह सन्यासी स्वतन्त्रता का पुजारी, पाप व पाखण्ड का कट्टर शत्रु, धार्मिक व नैतिक सुधारक, एक नूतन युग के रहस्य की भविष्यद्वाणी कर, राम-राज्य का परिचायक बनता है। उसका जीवनत्याग, तप, सेवा तथा ईश्वरोपासना की एक कहानी है। वह पुकार कर कहता है कि बिना सच्ची धर्म-भावना के, बिना

पुण्याचरण के, मुक्ति असम्भव है। वह लोगों को समझाता है कि अपने पापों द्वारा उत्तेजित ईश्वरीय प्रकोप को पश्चात्ताप एवं पुण्यकार्यों द्वारा शांत करो और उनके कृपापात्र बनकर वह राज्य स्थापित करो, जहाँ कि स्वतन्त्रता ईश्वरोपासना का एक अंग हो। लोग मन्त्रमुग्ध से होकर उसका सन्देश सुनते हैं, बिना अस्त्र-शस्त्र के वह सफल क्रांति का विधाता बनता है, अकिंचन भिक्षु होते हुए भी वह फ्लोरेन्स का सर्वेसर्वा हो जाता है। फिर उसके शत्रु आगे आते हैं, कृतघ्नता व नीचता प्रतिक्रिया के भावों का सहारा पाकर उस पर प्रहार करती हैं,परंतु वह शत्रुओं से युद्ध नहीं करता, वरन् अजेय तेजस्विता के साथ,अपने आदर्श में अक्षय श्रद्धा रखता हुआ,अपने प्राणोंका बलिदान करता और हुतात्मा बनकर अपने सन्देश को अमर बनाता है। इसी शहीद सावोनारोला ;की रोमांचकारिणी जीवन-गाथा का वर्णन हम अगले पृष्ठों में करेंगे।



(१)

बाल्य-काल और गृह-त्याग

फ्लोरेंस के इतिहास में सावोनारोला के समान महापुरुष नहीं हुआ। किन्तु जन्मसे सावोनारोला फ्लोरेंसवासी नहीं था। उसके पूर्वज पादुआ नगर में रहते थे। उसके पितामह माइकेल सावोनारोला एक विख्यात वैद्य थे। वे बड़े विद्वान्, धार्मिक तथा दानशील व्यक्ति थे। उन्होंने कई पुस्तकें भी लिखीं। फरेरा नगर का शासक निकोलो तृतीय कला का अभिभावक तथा विद्वानों का सहायक था। उसने १४४० ईस्वी में माइकेल को अपने दरबार में आने के लिये आमंत्रित किया। माइकेल फरेरा में रहने लगे। वे शासक के चिकित्सक तथा फरेरा विश्वविद्यालय के शिक्षक नियुक्त किये गये। उनकी प्रतिष्ठा बढ़ी। लक्ष्मी ने भी कृपा की और वे एक छोटी जागीर के मालिक बन गये, उनके पुत्र का नाम निकोलो था। वे भी एक वैद्य थे परन्तु अपने पिता के समान धन व प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं कर सके। उनकी पत्नी एलेना मन्टुआ नगर के एक यशस्वी वंश की कन्या थी। उसके सात सन्तानें हुईं। हमारे चरितनायक गिरोलमा सावोनारोला का जन्म २१ सितम्बर १४५२ ईस्वी में फरेरा नगरमें हुआ। वे निकोलोके तीसरे पुत्र थे।

गिरोलमा के पितामह चाहते थे कि वह भी प्रसिद्ध वैद्य बने। इसलिये वे अत्यन्त प्रेम व सावधानी से स्वयं उसे प्रारम्भिक

शिक्षा देने लगे। इस अनुभवी विद्वान् ने गिरोलमा के हृदय में अध्ययन-प्रेम को जागृत किया और वह नितनव उत्साह के साथ विद्या-उपार्जन में लग गया। जब गिरोलमा सावोनारोला १४, १५ वर्ष का था उस समय उसके पितामह का स्वर्गवास होगया और उसकी शिक्षा का भार निकोलो पर पड़ा। वे उसे दर्शन-शास्त्र पढ़ाने लगे। सावोनारोला ने ग्रीक दार्शनिक एरिस्टोटल तथा प्रसिद्ध ईसाई विद्वान् संत थामस के ग्रंथों को पढ़ा। इनका अध्ययन वैद्यक-शास्त्र की शिक्षा के लिए उपक्रम समझा जाता था। किन्तु सावोनारोला का इन में गहरा प्रेम होगया। विशेषकर संत थामस के ग्रन्थों ने उस पर ऐसी मोहनी डाली कि वह दिन-रात उनके परिशीलन व चिंतन में लगा रहता और वैद्यक की पुस्तकों में उसका मन ही न लगता। उसके पिता चाहते थे कि वह अपना सारा समय वैद्यक पढ़ने में लगावे किन्तु सावोनारोला ने प्राचीन लेखकों के कितने ही ग्रन्थों को पढ़ डाला। वह गान-विद्या तथा आलेख्य-कला भी सीखता और अपने हृदय के भावों को व्यक्त करने के लिए कभी २ कविता भी करता था।

हम यहाँ फरेरा के उस वातावरण का परिचय देंगे जिसमें कि बालक सावोनारोलाका संवर्धन तथा उसके विचारोंका विकास हुआ

इस समय वहाँ ड्यूक बोरसो का राज्य था। वह पुनर्जागृति के आन्दोलन से सहानुभूति रखता था। उसने फरेरा में छापे-खाने खुलवाए। यहाँ के विश्वविद्यालय का खर्च वह अपने पास से देता था। उसने कई मठ बनवाए। वह बड़ी बुद्धिमना में

इटली के राजनीतिक झगड़ों से दूर रहता हुआ अपनी सत्ता और प्रसिद्धि को बढ़ाता था। उसका दरबार ऐश्वर्य और विलासिता के लिए विख्यात था। वह सुनहरी जरी की कैसी २ सुन्दर पोशाकें पहिनता, उसके पास कैसे बाज, घोड़े, कुत्ते आदि थे, उसके विदूषक कैसे विचक्षण थे, इनकी चर्चा सारे इटली में फैली थी। सावोनारोला ७ वर्ष का था जबकि ईसाइयों के धर्म-गुरु पोप पियुस द्वितीय फरेरा पधारे थे। अपने सभासदों तथा कर्मचारियों के साथ बड़े ठाटबाट के साथ उनका आगमन हुआ। उनके ऊपर सोनेका छत्र लगाया गया, मार्गों पर क़ीमती दरियाँ बिछाई गईं, उन पर पुष्प-वर्षा की गई। वे पधारे क्यों थे? ईसाइयों को तुर्कों से धर्म-युद्ध करने के लिये उत्साहित करने। उन्होंने ऐसी मर्मस्पर्शी भाषा में कुस्तुन्तुनियाँ के ईसाइयों की दुर्दशा का चित्र खींचा कि लोगों की आँखों में आँसू भर आये। वे इटली के कई नगरों में घूमे। लोगों ने धन व सैनिक देने के वचन दिये। किन्तु काम कुछ भी नहीं हुआ। हाँ, किस शान के साथ पोप का स्वागत हुआ, इसकी याद बहुत दिनों तक लोगों के दिल में बनी रही। असली बात को सबने भुला दिया। हर्षोत्सव, नाच, रङ्ग आदि में बोरसो लोगों को फँसाये रखता था। इससे उसकी लोकप्रियता बढ़ती और एकाधिपत्य भी सुरक्षित रहता। ईसाई-धर्म की विरोधनी प्रवृत्तियों का सब कहीं आदर होता, सर्वत्र पतन और व्यभिचार ही दीख पड़ते। १४७१ ईस्वी में बोरसो की मृत्यु हुई। निकोलो और इरकोलो नामक दो

उम्मेदवार ड्यूक-पद के लिये लड़ने लगे। इरकोली को जीत हुई। उसने अपने प्रतिद्वन्द्वी के मित्रों व अनुयायियों का नगर की सड़कों पर वध करवाया और दूसरे दिन से भोज, नाच,गान आदि के साथ अपने राज्याभिषेक का उत्सव मनाने लगा।

यह सब सावोनारोला ने अपनी आँखों से देखा होगा। जो फरेरा की हालत थी वही कम अधिक मात्रा में, इटली के सभी नगरों की थी। इटली धूर्त,पाखण्डी व निरंकुश पोपों व शासकों का क्रीड़ा-क्षेत्र बन गया था, वे व्यभिचार, वाह्याडंबर और फिजूलखर्ची में एक दूसरे को मात करने की कोशिश में लगे रहते थे। राजा अपनी दीन प्रजा को लूटता, धर्माचार्य अपने-भोले अनुयायियों का रक्त चूसते। एक ओर था असीम वैभव, विलासिता और निरंकुशता, दूसरी ओर थी घोरातिघोर दरिद्रता, दुःख और दीनता। विद्या थी किन्तु विवाद के लिये। धन था—विषय-भोग और आडंबर के वास्ते। शक्ति थी—निर्बल व असहाय को कुचलने के लिये। शिष्टता व लज्जा ने भी पाप की प्रभुता मान ली थी। विद्वानों की विद्वत्ता, दार्शनिकों का तत्व-ज्ञान व्याख्यानों और वाद-विवादों तक ही सीमित रहते थे। अधः पतन के विरुद्ध सुधार की आवाज उठाना उनकी शक्ति से परे था। ऐसा था उनका नैतिक साहस!

ऐसे वायुमण्डल का असर सावोनारोला के ऊपर पड़ रहा था। वह विविध विषयों में निपुण हो गया था और उसकी सद्-असद् विवेक बुद्धि जागृत् हो रही थी। वह सदैव विचारों में डूबा

रहता। चारों ओर फैले हुए पतन, अत्याचार व अन्याय की उसके हृदय पर गहरी ठेस लगती थी। वर्लामशी सावोनारोला का शिष्य एवं समकालीन था। उसने सावोनारोला की प्रथम जीवनी लिखी है। वह कहता है कि "इस समय वह (सावो-नारोला) बहुत ही कम बातचीत करता, सब लोगों से अलग रहता, एकान्त ही उसे प्रिय था।" पादरी मारचीज लिखता है कि "उसे एकान्त स्थान, खेत तथा पो नदी का हरा तट बहुत ही सुखद मालूम होते थे। वहां वह घूमता-फिरता, कभी गाता, कभी रोता और इस प्रकार उन भावों को व्यक्त करता जो कि उसके दिल में उबल रहे थे।" ये भाव क्या थे? १४७२ ईस्वी में सावोनारोला की बनाई हुई एक कविता से वे भली भांति प्रगट होते हैं। वह लिखता है:—

मैं देख रहा हूँ कि सारे संसार में प्रलय सी मची हुई है। समस्त सद्गुण और साधुता का लोप हो गया है, कहीं भी आशा की ज्योति नहीं दीख पड़ती। कोई भी अपने पापों के कारण नहीं शर्माता × × ×। वही मनुष्य सुखी है जिसकी कि जीविका ही दूसरों का धन अपहरण करना है, जो दूसरों के रक्त को चूसता है, जो अपने आश्रित विधवाओं व बच्चों का सब कुछ लूट लेता है, जो गरीबों का सर्वनाश करने के लिये तत्पर रहता है। वही मनुष्य कोमल एवं सुन्दर आत्मावाला कहलाता है जो कि हिंसा व छल से अधिक से अधिक ऐश्वर्य हस्तगत करता है, जो कि स्वर्ग एवं ईसा मसीह का तिरस्कार करता है, जो

सदैव दूसरों को पददलित करने की चेष्टा करता है। उसी को संसार में प्रतिष्ठा मिलेगी। × × × धर्म और पुण्य के दिन बीत गये।"

जागृत् यौवन की समस्त स्फूर्ति एवं भावप्रवणता के साथ सावोनारोला के हृदय में तत्कालीन अधः पतन के प्रति विरोध के विचार उत्पन्न होने लगे और सांसारिक ऐश्वर्य से उसका मन हटने लगा। उसकी अन्तरात्मा व्याकुल हो गई और किसी दिव्य प्रकोप से उसका व्यक्तित्व ओत प्रोत हो गया। उसकी आँखों से तीव्र आध्यात्मिक ज्योति निकलती परन्तु मुखमण्डल पर विनय शीलता एवं उदासी छाई रहती। शान्ति पाने की उत्कण्ठा से वह बड़े उत्साह के साथ धार्मिक ग्रंथों का अनुशीलन करता। वह अधिकाधिक व्रत उपवास करने लगा। उसका शरीर दुर्बल हो गया। उसकी ईश्वर-भक्ति उत्तरोत्तर गहरी होती जाती थी। जब आन्तरिक क्षोभ और व्यथा असह्य हो जाते वह उपासना मन्दिर की शरण लेता। वहां, वेदी के सामने, वह घण्टों तक नतमस्तक रहता और उस पापपूर्ण युग के उद्धार के लिये प्रार्थना में लीन रहता। आंसुओं से वेदी की सीढ़ियां तक भीग जातीं— तब कहीं उसके जलते हुए हृदय को शीतलता पहुंचती।

उस समय जब कि युवक सावोनारोला के अंतःकरण में अपने युग की सर्वव्यापी अधोगति के विरुद्ध क्रान्ति के भावों का उदय हो रहा था, जबकि उसकी आत्मा में संसार के प्रति वैराग्य तथा ईश्वर-भक्ति की भावनाओं का आविर्भाव हो रहा था, एक रसमयी घटना घटी।

सावोनारोला के मकान के पास फ्लोरेंस से निर्वासित स्ट्रोजी घराने का एक व्यक्ति रहता था। उसका नाम राबर्टो था। सावोनारोला को उससे सहानुभूति थी क्योंकि अपने स्वातंत्र्य-प्रेम के कारण ही उसे निर्वासन-दण्ड मिला था। राबर्टो की एक युवती कन्या थी। इस सुन्दरी का नाम लोडामिया था। उस समय सावोनारोला की अवस्था २१ वर्ष की रही होगी। युवती से उसे प्रेम हो गया। उसकी आँखों में सावोनारोला को सांसारिक सुख का एक नूतन प्रकाश दिखलाई दिया। नवयौवन के प्रथम प्रेम के राग से उसकी हृतन्त्री बज उठी। वह प्रेम विभोर हो मधुर स्वप्न देखने लगा। जिस संसार में वह पाप व अन्याय ही देख रहा था, उसे इस प्रेम ने किसी अनिर्वचनीय आकर्षण से भर दिया। किन्तु यह स्वप्न-जगत् शीघ्र ही विलीन होगया। बड़ी आशा और उत्साह के साथ सावोनारोला ने अपने हृदय के उद्‌गारों तथा भावों को प्रकटकर विवाह का प्रस्ताव किया। किन्तु तिरस्कार के साथ वह अस्वीकृत हुआ। युवती के पिताको घमण्ड था अपनी क़ुलीनता का। उसने कहा कि सावोनारोला का वंश इतना उच्च नहीं कि वह फ्लोरेंस के गौरवान्वित एवं प्रभावशाली स्ट्रोजी घराने से विवाह-सम्बन्ध के योग्य समझा जाय। बेचारे राबर्टो को यह पता कहाँ था कि एक समय आवेगा जब कि फ्लोरेंस सावोनारोला के इशारे पर नाचेगा और स्ट्रोजी वंश के लोग उसके शिष्य बनने में अपनी प्रतिष्ठा समझेंगे।

शब्दों का दो-टूक उत्तर नवयुवक सावोनारोला पर एक निर्दय प्रहार था। एक क्षण में उसकी सारी आशाओं पर पानी फिर गया। जिन भावों को उसने अभिनव प्रेम की माया में भुला दिया था वे अब और भी अधिक उग्ररूप धारण करने लगे। असफल प्रेम ने नैराश्य को वैराग्य में बदल दिया। उसका संसार के प्रति जो कुछ भी मोह था वह अब जाता रहा। खिन्न तथा दुःखित हृदय से वह एकान्त में ईश्वर से विनती करता कि "हे प्रभु मुझे वह पथ दिखाओ जिसका मेरी आत्मा अनुसरण करे।"

सावोनारोला के विचारों से सहानुभूति रखने वाला कोई नहीं था। सब कोई समय के रंग में रंगे हुए थे। कोई २ तो उसकी हँसी उड़ाते। सावोनारोला के पिता को एक दिन राज-दरबार से निमन्त्रण आया। उन्होंने सावोनारोला से भी चलने को कहा। वैभव और विलास के उस क्रीड़ा-स्थल में जाने से उसने साफ नाहीं करदी और कहा "मैं वहां की ड्योढ़ी पर पैर नहीं रख सकता।" उसने लोगों से मिलना-जुलना तक छोड़ दिया। संसार से खिन्न, जीवन-सुख से निराश, अपने विचारों में ही निमग्न। एकाकी सावोनारोला का मन सन्यास की ओर झुकने लगा। वसंत-काल था। ड्यूक की नवोढ़ा पत्नी एलियेनोरा नेपिल्स से आ रही थी। उसके स्वागत के उपलक्ष्य में बड़े २ उत्सव मनाये जा रहे थे। सारा नगर नाच, गान, मदिरा तथा विषय-भोग में मस्त था। इससे सावोनारोला की खिन्नता और भी बढ़ी और वह गृह-त्याग कर सन्यास लेने के प्रस्ताव पर

गंभीरता पूर्वक विचार करने लगा। संत थामस के ग्रंथ पढ़ने से डोमिनीशियन भिक्षु-संप्रदाय की ओर उसका झुकाव हो गया था। परंतु वह जानता था कि घरवाले इसका घोर विरोध करेंगे और उसके मार्ग में तरह तरह की रुकावटें डालेंगे। उसका बड़ा भाई सेना में नियुक्त हो चुका था। दूसरे भाई में कोई विशेष गुण व प्रतिभा के लक्षण नहीं दीख पड़ते थे और वह जागीर की देख-रेख करता था। अतएव कुटुम्ब की सारी आशाओं का आधार एक-मात्र सावोनारोला ही था। वे आशा करते थे कि वह भी अपने पिता के समान प्रसिद्ध वैद्य तथा विद्वान् बनेगा और ड्यूक के दरबार में प्रतिष्ठा प्राप्त कर कुल की कीर्ति बढ़ावेगा। प्रिय जनों की चिरसंचित आशाओं पर लात मार कर उन्हें सदा के लिये छोड़ देना बड़ा ही कठिन काम था। इससे बहुत दिनों तक सावोनारोला कुछ निश्चय नहीं कर सका। सन् १४७४ में उसने एक सन्यासी का उपदेश सुना। इसका इतना गहरा असर पड़ा कि उसी दिन सावोनारोला ने घर छोड़ कर मठ में भरती होने की प्रतिज्ञा करली। जब वह घर लौटा उस समय उसके मुख पर ध्रुवसंकल्प-जनित शान्ति और प्रफुल्लता विराज रही थी।

परन्तु घर में आते ही उसका धैर्य जवाब देने लगा। माता पिता के सामने अपना निश्चय प्रकट करने का साहस उसे नहीं हुआ। वह खुद कहता है कि "यदि मैंने अपना निर्णय उन पर प्रकट कर दिया होता तो अवश्य ही मेरा हृदय टुकड़े २ होजाता और मुझे अपना संकल्प त्याग देना पड़ता"। कहीं प्रियजनों का

प्रेमपूर्ण अनुरोध उसे निर्धारित पथ से विमुख न करदे इस भय से सावोनारोला बहुत दिनों तक अपने संकल्प को कार्यरूप में परिणत नहीं कर सका। माता-पिता की मर्मान्त भेदी दृष्टि कहीं उसके मनोरथ का आभास न पाले इस भय से वह उनसे आंख तक मिलाने का साहस नहीं कर सकता था। दृढ़ प्रतिज्ञा तथा स्वजनों की मोह-ममता इनका संघर्ष लगभग एक वर्ष तक चलता रहा। अन्त में सावोनारोला ने भी उसी नीति का आश्रय लिया जिसका कि अनुसरण २००० वर्ष पहिले सुदूर भारत में राजकुमार सिद्धार्थ गौतम को करना पड़ा था। यह नीति थी बिना किसी से कुछ कहे-सुने चुपचाप घर छोड़कर चले जाना। यह निश्चय कर वह बैठ गया और वीणा को उठाकर उसमें स्वर मिला गीत गाने लगा। उस तान और स्वर से ऐसी उदासी व्यक्त होती थी कि उसकी मां किसी अपशकुन की आशंका से सहसा करुणार्द्र स्वर में बोल उठी "अरे पुत्र, यह तो वियोग का संकेत है।" किसी प्रकार हृदयोद्वेग को सावोनारोला कांपती हुई अंगुलियों से वीणा के तार चलाता रहा। आँख उठा माँ की तरफ देखने तक की हिम्मत उसे नहीं हुई।

दूसरे दिन २४ अप्रैल १४७५ को सारे फरेरा नगर में सन्त जार्ज की जयन्ती मनाई जा रही थी। लोग उत्सव मे मग्न थे। सावोनारोला के माता-पिता भी उसमें शामिल होने के लिये गये और सावोनारोला घर में अकेला ही रह गया। गृह-त्याग करने का यही अवसर उसे अचूक जान पड़ा। तदनुसार माता, पिता,

बन्धु बान्धवों को सदा के लिये छोड़कर २३ वर्ष की अवस्था में सन्यास लेने की इच्छा से सावोनारोला अकेला ही फरेरा से चल पड़ा। पैदल चलकर वह बोलोना पहुँचा। वहां डोमिनीशियन संप्रदाय का एक मठ था। यहां जाकर उसने कहा कि मैं मठ में भर्ती होना चाहता हूँ और क्षुद्र से क्षुद्र कार्य के लिये भी अपनी सेवायें अर्पित करने के लिये तैयार हूँ। मठाधीश ने तत्क्षण उसकी प्रार्थना स्वीकार करली और सावोनारोला ने मठ में पदार्पण किया।

अपनी कोठरी में पहुँचते ही उसका भावुक हृदय माता-पिता की दशा की कल्पना से व्याकुल हो उठा। लौटने का तो नाम लेना ही उसके लिये असंभव था परन्तु उनको सान्त्वना देने के लिये उसने एक पत्र लिखा और सदा के लिये घरबार छोड़ देने का कारण समझाया। पिता को उसने विश्वास दिलाया कि क्षणिक आवेश में आकर मैंने सन्यास का व्रत नहीं लिया। उसने लिखा:—

"जब मैंने साधुता को पद-दलित होते हुए देखा और देखा कि व्यसनों की इज्जत की जा रही है, तब इटली के इन पापान्ध लोगों के अनाचारों को सहन करना मेरे लिये असंभव हो गया × × × हे परम प्रिय पिता, आपको इसका दुःख न मानकर ईश्वर को धन्यवाद देना चाहिये। क्योंकि परमात्मा ने आपको एक पुत्र प्रदान किया, २२ वर्ष तक उसे सुरक्षित रखा और अब उसे अपने सैनिक के पद के योग्य समझा है। क्या आप ऐसे पुत्र का होना अपने लिये एक परम सौभाग्य की बात

नहीं मानते जो कि प्रभु ईसा की सेना का एक वीर सैनिक है ? आप का मेरे प्रति असीम अनुराग तो एक और अतिरिक्त कारण है जिससे कि आप को इस बात से हर्षित होना चाहिये। मुझ में दो तत्व हैं—शरीर और आत्मा। यह मानना कि आप मेरी आत्मा की अपेक्षा मेरे शरीर से अधिक प्रीति रखते हैं, आप के स्नेह की अवज्ञा करना है। आप सब से अधिक मेरी आत्मा से ही प्रेम करते हैं अतएव जिस बात से मेरी आत्मा का कल्याण हो उससे आपको प्रसन्नता ही होनी चाहिये। हाड़-मांस के इस पुतले को शोकातुर होना स्वाभाविक है। किन्तु आप के समान ज्ञानी और उदार चेता मनुष्य यह जानते हैं कि किस प्रकार विवेक द्वारा शोक की शान्ति करना चाहिये। क्या आप समझते हैं कि मुझे आप को छोड़ने में दारुण व्यथा नहीं हुई ? जन्म से कभी ऐसा शोक और इतनी मानसिक वेदना मुझे नहीं हुई जैसी कि आज सहन करनी पड़ी है। मुझे अपने सगे बन्धु बान्धुओं को छोड़ना पड़ा, अपरिचित लोगों के बीच आकर अपनी इस देह को प्रभु ईसा के सामने बलिदान स्वरूप अर्पित करना पड़ा और उन लोगों के हाथों अपनी आकांक्षाओं को बेचना पड़ा है जिन्हें कि मैं कभी जानता तक नहीं था। यह मेरे आचरण के उस अंश का स्पष्टीकरण है जिससे कि, मैं जानता हूँ, आपको विशेष कष्ट हुआ होगा—वह यह कि मैं गुप्त रीति से चला आया। वियोग के विचार मात्र से मेरे हृदय में इतनी वेदना होती थी कि यदि मैं वचनों द्वारा अपने संकल्प को व्यक्त करता तो मेरा

हृदय टूक २ हो जाता और मेरे उद्देश्य में भारी बाधा पहुँचती। अतएव अपने दुःख से मेरे दुःख को द्विगुणित न करिये। जो कुछ मैं कर चुका हूँ उसके लिये मुझे तनिक भी संताप नहीं। पीछे हटने से यदि मैं सोजरक्ष से भी बड़ा सम्राट् बन सकूं तो भी ऐसा न करूँगा। किन्तु मैं भी आप ही के समान हाड़ मांस का पुतला हूँ और चूंकि मनुष्य की विषयेन्द्रियाँ विवेक बुद्धि के प्रतिकूल होती हैं, इसलिये मुझे भी, शैतानके पंजे से बचने के लिये, निर्दय युद्ध करना आवश्यक है। परन्तु अभिनव दुःख के ये दिन शीघ्र ही चले जावेंगे और उसके अनंतर, मेरा विश्वास है, कि हम दोनों को परमात्मा की कृपा से इहलोक और परलोक में सान्त्वना मिलेगी। मैं आप से प्रार्थना करता हूँ कि मेरी माता को आश्वासन दें और उनसे मेरी विनती है कि आप के साथ वे भी मुझे आशीर्वाद दें।"

जिस आन्तरिक वेदना, कोमल भावुकता, उच्च पवित्र विचार तथा दृढ़ संकल्प की ध्वनि उपरोक्त शब्दों से निकलती है उसे हम सावोनारोला के जीवन के अन्तिम सार्वजनिक भाषण में भी सुनते हैं। आदि से अन्त तक इस सन्यासी के जीवन में हमें सुन्दर मानवत्व के दर्शन होते हैं।

सावोनारोला ने अपने पत्र में यह भी लिखा कि अलमारी के अमुक स्थान पर मैं अपनी एक पुस्तक छोड़ आया हूँ जिसमें कि

* विशाल रोमन साम्राज्य के एक सर्वोच्च नायक और विजयी नेता थे। इतिहास में इनका नाम यशस्वी एवं प्रतिभाशाली महापुरुषों की प्रथम पंक्ति में है।

उन विचारों की विवेचना की है जिनसे प्रेरित होकर मैंने गृह-त्याग का निर्णय किया था। इस पुस्तक का शीर्षक था—संसार में घृणा। उपरोक्त पत्र के भावों को दुहराते हुए वह लिखता है :—

"एक भी पुण्यात्मा मनुष्य नहीं दीखता। हमें तो दीन ग़रीब स्त्रियों और बच्चों से ही शिक्षा लेना उचित है क्योंकि उनमें अब भी निर्दोषिता की कुछ छाया बची हुई है। साधुओं पर अत्याचार हो रहे हैं। इटली के लोग इजिप्ट वालों के समान बन गये हैं जिन्होंने कि ईश्वर के भक्तों को बन्धन में रखा था। किन्तु ईश्वर का प्रकोप सन्निकट है। उसके सूचना देने वाले—आनेवाली घटनाओं के परिचायक—अकाल, बाढ़, रोग आदि लक्षण पहिले ही से दिखलाई पड़ रहे हैं। हे प्रभु, एक बार फिर रक्त-सागर को विभाजित कर दो जिससे कि आप के रोष-प्रवाह में पड़कर पापी-जनों का सत्यानाश हो जाय।"

इन शब्दों में सावोनारोला के विचारों का एक नूतन आधार दृष्टिगत होता है। संसार उसे पापमय दीखता था। इतना ही नहीं, उसे विश्वास था—और आगे चलकर यह विश्वास उसके कार्यों की उग्र प्रेरक शक्ति बन गया—कि इन पापियों पर परमात्मा का कोप-वज्र शीघ्र ही गिरने वाला है। इसी से बचने के लिये—अथवा इसी से बचने का मार्ग ढूँढ़ने की इच्छा से—वह मठ की शरण लेता है। इसी कारण उसने मठ के द्वार पर आकर कहा था कि "मैं पापों का प्रायश्चित करने आया हूँ।"

———

(२)

वोलोना के मठ में

नवदीक्षित श्रावक के नाते मठ-प्रवेश करते ही सावोनारोला के जीवन का प्रथम परिच्छेद समाप्त होता है। इस समय उस की अवस्था लगभग २३ वर्ष की थी। उसका क़द मँझोला था। त्वचा पर उभरी हुई नसों की प्रधानता थी। आँखें तेजपूर्ण थीं और उनसे ऐसी तीव्र ज्योति निकलती थी कि मानों अग्नि-स्फुलिंग बरस रहे हों। शुक के समान ऊँची और वक्र उसकी नाक थी। जबड़ा बड़ा था। उसके मोटे २ ओंठ इस प्रकार सिमटे से रहते थे कि उनमें दृढ़-निश्चय प्रगट होता था। ललाट पर की गहरी रेखायें गम्भीर तत्वों के सतत चिन्तन की सूचना देती थीं। यद्यपि उसके मुखमण्डल पर सौन्दर्य की छवि नहीं थी तथापि उसमें सौजन्य की उग्र-विभूति प्रस्फुटित होती थी और विषपादमय हास्य की एक रेखा उसकी रूक्ष मुखाकृति को ऐसी उदार मनोज्ञता से आच्छादित कर देती थी कि प्रथम दर्शन से ही उसके प्रति श्रद्धा के भाव जागृत होजाते थे। उसके आचार में सादगी थी। उसके शब्द खरे और अलङ्कारों से रहित होते थे,परंतु कभी २ उनसे ऐसी प्रचण्ड शक्ति निकलती थी कि सुनने वाले क़ायल व निरुत्तर होजाते थे।

भक्ति और उत्साह के साथ श्रावक सावोनारोला अपने कर्त्तव्यों में लग गया। मठ में उसका जीवन गम्भीर अध्ययन, तपश्चर्या एवं आध्यात्मिक ध्यान चिंतन में बीतता था। व्रत संयम आदि के कारण उसकी देह इतनी कृश होगयी थी कि दूर से वह छाया मूर्ति के समान प्रतीत होता। नवदीक्षित श्रावक के लिये जो कठिन से कठिन व्रत व नियम विहित थे उन्हें वह प्रसन्नता से निबाह लेता था। वह स्वल्प भोजन करता, लोहे की सलाखों वाली खाट पर घास-फूस तथा एक कम्बल बिछा कर सोता। उसके वस्त्र रहते तो थे मोटे खद्दड़ के परन्तु वह उन्हें बहुत साफ-सुथरे रखता था। विनय शीलता व आज्ञाकारिता में कोई भी सहपाठी उसकी बराबरी नहीं कर सकता था। उसकी धर्म-निष्ठा को देखकर उस आचार्यों तक को आश्चर्य होता और उसके साथी समझते थे कि यह सदैव किसी दिव्य-ध्यान में तन्मय रहता है। धर्म-ग्रन्थों के साथ-साथ वह अरिस्टोटल के दर्शन का भी मनन करता और यह खोजने का प्रयत्न करता कि उससे ईसाई-मत के सरल आध्यात्मिक सिद्धान्तों पर क्या प्रकाश पड़ता है।

आत्मशुद्धि के लिये मठ में प्रवेश करते हुए सावोनारोला ने तुच्छ से तुच्छ कार्य के लिये अपनी सेवा समर्पित की थी। जो कुछ कार्य उसे मिला उसने उत्साहपूर्वक किया और भिक्षु तथा उपदेशक बनने की तैयारी करने लगा। परन्तु उसके गुण तथा अध्ययनशीलता के कारण मठाधिकारियों ने उसकी शीघ्र पदोन्नति की और उसे श्रावकों का शिक्षक नियुक्त कर दिया।

जो नवयुवक स्वयम् अपने लिये ही मार्ग खोज रहा हो उसे शिक्षक-पद मिलना कहाँ तक उसके लिये उपयोगी है इस प्रश्न की छाया सावोनारोला के विचारों पर अवश्य पड़ी होगी। इस नवीन दायित्व के कारण वह अपना सारा समय ईश्वरोपासना व आध्यात्म-चिंतन में नहीं लगा सकता था। तथापि गुरुजनों की आज्ञा शिरोधार्य कर वह मनोयोगपूर्वक अपने नये कर्त्तव्य की सेवा में लग गया।

संसार के पापपूर्ण एवं स्वार्थप्रधान कोलाहल से भागकर सावोनारोला ने मठ का आश्रय लिया था। जिस शान्ति के लिए उसकी आत्मा पिपासित थी वह उसे प्रार्थना, तप, व्रत आदि द्वारा मिली भी। किन्तु भविष्य के लिये उसे आशा की कोई ज्योति नहीं दिखलाई दी। मठ में आकर उसे ईसाई धर्म-संस्था की (जिसे हम आगे चर्च कहेंगे) शोचनीय दशा को देखने का भी मौक़ा मिला था, इससे उसके हृदयको भारी धक्का लगा और 'चर्च की अधोगति' नामक कविता द्वारा उसके उद्‌गार निकल पड़े।

उपरोक्त कविता में सावोनारोला तथा ईसाई धर्म की अधिष्ठात्री देवी, प्रभु ईसा की माता, कुमारी मरियम का कल्पित कथोपकथन है। सावोनारोला पूछता है—"प्राचीन स्मृतिकार, प्राचीन साधु-सन्त अब कहाँ हैं? वह विद्या, वह प्रेम, वह पवित्रता कहाँ गई?"—कुमारी उसका हाथ पकड़कर एक गुफ़ा की ओर ले जाती है और कहती है "जब मैंने देखा कि उद्धत ऐश्वर्य-लालसा ने रोम पर चढ़ाई की और सब वस्तुओं को

भ्रष्ट कर डाला, तब मैंने भागकर यहाँ शरण ली और यहीं पर आँसू बहाते हुए अपने शोक के दिन काट रही हूँ।" इसके अनन्तर देवी उसे अपने घाव दिखलाती है जिनसे कि उनका सुन्दर शरीर क्षत-विक्षत एवं विकल हो रहा है। सावोनारोला देखता है कि देवी का वक्षःस्थल शत २ घावों से क्षत-विक्षत हो रहा है और वह पूछता है—"यह सब किसने किया ?" देवी मरियम रोम की तरफ इशारा करती हुई पत्थर को भी पिघला देने वाली आर्तवाणी से कहती हैं—"उस बेईमान उद्धत वेश्या ने।" तब सावोनारोला पुकार उठता है—"हे परमात्मा, हे देवी, मैं उसका अङ्ग-भङ्ग कर सकूँ।" देवी मरियम उत्तर देती है—"आँसू बहाओ और शान्त रहो, मुझे तो अभी यही ठीक जान पड़ता है।"

जिस कविता का सारांश ऊपर दिया गया है उस में कवि-कल्पना और विषादमय भावुकता के साथ साथ कर्मवीर के उत्साह और असन्तोष की झलक भी दिखलाई देती है। मठ में जो शान्ति सावोनारोला को मिल सकी है क्या वह स्थायी होगी ? उसका कर्त्तव्य क्या है ? वह अपने जीवन को किस कार्य के निमित्त अर्पण करे ? संसार से भाग कर मठ के एक कोने में बैठ पाप व पाखण्ड के भयंकर कोलाहल को न सुनने व भुला देने में ही क्या धर्म की विजय है ? आत्मा ने कहा यह तो कायरता है। कर्मक्षेत्र में कूदने की तैयारी करने के लिये जिस शान्ति का आश्रय लिया जाता है वह स्थायी नहीं हो सकती,

उस से आत्मा की उद्दीपन स्फूर्ति को विश्राम नहीं मिल सकता। धर्माचार्य अपने कर्त्तव्यों को भूलकर विषय-वासना में मस्त हैं, धर्म-संगठन ढीला पड़ गया है। ऐसी दशा में क्या निकम्मी व्यक्तिगत शान्ति ही वांछनीय है? अन्तरात्मा से आवाज निकली—यह तो ईश्वर की पराजय होगी। बोलोना के विशाल मठ की दालान में तथा उसके नीरव उद्यान में मस्तक झुकाये घूमते हुए श्रावक सावोनारोला के हृदय में ऐसे ही विचार उठे होंगे। उसकी आत्मा का उत्तर अन्तर-देश में गूंजता और उससे कर्त्तव्य-पथ को निर्दिष्ट करता रहा। जाओ, पतन से मानव का उद्धार करो, सुधारक बनो। जाओ, पाप से युद्ध करो, पाखण्ड से मनुष्यों को बचाओ, धर्मवीर बनो। यह सच है कि ६,७ वर्षों तक वह इन उद्गारों को अपने हृदय के भीतर ही दबाये रहा। किन्तु इस दमन के कारण उनकी स्फूर्ति बढ़ती गई और जब उन्हें निकलने का अवसर मिला तब उनसे नैसर्गिक शक्ति एवं अपूर्व उद्दीपना प्रस्फुटित हुई।

बोलोना के मठ में इस प्रकार सावोनारोला के दिन बीतते रहे। नवागत शिष्यों को पढ़ाने में उसका समय कटता किन्तु चर्च की दशा से उसकी आत्मा दुःखित रहती। वह कभी रोता, कभी चुपचाप बैठा २ चिन्ता में लीन रहता और सदैव यही प्रार्थना करता कि "हे परमात्मन् मुझे शक्ति दो कि मैं इस अधः-पतन का सर्वनाश कर सकूं।" धीरे २ कर्त्तव्य-पथ उसके सामने स्पष्ट हो रहा था। समय व अवसर आने की देरी थी।

डोमिनीशियन संप्रदाय मुख्यतया धर्मोपदेशकों का संप्रदाय था। उसके मठों में शिक्षित होकर भिक्षुगण-धर्म-प्रचार के लिये निकलते थे। अपनी विद्वत्ता और धर्मशीलता के कारण सावोना-रोला को भी धर्मोपदेशक का पद मिला। इससे उसका उत्साह बढ़ा क्योंकि बहुत दिनों से वह अपने विचारों को प्रगट करने के लिये व्यग्र था। पहिले वह अपने जन्म-स्थान फरेरा को भेजा गया। वहाँ उसकी अपने माता-पिता, भाई-बन्धुओं से भेंट हुई। किन्तु अब तो उसका मार्ग निश्चित हो चुका था इस लिये वह उनसे बहुत कम मिलता जुलता था। उसका कार्य था गिरजाघर में तथा यहाँ-वहाँ घूमकर धार्मिक विषयों पर व्याख्यान देना। उस जमाने के धर्मोपदेशकों के भाषणों में बहुधा नैयायिक तर्क तथा शब्दाडंबर की प्रचुरता होती थी। वे अपने पांडित्यको-विशेष कर अरिस्टोटल के दार्शनिक सिद्धान्तों का उल्लेख करके-दिखलाने की कोशिश करते थे। उनके उपदेशों में शुष्कता तो होती ही थी, कभी २ अश्लीलता की मात्रा भी बहुत अधिक हो जाती थी। सरलता व हृदयग्राहकता का उनमें नितान्त अभाव रहता था। वे सदा अपनी विद्वता का विज्ञापन ही दिया करते थे इससे संभव है कि कभी उनका असर लोगों के मस्तिष्क पर पड़ता हो किन्तु आत्मा पर उनकी छाप नहीं लगती थी। जन साधारण तो सीधी सादी भाषा ही समझ सकते हैं उनके सामने तर्कों की सूक्ष्म विवे-चना तथा टीकाओं का उल्लेख करना किस काम का? सावो-नारोला ने उपरोक्त सामयिक शैली का तिरस्कार किया। उसने

बाइबिल की शैली को अपना आधार बनाया। किन्तु उसकी वाक्-पटुता अभी कच्ची थी, इस कला में न उसे अभ्यास था, न अनुभव। उसकी नवीन शैली को विद्वान् लोग अच्छा नहीं समझते थे। अभी उसकी वाणी में लोगों के अंतरतम प्रदेश को हिला देने की शक्ति नहीं आयी थी। इस कारण फरेरा में उसे कोई उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली। किन्तु वहाँ भी कभी २ उसकी उस सरस, स्फूर्तिमयी एवं अद्भुत वाग्मिता की झलक दिखलाई दे जाती थी, जिसने कि आगे चलकर उसे संसार का एक सर्व श्रेष्ठ धर्मोपदेष्टा बनाया। एक समय वह नाव पर कहीं जा रहा था। उसमें कई सैनिक भी बैठे थे। वे जुआ खेल रहे थे, और शोर मचाते हुए बेफ़िकरी से क़समें खाते थे, मानों उन्हें भिक्षु सावोनारोला की उपस्थिति की कोई परवाह ही नहीं थी। सहसा सावोनारोला उठ खड़ा हुआ, और प्रकोप एवं भर्त्सना भरे वाक्यों से उन्हें सम्बोधित करने लगा। उनमें से ११ सैनिक उसी दम हाथ जोड़ और घुटने टेक कर बैठ गये और अपने अपराध का प्रायश्चित कर उससे क्षमा याचना करने लगे। सावोनारोला में स्वाभाविक वाग्मिता थी, परन्तु उसकी कला का विकास होना बाक़ी था। इसलिये अभी जनसमुदाय को उपदेश देने में उसे आशाप्रद सफलता नहीं मिल पाई। परन्तु उसकी साधुता एवं विद्वता के प्रति लोगों की गहरी श्रद्धा हो गई। १४८१ ई० में फरेरा और वेनिस के बीच युद्ध के बादल घिर आये। इसलिये फरेरा का डोमिनीशियन विश्वविद्यालय बन्द कर दिया

गया और वहाँ के भिक्षु यहाँ-वहाँ भेज दिये गये। सावोनारोला को फ्लोरेंस जाने की आज्ञा मिली।

कुटुम्बियों और मित्रों से विदा लेकर सन् १४८१ के अन्त में सावोनारोला ने फरेरा से प्रस्थान किया। अदृश्य ने फ्लोरेंस को उसके महान् अनुष्ठान का क्षेत्र नियत किया था, किन्तु यह फ्लोरेंस न उसकी जन्म-भूमि थी और न प्रथम २९ वर्षों तक उसका उससे कोई सम्बन्ध ही था। फरेरा में उसे उत्साहप्रद सफलता नहीं मिली, यह सच है। परन्तु इससे वह निराश नहीं हुआ। विद्वानों का अपने घर में आदर नहीं होता—यह कहावत उसे याद आई, उसने समझा कि मुझे अधिकाधिक आत्म-शुद्धि की आवश्यकता है। उसने सोचा कि फरेरा के लोग मुझे वही पुराना पापी समझकर मेरी बातों पर ध्यान नहीं देते थे। किन्तु इससे उसकी आध्यात्मिक स्फूर्ति किसी प्रकार कम नहीं हुई, उसकी ईश्वर भक्ति दृढ़ होती गई और वह सोचने लगा कि जितनी पवित्रता और आत्म-त्याग मेरे जीवन में होगा, उतना ही प्रभाव मेरे वचनों का लोगों पर पड़ेगा। इसलिये फ्लोरेंस जाते समय उसका हृदय उत्साह एवं आनन्द के भावों से भर रहा था, फ्लोरेंस की कीर्ति, उसका कला-सौंदर्य, उसके आस-पास के प्रदेश की प्राकृतिक शोभा, संतमार्क के विशाल एवं प्रसिद्ध मठ की शान्ति और रमणीयता, वहां के भिक्षु-संघ की उच्च शिक्षा और संस्कृति, सभ्य शिक्षित फ्लोरेंस वासियों के बीच कार्य का नूतन क्षेत्र—इन सबका ध्यान करते हुए सावोना-रोला का अन्तःकरण नयी २ आशाओं से आह्लादित हो रहा था।

धार्मिक तथा नैतिक सुधार कर सच्चे आध्यात्मिक आदर्श की विजय-पताका को फहराना—यही अब तक सावोनारोला को अपने जीवन का उद्देश्य दृष्टिगत होता था। फ्लोरेंस आकर, नवीन परिस्थिति का सामना करके, उसे यह जानना बाक़ी था कि जब तक लोग स्वत्वाधिकारों से वंचित हैं, तब तक सदाचरण का मार्ग कण्टकाकीर्ण ही रहता है। अतएव सुधारक को बरबस उद्धारक भी बनना पड़ता है। दासता पापाचार की चेरी है और स्वतन्त्रता मनुष्य की नैतिक शक्तियों की मुक्ति-दात्री है—इस संदेश की घोषणा भी उसे फ्लोरेंस में करना पड़ी। धर्मराज्य के लिये केवल यह ही आवश्यक नहीं है कि लोग धर्मशील तथा सदाचारी हों, उसके लिये यह भी नितान्त अनिवार्य है कि वे दासत्व की जंजीरों को तोड़कर स्वतंत्र मनुष्य भी बनें।

फ्लोरेंस में ही सावोनारोला के जीवन के शेष दिन बीते। यहीं उसने सतत परिश्रम किया, यहीं उसे स्मरणीय सफलता मिली, यहीं उसके सुख और अभ्युदय के दिन बीते, यहीं वह बेताज का राजा बना, यहीं वह अपने जीवनोद्देश्य की सिद्धि की चरम-सीमा तक पहुँचा और यहीं उसके दुःख और पराभव के दिन कटे, यहीं उसने कठिन यातना और अपमान को सहा, यहीं उसे अपने प्राणों की बलि देना पड़ी। फ्लोरेंस ही उसकी विजय, पराजय तथा अमरकीर्ति का क्षेत्र बना।

(३)
फ्लोरेंस

लारेन्जो डी मेडिसी इस समय फ्लोरेंस का सर्वेसर्वा था। उसने राज्य में शान्ति और सुव्यवस्था की स्थापना की थी। प्रजातन्त्र का तो नाममात्र ही रह गया था, वास्तव में सारी सत्ता लारेन्जो की मुट्ठी में थी। सर्वत्र वैभव और अभ्युदय ही दीखता। अमनचैन का वातावरण था। तरह तरह के उत्सवों और तमाशों में नागरिक लोग रहते थे। लारेन्जो के नेतृत्व में अश्लील एवं मादक नाचों और गीतों का फ्लोरेंस में इतना अधिक प्रचार हुआ कि लोग लाज शर्म को भूल कर उन्मत्त से हो गये। वह स्वयं प्रथम श्रेणी का विषयसेवी था और कुलीन घरानों के नवयुवकों को भी विषयवासना में दीक्षित करता था। वे उसके बेदाम के गुलाम बन जाते और उसकी प्रशंसा तथा चापलूसी करने में कभी नहीं अघाते थे। इन सब बातों में लारेन्जो की कूटनीति काम कर रही थी। जनसाधारण को उत्सवों और तमाशों में फँसा, कुलीन नवयुवकों को विषयभोग के दास बनाकर वह अपने पद को सुरक्षित रखना चाहता था। वह जनसाधारण के नैतिक व मानसिक पतन को अपनी सत्ता का आधार बनाना चाहता था। अवसर पड़ने पर वह कठोर दमन नीति का भी आश्रय लेता था। जिन लोगों ने उसके एकाधिपत्य

का विरोध किया, जिन लोगों ने प्राचीन प्रजासत्ता को पुनर्जीवित करने की चेष्टा की अथवा इच्छा प्रगट की, उनको चुन २ कर उसने नष्ट कर डाला। कितने ही मार डाले गये, कितने ही जेलों में ठूँस दिये गये। बहुतों को निर्वासन-दण्ड मिला। दलबन्दियाँ नष्ट हो चुकीं थीं। अब सड़कों पर मारकाट नहीं होती थी। प्रबल शासक ने समस्त उपद्रवकारिणी शक्तियों को दबा रखा था।

कह चुके हैं कि फ्लोरेंस पुनर्जागृति का एक प्रमुख केन्द्र था। वहाँ के नागरिक इस आन्दोलन के रँग में रँग से गये थे। वे ग्रीक और लेटिन भाषाओं को पढ़ते और प्राचीन साहित्य के उत्तमोत्तम ग्रन्थों की चर्चा करते। कितनी ही स्त्रियाँ भी इसमें दिलचस्पी लेती थीं। चित्रकारी, मूर्त्ति-कला तथा भवन-निर्माण-कला की बहुत उन्नति हो रही थी। जहाँ तहाँ सुन्दर प्रासाद, भवन, उपासना-मंदिर, विद्यालय आदि बन रहे थे। स्वयं लारेन्जो इस विविध-विषयक आन्दोलन का अभिभावक था। वह दार्शनिकों, विद्वानों, कवियों, कलाविदों आदि का मित्र, नेता और संरक्षक था। उसके दरबारी दर्शन, साहित्य, कला आदि में निपुण थे, और इन विषयों की चर्चा-आलोचना उनके वार्त्तालाप का एक महत्व-पूर्ण अंग होता था। उसका सभासद् पोलिजियानो उस युग का सर्वश्रेष्ठ विद्वान् माना जाता था। दूसरे का नाम था पुल्की, जिसकी कविताओं की प्रशंसा सारे यूरोप में फैली थी। लारेन्जो का शिक्षक मार्सिलियो फिसिनो था। वह एक विख्यात दार्शनिक

था और प्लेटो-दर्शन-शास्त्र के शिक्षणालय का प्रधान था। युवक पिको डेला मिरेन्डोला लारेन्जो का अंतरंग मित्र था। उसकी सर्वतोमुखी प्रतिभा अद्भुत थी। संतमार्क के मठ में, जिसका कि कासिमो ने जीर्णोद्धार कराया, लारेन्जो ने एक सुरम्य उद्यान बनाया और जितनी प्राचीन मूर्तियाँ उसे मिल सकीं, उन्हें वहाँ प्रतिष्ठित किया। इसके अतिरिक्त बुओनारोटी नामक मूर्त्तिकार को उत्तमोत्तम मूर्तियाँ बनाकर मठ व उद्यान की शोभा बढ़ाने के लिये नियुक्त किया। इन सब बातों से लारेन्जो की कीर्त्ति और लोकप्रियता बढ़ी।

लारेन्जो विविध गुण व प्रतिभा से संपन्न पुरुष था। उसकी शक्ति अद्भुत थी। दिनभर वह राज्य-कार्य में अथक परिश्रम करता। वह अमन चैन, सुव्यवस्था तथा अपने एकाधिपत्य की रक्षा के लिये सदैव सतर्क और कटिबद्ध रहता। कभी इस षड़यंत्र को कुचलता, कभी उस शत्रु की गति-विधि को देखता, कभी युद्ध को जाता, कभी सन्धि चर्चा में लगा रहता। कभी विद्वानों का स्वागत करता, कभी साहित्य अथवा कला की आलोचना में व्यस्त रहता, कभी स्वयं कविता करता और जनसाधारण के उत्सवों में भाग लेने से कभी न चूकता। दिन कठिन परिश्रम में बीतता, संध्या पंडित-मंडली के साथ कटती, रात्रि पंचमकार की सेवा में व्यतीत होती। उसका स्वास्थ्य अच्छा था, आयु भी अधिक नहीं हुई थी, किन्तु अविश्रान्त परिश्रम एवं अतृप्त विषयासक्ति के सामने उसका ठहरना कठिन था।

लारेन्जो को इतिहासकारों ने 'ऐश्वर्यशाली' की उपाधि से भूषित किया है। इसमें सन्देह नहीं कि वह प्रतिभाशाली महा-पुरुष था। लेकिन बहुत से इतिहासलेखकों ने उसके गुणगान में अतिशयोक्ति की है और उसके दोषों को छिपाया है। उसके द्वारा कला, साहित्य आदि को जो महान् प्रोत्साहन मिला, वही उसकी कीर्त्ति का प्रधान आधार है। यह भी मानना पड़ेगा कि वह स्वयं एक अच्छा कवि, समालोचक एवं विद्या-रसिक था। गुण-ग्राहकता उसके स्वभाव की एक विशेषता थी। उसने जिस प्रकार अपने एकाधिपत्य को दृढ़ बनाया, इससे यह साबित होता है कि वह एक सफल एवं योग्य शासक भी था। उसकी बुद्धि तीक्ष्ण थी और वह चतुर एवं कुटिल राजनीतिज्ञ था। उसकी नीतिमत्ता के कारण इटली में फ्लोरेन्स को आदरणीय स्थान प्राप्त हुआ। किन्तु लारेन्जो की विद्वता एवं चतुरता ने उसमें सद्‌असद् विवेक अथवा परोपकार के भावों को जाग्रत नहीं किया। स्वार्थ के सामने वह सचाई तथा आत्म-सम्मान का कोई मूल्य नहीं समझता था। उसके व्यवहार में कुशलता व शिष्टता थी—दया एवं सहानुभूति नहीं। उसमें प्रतिभा एवं सामर्थ्य थी, किन्तु लोक-सेवा की उच्च भावना नहीं। धन-लालसा के कारण उसने कई सार्वजनिक संस्थाओं की संपत्ति को छीन लिया। अपनी सत्ता को बनाये रखने के लिये उसने नागरिकों के नैतिक अधःपतन को उत्तेजित किया। उसने जो उत्सव क़ायम किये उनमें कामुकता और विलासिता का राज्य रहता था। इन

उत्सवों के लिये लारेन्जो ने ऐसे-ऐसे अश्लील और कामोद्दीपक गीत बनाये, जिनके सामने भद्रता व संयम का ठहरना असम्भव था। नर-नारी उन्हें सानन्द गाते फिरते। उसके समय में फ्लोरेन्स विषय-भोग का क्रीड़ा-स्थल बन गया।

लारेन्जो के खुशामदी सभासदों तथा इतिहास लेखकों ने उसे आदर्श शासक घोषित किया है। किस प्रकार रक्त बहाकर उसने अपने निरंकुश आधिपत्य को क़ायम रखा, उसके राज्य में जनता को कितने कम अधिकार प्राप्त थे, उसने अपनी फ़िज़ूलख़र्ची के लिये सार्वजनिक संस्थाओं को किस प्रकार लूटा, वह स्वयं कैसी नग्न विलासिता का दास था, उसने किस प्रकार अपने स्वार्थ के लिये जनता के नैतिक अधःपतन को घोरातिघोर बनाने में अपने गुणों का दुरुपयोग किया, यह सब वे भूल जाने को तैयार हैं, क्योंकि वह विद्या और कला का संरक्षक था।

और जिस बौद्धिक एवं कलाविषयक आन्दोलन का प्रोत्साहन लारेन्जो की कीर्ति का आधार-स्तम्भ समझा जाता है उसकी नैतिक दृष्टि से हम आलोचना करें। हम कह चुके हैं कि इसके तीन दोष थे। पहिला-इसका संदेश अनेक अंशों में ईसाई-धर्म के तत्वों के प्रतिकूल था। दूसरा—इसका कोई नैतिक आदर्श नहीं था। तीसरा—यह प्राचीन यूनान के अन्ध-अनुकरण की प्रवृत्ति को पुष्ट कर रहा था। सारांश यह कि इस आंदोलन के द्वारा ईसाई-धर्म के कई पवित्र सिद्धांतों की—सरलता, नम्रता, त्यागपरता आदि की अवहेलना हो रही थी। जो

विद्वान् लारेन्जो के दरबार की शोभा बढ़ाते थे, उनके जीवन में कोई नैतिक पवित्रता व आध्यात्मिक सौन्दर्य नहीं था। फ्लोरेन्स के स्वत्वाधिकारों का अपहरण करने वाले लारेन्जो के सेवक कहलाने में वे अपना गौरव मानते और उसकी स्वार्थ-लालसा क्रूरता तथा विषयवासना पर परदा डालकर सदैव उसकी प्रशंसा में ही लगे रहते थे। तत्कालीन अधःपतन को दूर करने का प्रयत्न तो दूर रहा, वे स्वयं उसके पुरोहित बने और उसमें सहयोग दिया। जो लोग इस व्यापक व्यभिचार से खिन्न एवं स्वातंत्र्यापहरण से दुःखी थे, उनकी संख्या कम थी, उनके चारों ओर सार्वजनिक उदासीनता के कारण निराशा का घना अन्धकार फैला था और उनका जीवन सदैव संकटों से घिरा रहता था। इसलिये वे यत्र तत्र अज्ञातवास में ही रहते थे। लारेन्जो ने सार्वजनिक मनोवृत्ति को इतना पतित बना दिया था कि स्वतंत्रता के इन इनेगिने पुजारियों को निकट भविष्य में उद्धार के कोई लक्षण नहीं दीखते थे।

फ्लोरेन्स में वैभव था, फ्लोरेन्स वासी धनी और सभ्य थे। नगर कला एवं विद्या का केन्द्र था। वहाँ के भवन सुन्दर और विशाल थे। शासक प्रतापी था। किन्तु फ्लोरेन्स वासी दासत्व की बेड़ियों में जकड़े हुए थे, और दुःख की बात तो यह थी कि विषय-विलास में वे ऐसे मतवाले हो रहे थे कि इन बेड़ियों को छाती से लगाकर हर्ष से नाचते थे। अस्तु।

बड़े उत्साह के साथ नयी नयी आशायें लेकर सावोनारोला ने संत मार्क के मठ में प्रवेश किया। किन्तु वास्तविक स्थिति को

देखकर उसके हृदय पर भारी धक्का लगा। फ्लोरेन्स से घनिष्ट परिचय होते ही उसने समझ लिया कि इनकी बौद्धिक संस्कृति के भीतर नास्तिकता एवं क्षुद्रता के भाव भरे हुए हैं। संतमार्क के भिक्षुओं में भी उसने सच्ची धार्मिक भक्ति एवं भावना को नहीं पाया। फ्लोरेन्स के विद्वानों के चरित्र को देखकर सावोनारोला उनकी विद्वता से घृणा करने लगा। वह बड़ी आशा से फ्लोरेन्स आया था इसलिये निराशा का प्रतिघात भी उसके हृदय पर तीव्रता से पड़ा। वह मानसिक शान्ति के लिये कठिन से कठिन व्रत और उपवास करता और प्रार्थना में घंटों तन्मय रहता। जहाँ तक सम्भव होता वह एकान्त में विचार-चिंतन में लीन रहता।

संतमार्क के मठ में पहिले पहिल उसे नवदीक्षित श्रावकों के अध्ययन का कार्य सौंपा गया। सावोनारोला ने सच्ची लगन से उसे प्रारम्भ किया। संतमार्क केवल एक विख्यात उपासना मंदिर ही नहीं, वह शिक्षा और कला का केन्द्र भी था। सावोनारोला सदैव अपने शिष्यों को बाइबिल का मनन करने के लिये उत्साहित करता। बहुधा पढ़ते २ वह भक्ति-विह्वल हो जाता और उसकी आँखों में आँसू चमकने लगते। वह प्रार्थना करते हुए रात्रि भर जागरण करता और जब प्रातःकाल वह शिष्यों के सामने आता उसके मुखमण्डल पर आध्यात्मिक तेज की ज्योति देदीप्यमान रहती। बहुधा धर्म-चर्चा करते २ वह नैसर्गिक आनन्द से पुलकित हो जाता। शिष्यों पर इन बातों का गहरा प्रभाव पड़ा। मठाधिकारी भी उसकी प्रतिष्ठा करने लगे। फलतः

नगर के संत लारेन्जो नामक गिर्जाघर में धर्मोपदेश देने के लिये वह निमन्त्रित किया गया।

सावोनारोला तथा *फ्लोरेन्सवासियों के विचार, रुचि एवं* भाव इतने विपरीत थे कि पहिले लोगों ने उसके भाषणों को पसन्द नहीं किया। सावोनारोला की आवाज कर्कश थी, उसकी भाषा सरल, तीखी तथा अलंकार रहित होती थी। उसके शब्द हृदय से निकलते थे। उसकी शैली में न आडम्बर था, न कृत्रिमता। जब वह जोश से भर जाता तब उसके हाव-भाव तथा सिर और हाथ हिलाने में प्रचण्डता आजाती। वह अपने भाषण में सदैव किसी धार्मिक विषय की ही विवेचना करता और बाइबिल के ही उद्धरण देता। किन्तु फ्लोरेन्स के लोग दूसरे प्रकार के व्याख्यानों के अभ्यस्त थे। वे वक्ता के हृदय को नहीं, उसके मस्तिष्क को देखना चाहते। वे उसी वक्ता को पसन्द करते जो कि अपनी शैली, हाव-भाव व शब्दावली में किसी प्राचीन वक्ता व लेखक का सफल अनुकरण कर सकता और जो प्राचीन विद्वानों के उद्धरण देकर अपने पांडित्य का परिचय देता। व्याख्यान का विषय कैसा है, उसमें कोई धार्मिक अथवा आध्यात्मिक तत्व है या नहीं, इसकी वे परवाह नहीं करते थे। इतना ही नहीं, वे तो उसी वक्ता को पहुँचा हुआ समझते जो कि धर्म के प्रति संशय व तिरस्कार के भाव प्रगट करता। फ्लोरेन्सवासी कहा करते कि बाइबिल की भाषा परिष्कृत नहीं, उसके पढ़ने से हमारी लेटिन बिगड़ जायगी,किंतु सावोनारोला को तो पापाचार के विरुद्ध गर्जन

करना था । वह जन साधारण की धार्मिक व नैतिक उदासीनता की तीव्र निन्दा करता, कवि एवं दार्शनिकों का खरी-खोटी सुनाता। धर्म व सदाचार से तटस्थ रहने वाले तत्कालीन विद्या और कला की वह कठोर आलोचना करता और प्राचीनता के अन्ध अनुकरण की प्रवृत्ति का विरोध करता । उसकी शैली नयी थी। जो बात वह कहता वे लोगों के लिये असाधारण थीं । वह फ्लोरेन्स के लिये अनजान विदेशी था । अभी उसे वह प्रसिद्धि नहीं मिली थी जिसके बल पर वह लोगों को आकर्षित करता, जिससे कि वे उसकी बातों को ध्यान पूर्वक सुनते और समझते । फल यह हुआ कि फ्लोरेन्स के लोग उसके व्याख्यानों में दिलचस्पी नहीं लेते थे और उसकी बातों पर हँसते थे । कभी-कभी तो २०, २५ स्त्री-पुरुषों से अधिक उपस्थिति नहीं होती थी ।

फ्लोरेन्स वासियों के इस रूखे बर्त्ताव से सावोनारोला को बहुत दुःख हुआ और उसने सार्वजनिक व्याख्यान देना स्थगित कर दिया । तथापि वह हताश नहीं हुआ । उसका आध्यात्मिक प्रकोप बढ़ता गया और उसकी यह धारणा पक्की होती गई कि वास्तव में लोगों को उसके उपदेश की बहुत आवश्यकता है । किन्तु जब फ्लोरेन्स के लोगों की उदासीनता को देखता, जब वह देखता कि वे उसके प्रतिद्वन्दी भिक्षु मरियानो के धर्मतत्वहीन शब्दाडम्बर पूर्ण भाषणों को ही पसन्द करते हैं तब उसका हृदय क्षोभ से भर जाता । वह क्या करे ? कठोर व्रत, तप, जागरण आदि से उसका शरीर दुर्बल होगया था । मानसिक उथल-

पुथल से उसकी आत्मा व्याकुल थी। उसके विचारों को सुनने समझने वाला कोई नहीं था, उनसे सहानुभूति करना तो दूर रहा। ऐसी दशा में परमात्मा के सिवाय उसकी क्या गति थी ! इस सर्वव्यापी नैराश्य और उदासीनता में मेरा पथ-प्रदर्शन करो, कोई प्रत्यक्ष आश्वासन व प्रोत्साहन देकर मेरी श्रद्धा को दृढ़ बनाओ, यही उसकी परमात्मा से पुकार थी। जब मनुष्य का सारा व्यक्तित्व, अनन्य भक्ति से ओत-प्रोत होकर नैराश्य से मुक्ति के हेतु, सांसारिक कोलाहल से दूर आध्यात्मिक एकन्त की शान्ति में परमात्मा से साक्षात्कार अथवा किसी प्रत्यक्ष-संकेत की प्रार्थना करता है, तब क्या होता है ? संशयवादी चाहे मुँह बनावें, बुद्धिवादी इसका उत्तर कुछ भी दें, किन्तु यह सत्य है कि ऐसी दशा में इस प्रकार की असाधारण घटनायें हुआ करती हैं जिनका समझना सहज सम्भव व सहज नहीं होता। उपरोक्त मानसिक स्थिति जब अत्यन्त गम्भीर हो जाती उस समय कभी २ सावोनारोला को जागृत-स्वप्न दिखलाई देते, मानो उसकी आत्मा किसी दिव्य-लोक में विचरण करने लगती, क्षणभर के लिये जैसे उसे दिव्यदृष्टि मिल जाती। ऐसे एक अवसर पर उसे प्रत्यक्ष दिखलाई दिया कि चर्च को अपने पापों के कारण किन २ विपत्तियों का सामना करना पड़ेगा और उसे एक आवाज सुनाई दी कि "जाओ, लोगों में इसकी घोषणा करो।" कभी २ उसे आकाशवाणी सुनाई देती कि "क्षणिक नैराश्य से अभिभूत मत हो, उत्साह से आगे बढ़े जाओ।" कभी २ देवदूत

दर्शन देकर उसे सान्त्वना प्रदान करते। सावोनारोला को दृढ़ निश्चय हो गया कि ईश्वर ने उसे अपना संदेश सुनाने के लिये निर्वाचित किया है। इससे उसे शान्ति मिली और आत्म विश्वास भी दृढ़ हुआ।

दिव्य-दृष्टि, ईश्वरीय संकेत का प्रत्यक्ष दर्शन, आकाशवाणी, देवदूतों से साक्षात् और सम्भाषण—इन सबकी टीका व आलोचना हम नहीं करेंगे। संशयवादी इनकी हँसी उड़ाते हैं, ठोस प्रमाण न पाकर बुद्धिवादी इन्हें पागलपन व प्रलाप भी कह बैठते हैं। किन्तु इतिहास बतलाता है कि आध्यात्मिक व धार्मिक जगत में उपरोक्त अलौकिक लक्षणों के लिये स्थान है। महात्मा ईसा, भगवान बुद्ध तथा संत फ्रांसिस के जीवन में हम इनके दृष्टान्त पाते हैं। कहते हैं कि जोन आफ आर्क को फ्रांस के उद्धार के लिये आगे बढ़ने का संदेश देवदूतों द्वारा ही मिला था। सिद्ध महात्माओं के जीवन में ऐसी घटनायें बहुधा घटा ही करती हैं, और उनके जीवन कार्यों की प्रेरक शक्तियों को खोजने वाले इतिहासकार को उनके अस्तित्व का सामना करना पड़ता है। कहने का तात्पर्य यही है कि चाहे इनका तथ्य कुछ भी हो, इन के अस्तित्व में शंका के लिये स्थान नहीं। सावोनारोला के युग में दिव्य-दर्शन पर लोगों का विश्वास था और उसने स्वयं अपने भाषणों में सैकड़ों बार इसका उल्लेख किया है। तत्कालीन फ्लोरेन्स का सब से बड़ा दार्शनिक फिसिनो कहता था कि यह सम्भव ही नहीं, प्रत्युत इसका वैज्ञानिक आधार भी है।

सन् १४८४ में डोमिनीशियन सम्प्रदाय के सन्यासियों की एक सभा रिगियों में हुई। सन्त मार्क के प्रतिनिधि के नाते सावोनारोला उसमें सम्मिलित हुआ। बड़े २ विद्वान् वहां पधारे थे। इस मण्डली में २० वर्ष का नवयुवक पिको डेला मिरेन्डोला भी था। इस छोटी अवस्था में भी वह विज्ञान, दर्शन धर्म आदि शास्त्रों में पारंगत होचुका था और २२ भाषायें जानता था। वह एक कुलीन तथा ऐश्वर्यसम्पन्न घराने में पैदा हुआ था। उसके स्वभाव में सरलता व सहृदयता थी, उसका व्यवहार शिष्ट तथा हृदयग्राही था। प्रत्येक उच्च प्रवृत्ति का अभिनन्दन करने के लिये वह सदैव उत्कण्ठित रहता। वह चाहता था कि ईसाई तथा गैर ईसाई मजहबों के बीच सामञ्जस्य की स्थापना की जाय। पिको की विलक्षण प्रतिभा की चर्चा सब कहीं होरही थी। रिगियो में भी सब की आखें इसी सौम्य नवयुवक के मुख पर लगी हुई थीं।

इसी मण्डली में सावोनारोला उपस्थित था। कहां उसका गम्भीर उदास मुखमण्डल, दुर्बल तापस शरीर, चिन्ताक्रान्त मन और एकान्तप्रियता, कहां वैभवशाली सुन्दर पिको की हास्या-लोकित मुखश्री, चञ्चलता और मिलनसारिता। दोनों में कितना अन्तर था! किन्तु पिको अपने समय के अन्य विद्वानों के समान घमण्डी और पाखण्ड प्रिय नहीं था। उच्च पवित्र भाव उसे प्रभावित करते थे। अतएव वह सावोनारोला की ओर आकर्षित हुआ।

जब तक धार्मिक सिद्धान्तों पर शास्त्रार्थ होता रहा तब तक तो सावोनारोला चुप रहा। लेकिन ज्योंही नियम-पालन का एक प्रश्न उपस्थित हुआ, वह तुरन्त उठ खड़ा हुआ और पुरोहितों तथा पादरियों के भ्रष्टाचार की तीव्र निन्दा करने लगा। मेघ-निर्घोष के समान जोर वाले उसके शब्दों ने श्रोताओं को स्तम्भित कर दिया। आध्यात्मिक प्रकोप से प्रेरित उद्गारों के प्रवाह में उसे अपने भाषण को रोकना कठिन होगया। उसके असाधारण व्यक्तित्व तथा अद्भुत आत्मिक शक्ति की छाप श्रोताओं के हृदय पर जम गई। सभी उसका निकट-परिचय पाने के लिये उत्सुक हो उठे। पिको पर तो सावोनारोला की अलौकिक वाग्मिता का ऐसा गहरा प्रभाव पड़ा कि उसी दिन से वह उसका सच्चा मित्र और प्रशंसक बन गया।

सावोनारोला प्रचार-कार्य के लिये फ्लोरेन्स के बाहर गाँवों और क़स्बों में भी जाता था। देहात की भोली-भाली जनता फ्लोरेन्स वासियों के समान 'शिक्षित' नहीं थी। सावोनारोला के हृदय से निकली हुई बातों का उनके ऊपर गहरा असर पड़ा। यहीं से सावोनारोला की सफलता का प्रारम्भ होता है। प्राकृतिक शोभा की गोद में बसा हुआ जिमिग्नानो नामक एक छोटासा नगर था। यहां प्रथम सावोनारोला ने अपने विचारों की घोषणा की। उसने कहा—चर्च को अपने पापों का दण्ड मिलेगा, फिर उसका पुनरुत्थान होगा और ये सब बातें शीघ्र ही होंगी। यह उसकी भविष्यद्वाणी थी। उसे ऐसा प्रतीत होने लगा कि कोई

दिव्य-शक्ति उसके द्वारा ये शब्द कहला रही है। इस कारण उसकी वाणी से अद्भुत शक्ति,दृढ़ता और निश्चय की ध्वनि निकलती थी। सन् १४८६ में उसने ब्रेसिया में व्याख्यान दिये। वहां भी ओज भरे शब्दों में उसने लोगों के व्यभिचार की तीव्र भर्त्सना की और कहा कि समस्त इटली अपने पापाचार के कारण ईश्वरीय प्रकोप का भाजन बन गया है। उसने कहा—"इस नगर में खून की नदियां बहेंगी। कुमारियों पर बलात्कार होंगे, पतियों के सामने ही उनकी स्त्रियों का अपहरण किया जावेगा, माताओं के सामने पुत्रों की हत्या होगी, सर्वत्र आतंक, अग्निकाण्ड और रक्तपात का बोल-बाला होगा।" लोगों को प्रोत्साहित करते हुए वह बोला—"जब तक समय है प्रायश्चित करो, पुण्यकार्य करो, दयामय भगवन् अब भी सत्यानाश से तुम्हारी रक्षा करेंगे।" वज्रनाद के समान ये शब्द सभा भवन में गूँजते रहे। लोगों ने मन्त्रमुग्ध से होकर उन्हें सुना। उनके हृदय पर आतंक छा गया और मर्मभेदी शब्द उन्हें नहीं भूले। कहते हैं कि २६ वर्ष बाद नगर में लूटमार और क़त्ले-आम मचा और उस समय वृद्धजनों को सावोनारोला की भविष्यद्वाणी याद आई।

जो आवाज़ जिमिग्नानो और ब्रेसिया में उठी वह इटली के लिये एक नयी आवाज़ थी। इससे सावोनारोला का नाम सारे इटली में फैल गया। उसका आत्म-विश्वास प्रबल हुआ और उसे अपने जीवन-प्रयास का पथ स्पष्टतया दिखलाई देने लगा। उसकी कीर्त्ति बढ़ी और इसके साथ २ उसके तप और ईश्वर-प्रेम

की भी वृद्धि हुई। भिक्षु सेबेस्टियानो कहता है कि "इस समय उसके मुखमण्डल के आस पास ज्योति-चक्र प्रकाशमान रहता था।"

दो तीन वर्षों तक सावोनारोला लोंबार्डी प्रान्त के ग्रामों और नगरों में प्रचार करता रहा। वह फ्लोरेन्स बहुत कम जाता था। संसार को त्याग देने पर भी उसके हृदय में शुष्कता नहीं थी। १४८९ में उसने पाविया से अपनी माता को एक पत्र लिखा जिसमें वह कहता है:—

"मैंने संसार को छोड़ दिया है और मैं ईश्वर का सेवक बनकर केवल अपनी आत्मा के उद्धार के लिये नहीं वरन् सबकी आत्मा के उद्धार के निमित्त नगर २ घूमता फिरता हूँ। जब ईश्वर ने मुझे शक्ति प्रदान की है तब यह भी आवश्यक है कि उसका उपयोग भी मैं उसी की इच्छा के अनुकूल करूँ। यह ध्यान में रखते हुए कि परमात्मा ने मुझे एक पुण्यकार्य के लिये चुना है तुम्हें इस पर सन्तोष होना चाहिये कि मैं उसे अपने जन्म-स्थान से दूर पूरा करूं क्योंकि वहाँ मैं फरेरा की अपेक्षा अधिक सफल हो सकूंगा। फरेरा में तो मेरे साथ भी वही बात होती जो कि प्रभु ईसा के साथ हुई थी जब कि उनके नगर के लोग बोल उठे थे कि "क्या यह मनुष्य स्वयं एक बढ़ई तथा बढ़ई का बेटा नहीं है?" किन्तु अपने नगर से दूर ऐसी बातें मुझ से किसी ने नहीं कीं। यहां तो मेरे बचनों का बहुत आदर होता है और जब मैं किसी स्थान से बिदा लेता हूं तो वहां के स्त्री-पुरुष आंसू बहाते हैं। मेरा इरादा तो दो चार शब्द ही लिखने

का था परन्तु लेखनी प्रेम-प्रवाह में चलती रही और मैंने इच्छा से अधिक अपना हृदय तुम्हारे सामने खोल दिया। अस्तु। यह समझलो कि पहिले की अपेक्षा कहीं अधिक मेरा यही दृढ़ संकल्प है कि अपने शरीर, आत्मा तथा ईश्वर-दत्त ज्ञान को ईसा-मसीह की सेवा में तथा अपने भाइयों की मुक्ति साधन के हेतु अर्पित करूँ। चूंकि यह काम अपने ही नगर में नहीं हो सकता था इसलिये मैं उसे सहर्ष दूसरे स्थान पर कर रहा हूं। सब लोगों को पुण्यमय जीवन बिताने के लिये प्रोत्साहन करना। आज मैं जेनेवा जा रहा हूँ।"

इस प्रकार सावोनारोला का परिव्राजक-जीवन चल रहा था। फ्लोरेंस के अतिरिक्त अन्य स्थानों पर उसे उल्लेखनीय सफलता मिली और इटली के कोने २ में उसका नाम गूँजने लगा। सहसा उसे संतमार्क के मठाधिकारियों की यह आज्ञा मिली कि एक दम फ्लोरेंस चले आओ। ऐसा उन्होंने क्यों किया? प्रतापी लारेन्ज़ो के आग्रह से।

लारेन्ज़ो ने सावोनारोला को फ्लोरेंस क्यों बुलाया इसका रहस्य है। पिको डेला मिरेन्डोला ने अपने ९०० सिद्धान्त प्रकाशित किये थे और यह घोषणा की थी कि वह उनको प्रमाणित करेगा। उसने देश विदेश के विद्वानों को चुनौती दी थी कि आवें और उनका खण्डन करें। पर पोप इन्नोसेन्ट ने यह फ़तवा दे दिया कि ये सिद्धान्त ईसाई-धर्म के विरोधी हैं। पिको ने इसे नहीं माना और ज़ोर के साथ अपना पक्ष-समर्थन किया। मामला

गंभीर होते देख लारेंजो ने पोप तथा अपने परमप्रिय मित्र पिको के बीच समझौता कराने का भार लिया। किन्तु बहुत दिनों तक पोप टस से मस नहीं हुआ और इस कारण पिको को बहुत चिन्ता रही। उसे आध्यात्मिक सान्त्वना एवं परामर्श की आवश्यकता प्रतीत हुई और तब उसे रिगियो के उस तपस्वी भिक्षु का स्मरण हो आया जिसने कि चर्च के पतन के विरुद्ध अपनी ओजभरी आवाज उठाई थी। अतएव उसने लारेन्जो से अनुरोध किया कि सावोनारोला को फ्लोरेंस वापिस बुला लिया जाय और कहा कि इससे फ्लोरेन्स तथा लारेन्जो दोनों की कीर्त्ति बढ़ेगी। लारेंजो ने अपने मित्र का अनुरोध मानकर तदनुसार संतमार्क के अधिकारियों से आग्रह किया।

महाचतुर लारेन्जो की तीव्र बुद्धि इस बात की स्वप्न में भी कल्पना नहीं कर सकी कि जिस सन्यासी को वह आमन्त्रित कर रहा है वह उसका सबसे कट्टर शत्रु तथा उसके घराने के ऐश्वर्य को उन्मूलन करने वाला बनेगा।



(४)

प्रभावोदय

गुरुजनों की आज्ञा शिरोधार्य कर सावोनारोला फ्लोरेंस लौट आया। अब उसकी प्रसिद्ध दूर २ तक फैल चुकी थी। यह जानकर कि लारेन्जों और पिको के विशेष आग्रह से वह वापिस बुलाया गया है फ्लोरेंस की जनता उसे देखने को उत्सुक हो उठी। किन्तु सावोनारोला ने धैर्य से काम लिया। पहिले वह श्रावकों को ही व्याख्यान देता रहा। धीरे २ मठ के अन्य भिक्षु भी सम्मिलित होने लगे। फिर थोड़े से बाहरी लोग भी अनुमति लेकर वहां उपस्थित होने लगे। मठ के बगीचे में सावोनारोला के व्याख्यान होते और श्रोतागण भक्ति और श्रद्धा के साथ उन्हें सुनते। पहिले वह शिक्षक के दृष्टिकोण से व्याख्यान देता था किन्तु ज्यों २ शिष्यों के अतिरिक्त और भी लोग आने लगे वह धीरे २ उन्हें धर्मोपदेश के रूप में परिवर्तित करने लगा। इन भाषणों की चर्चा, प्रशंसा नगर में होती और इसका फल यह हुआ कि श्रोताओं की संख्या बढ़ने लगी। सावोनारोला से प्रार्थना की गई कि आप मठ के उपदेश-मंच पर से भाषण दें जिससे कि सुविधा के साथ अधिक संख्या में लोग उन्हें सुन सकें। सावो-नारोला पहिले यहां असफल हो चुका था इसलिये उसे इस प्रस्ताव पर सोचना पड़ा। अंत में मुसकिराकर उसने इसे स्वी-

[illegible] किया और कहा—"कल मैं गिरजाघर में व्याख्यान [illegible] उपदेश दूंगा" और "मैं आठ वर्ष तक उपदेश देता रहूँगा" यह भविष्यद्वाणी ठीक निकली।

[illegible] १४८९ ईस्वी में सावोनारोला ने संत मार्क के गिरजाघर में सार्वजनिक उपदेश दिया। इस भाषण के साथ फ्लोरेंस में उनके सार्वजनिक जीवन का प्रारम्भ मानना चाहिये। व्याख्यान सुनने के लिये सारा फ्लोरेंस उमड़ पड़ा। भवन में तिल भर स्थान खाली नहीं रहा। बहुत से लोगों को खड़ा रहना पड़ा, कितने ही दीवालों पर बैठ गये और कितने ही लोहे की रेलिंगों को पकड़ कर लटके रहे। शांत गम्भीर भाव से सावोनारोला ने भवन में प्रवेश किया। ईसाई धर्म-पुस्तक के एक वाक्य को उसने अपने भाषण का विषय चुना था। उसकी आवाज से सभाभवन गूंज उठा। उसने घोषणा की कि इटली को अपने पापों का दण्ड मिलेगा, चर्च का पुनरुत्थान होगा और ये दोनों बातें शीघ्र होंगी। उसकी विद्वत्ता, तेजस्विता तथा स्वाभाविक वाग्मिता का लोगों पर अद्भुत प्रभाव पड़ा। व्याख्यान समाप्त हुआ। लोग एक नयी आवाज को सुनकर लौटे। सर्वत्र [illegible] चर्चा होने लगी। विद्वान दार्शनिक भी इस नये [illegible] दोषों की आलोचना करने लगे।

सावोनारोला की वक्तृता फ्लोरेंस [illegible] उसकी शैली में न कृत्रिमता थी, [illegible]

शब्द-प्रवाह में सरलता एवं स्वाभाविकता थी। आत्म-तेज तथा आवेश के कारण उसके उद्गारों से अलौकिक स्फूर्ति एवं ओजस्विता फूटी पड़ती थी। उसके शब्दों से मानो आग निकलती थी और ऐसा जान पड़ता था कि कोई दैवी शक्ति उसके द्वारा बोल रही है। अभ्यास, प्रयास अथवा अनुकरण द्वारा ऐसी असाधारण शैली का विकास नहीं हो सकता। इसके लिये आवश्यक होता है आत्मिक तेज और तप, आदर्श में अटल श्रद्धा, ईश्वर-भक्ति से उत्पन्न आत्म-विश्वास और सांसारिक अधःपतन से दुःखित आत्मा का आन्तरिक प्रकोप।

विद्वानों में अपने विचारों को फैलाने के लिये सावोनारोला ने अपनी रचनाओं को प्रकाशित किया। प्राचीनता के अन्ध-अनुकरण के बारे में वह कहता है:—

"कितनों ने तो अपने मन को इतना संकीर्ण बना लिया है और उसे प्राचीनता की बेड़ियों से इस प्रकार जकड़ लिया है कि वे न केवल प्राचीन विद्वानों के समान ही बोलते हैं वरन् जो उन्होंने नहीं कहा उसे वे भी नहीं कहते। यह कैसी बुद्धि है? यह कैसी नूतन तर्कशक्ति है? कि यदि प्राचीन लोगों ने कोई सत्कार्य नहीं किया तो हम भी कोई सत्कार्य नहीं करेंगे।"

इस प्रकार प्राचीनता की प्रशंसा में जो अंध-अनुकरण एवं अतिशयोक्ति उस समय फैल रही थी उनके विरुद्ध सावोनारोला ने आवाज उठाई। वह धर्म तथा नीति को बुद्धिवाद के क्षेत्र से अलग नहीं करना चाहता था। वह बौद्धिक प्रमाणों पर भी

कार किया और कहा—"कल मैं गिर्जाघर में व्याख्यान और उपदेश दूंगा" और "मैं आठ वर्ष तक उपदेश देता रहूँगा।" यह भविष्यद्वाणी ठीक निकली।

अगस्त १४८९ ईस्वी में सावोनारोला ने संत मार्क के गिर्जाघर में सार्वजनिक उपदेश दिया। इस भाषण के साथ फ्लोरेंस में उसके सार्वजनिक जीवन का प्रारम्भ मानना चाहिये। व्याख्यान सुनने के लिये सारा फ्लोरेंस उमड़ पड़ा। भवन में तिल भर स्थान खाली नहीं रहा। बहुत से लोगों को खड़ा रहना पड़ा, कितने ही दीवालों पर बैठ गये और कितने ही लोहे की रेलिंगों को पकड़ कर लटके रहे। शांत गम्भीर भाव से सावोनारोला ने भवन में प्रवेश किया। ईसाई धर्म-पुस्तक के एक वाक्य को उसने अपने भाषण का विषय चुना था। उसकी आवाज़ से सभा भवन गूंज उठा। उसने घोषणा की कि इटली को अपने पापों का दण्ड मिलेगा, चर्च का पुनरुत्थान होगा और ये दोनों बातें शीघ्र होंगी। उसकी विद्वत्ता, तेजस्विता तथा स्वाभाविक वाग्मिता का लोगों पर अद्भुत प्रभाव पड़ा। व्याख्यान समाप्त हुआ। लोग एक नयी आवाज को सुनकर लौटे। सर्वत्र सावोनारोला की चर्चा होने लगी। विद्वान् दार्शनिक भी इस नये प्रचारक के गुण-दोषों की आलोचना करने लगे।

सावोनारोला की वक्तृता फ्लोरेंस के लिये एक नयी चीज थी। उसकी शैली में न कृत्रिमता थी, न अनुकरण, न शब्दाडम्बर, न बाह्य सुन्दरता और न रूढ़ नियमों की गुलामी। उसके

यथेष्ट जोर देता था। इसके सबूत हमें उसके
तथा दार्शनिक लेखों और व्याख्यानों में [सर्व
दृष्टि से हम यह कह सकते हैं कि सावोनारोल
उन विरले महापुरुषों में से था जिन्होंने कि विच
की शृंखला से मुक्त करने का यत्न किया।

"क्रूश की विजय" नामक पुस्तक की भूमिका
है:—"इस पुस्तक में हम केवल स्वाभाविक विवे
काम लेंगे। हम किसी अन्य प्रमाण का उल्लेख नह
यह मान लेंगे कि सिवाय अपनी विवेक-बुद्धि के हम
किसी मनुष्य पर विश्वास कर ही नहीं सकते चाहे
ही ज्ञानवान् क्यों न हो।"

ईश्वर-वन्दना के संबंध में वह कहता है कि
समय हम परमात्मा को इस प्रकार संबोधित करें मानो
हमारे सामने प्रत्यक्ष विराजमान है। ईश्वर सर्वव्यापी है
हम उसे पृथिवी तथा स्वर्ग में नहीं वरन् अपने हृदय-मं
ही खोजें। शब्द प्रार्थना के लिये अनिवार्य नहीं क्योंकि
बाह्य और जड़ हैं। यदि हम प्रार्थना में शब्दार्थ पर ही ध्यान
यह अध्ययन के समान ही होगा। जब मनुष्य पूर्णतया भ
लीन होजाता है तब शब्द तो एक प्रकार से बाधारूप बन
हैं। इसलिये मानसिक प्रार्थना ही सर्वश्रेष्ठ है। इसी के द्व
हमारी आत्मा परमात्मा से साक्षात् करसकेगी। वे लोग ग़लत
करते हैं जो प्रार्थना के लिये वाक्य विशेषों को निर्धारित

हैं। परमात्मा शब्द-बाहुल्य से नहीं वरन् सच्ची भक्ति से ही प्रसन्न होता है। प्राचीन-काल में मनुष्य के विचारों को ईश्वर की ओर लेजाने के लिये गीत वाद्य आदि की जरूरत नहीं पड़ती थी। जब भक्ति कमजोर होगई, तब, आत्मा के लिये औषधि के समान, विधियों, प्रथाओं तथा वाह्य उपकरणों की उत्पत्ति हुई। आज भक्ति और मानसिक उपासना नहीं रहीं इसीलिये कर्म-काण्ड का सर्वत्र बोल-बाला होरहा है। उपरोक्त बातों की विवेचना करते हुए सावोनारोला संदेश देता है कि वाह्य-पूजा के स्थान पर आन्तरिक उपासना क़ायम की जाय क्योंकि आत्मा को जगाने के सिवाय कर्मकाण्ड का और कोई उपयोग है ही नहीं। वह धार्मिकता, जिसमें कि बुद्धि-विवेक को कोई स्थान नहीं होता, धीरे २ पथभ्रष्ट हो कर्मकाण्ड, कृत्रिमता तथा पाखण्ड की चेरी बनजाती है और इससे मनुष्य के आध्यात्मिक गौरव और स्वातंत्र्य को भारी हानि पहुँचती है। परन्तु वह बुद्धि जिसमें कि धार्मिक एवं नैतिक भावना का बहिष्कार होता है, संशयवाद की जननी बनकर संसार में उपद्रव मचाती है। तपस्वी सावोनारोला के विचारों में हम धर्म, नीति, एवं विवेक-बुद्धि का अपूर्व सामञ्जस्य पाते हैं।

"ईसा का प्रेम" नामक निबन्ध में उसने भक्ति की महिमा दर्शायी है। यह प्रेम मनुष्य को प्रेरित करता है कि वह भगवान् ईसाकी आत्मा से ऐक्य स्थापित करे और उनके समान मनुष्य मात्र के कल्याण के लिये आत्म-बलिदान दे। यह प्रेम मनुष्य

यथेष्ट जोर देता था। इसके सबूत हमें उसके धार्मिक, राजनीतिक तथा दार्शनिक लेखों और व्याख्यानों में [सर्वत्र मिलते हैं। इस दृष्टि से हम यह कह सकते हैं कि सावोनारोला अपने युग के उन विरले महापुरुषों में से था जिन्होंने कि विचार को प्राचीनता की शृंखला से मुक्त करने का यत्न किया।

"क्रूश की विजय" नामक पुस्तक की भूमिका में वह लिखता है:—"इस पुस्तक में हम केवल स्वाभाविक विवेक-बुद्धि से ही काम लेंगे। हम किसी अन्य प्रमाण का उल्लेख नहीं करेंगे और यह मान लेंगे कि सिवाय अपनी विवेक-बुद्धि के हम संसार के किसी मनुष्य पर विश्वास कर ही नहीं सकते चाहे वह कितना ही ज्ञानवान् क्यों न हो।"

ईश्वर-वन्दना के संबंध में वह कहता है कि प्रार्थना के समय हम परमात्मा को इस प्रकार संबोधित करें मानो कि वह हमारे सामने प्रत्यक्ष विराजमान है। ईश्वर सर्वव्यापी है इसलिये हम उसे पृथिवी तथा स्वर्ग में नहीं वरन् अपने हृदय-मन्दिर में ही खोजें। शब्द प्रार्थना के लिये अनिवार्य नहीं क्योंकि वे तो बाह्य और जड़ हैं। यदि हम प्रार्थना में शब्दार्थ पर ही ध्यान दें तो यह अध्ययन के समान ही होगा। जब मनुष्य पूर्णतया भक्ति में लीन होजाता है तब शब्द तो एक प्रकार से बाधारूप बन जाते हैं। इसलिये मानसिक प्रार्थना ही सर्वश्रेष्ठ है। इसी के द्वारा हमारी आत्मा परमात्मा से साक्षात् करसकेगी। वे लोग गलती करते हैं जो प्रार्थना के लिये वाक्य विशेषों को निर्धारित करते

हैं। परमात्मा शब्द-बाहुल्य से नहीं वरन् सच्ची भक्ति से ही प्रसन्न होता है। प्राचीन-काल में मनुष्य के विचारों को ईश्वर की ओर लेजाने के लिये गीत वाद्य आदि की जरूरत नहीं पड़ती थी। जब भक्ति कमजोर होगई, तब, आत्मा के लिये औषधि के समान, विधियों, प्रथाओं तथा बाह्य उपकरणों की उत्पत्ति हुई। आज भक्ति और मानसिक उपासना नहीं रही इसीलिये कर्म-काण्ड का सर्वत्र बोल-बाला होरहा है। उपरोक्त बातों की विवेचना करते हुए सावोनारोला संदेश देता है कि बाह्य-पूजा के स्थान पर आन्तरिक उपासना क़ायम की जाय क्योंकि आत्मा को जगाने के सिवाय कर्मकाण्ड का और कोई उपयोग है ही नहीं। वह धार्मिकता, जिसमें कि बुद्धि-विवेक को कोई स्थान नहीं होता, धीरे २ पथभ्रष्ट हो कर्मकाण्ड, कृत्रिमता तथा पाखण्ड की चेरी बनजाती है और इससे मनुष्य के आध्यात्मिक गौरव और स्वातंत्र्य को भारी हानि पहुँचती है। परन्तु वह बुद्धि जिसमें कि धार्मिक एवं नैतिक भावना का बहिष्कार होता है, संशयवाद की जननी बनकर संसार में उपद्रव मचाती है। तपस्वी सावोनारोला के विचारों में हम धर्म, नीति, एवं विवेक-बुद्धि का अपूर्व सामञ्जस्य पाते हैं।

"ईसा का प्रेम" नामक निबन्ध में उसने भक्ति की महिमा दर्शायी है। यह प्रेम मनुष्य को प्रेरित करता है कि वह भगवान् ईसाकी आत्मा से ऐक्य स्थापित करे और उनके समान मनुष्य मात्र के कल्याण के लिये आत्म-बलिदान दे। यह प्रेम मनुष्य

को ईश्वर की ओर लेजाता है और आत्मा में प्रविष्ट होकर शरीर को अभिभूत कर देता है। इसी कारण भक्तजन संसार में इस प्रकार विचरते हैं मानो परमानन्द के समुद्र में तैर रहे हों।

"वैधव्य-जीवन की पुस्तक" में सावोनारोला ने विधवाओं को उपदेश दिया है। विधवाओं की रक्षा स्वयं भगवान करते हैं। उनके लिये उपयुक्त जीवन तो यही है कि वे संसार को त्यागकर एकान्त में अपने प्रियतम की स्मृति-पूजा करते हुए वियोग के शोक-दिवस बितावें। यदि बच्चों की देख-रेख, शिक्षा अथवा दरिद्रता एवं विषय लालसा के कारण यह सम्भव न हो तो उन्हें पुनर्विवाह कर लेना चाहिये। कामीजनों तथा कलंक और आपत्तियों से घिरे रहने से यह कहीं अच्छा है। सन्यासिनी विधवाओं का जीवन अन्य स्त्रियों के लिये आदर्श है। शांति, संयम, त्याग, मितभाषिता उनके प्रधान गुण हैं।

कला रसिकों का बहुधा यह उलहना रहा है कि साधु वैरागी कला को नीरस बना देते और उसके क्षेत्र को संकीर्ण कर देना चाहते हैं। इससे कला की स्वतंत्र एवं सर्वांगीण उन्नति में रुकावटें पहुँचती हैं जिससे उसका पूर्ण विकास नहीं हो पाता। सावोनारोला पर भी उसके शत्रुओं ने इसी प्रकार के आक्षेप किये हैं। सावोनारोला चाहता था कि कला का आदर्श धर्म के प्रतिकूल न हो। अन्य साधु महात्माओं के समान उसकी भी यह धारणा थी कि "सुन्दर" के लिये 'सत्यं' और 'शिव' की बलि दे देना असह्य है। इससे कला अपने उच्च आदर्श से गिरकर स्वतन्त्रता

का दम भरते हुए भी विलासिता की दासी बन जाती है। परमात्मा में ही सौन्दर्य की चरम-सीमा है इसलिये सौन्दर्य के मोह में पवित्रता व नैतिक संयम का परित्याग निन्दनीय है। लारेन्जों के दरबार में जो कवि थे उनमें से अनेकों में निस्सन्देह काव्य-प्रतिभा थी। किन्तु उनकी कविता से कामुक विचारों को उत्तेजना मिलती थी अतएव सावोनारोला उन्हें "झूठे कवि" कहता था। वह चाहता था कि ऐसे कवि निर्वासित कर दिये जांय और ऐसे साहित्य का दमन किया जाय। वह कहता था कि "यदि ऐसी पुस्तकें नष्ट कर दी जांय और केवल वे ही सुरक्षित रहें जिनसे कि पुण्य को प्रोत्साहन मिलता है तो बड़ी अच्छी बात हो।" सावोनारोला स्वयं एक अच्छा कवि था। संगीत से उसके संतप्त हृदय को शान्ति मिलती थी। संत मार्क कला का केन्द्र था और सावोनारोला के द्वारा उसकी बहुत उन्नति हुई। सावोनारोला कला का विरोधी नहीं, एक प्रेमी था; किन्तु उसका एक अपना उच्च आदर्श था जो कि कला के तत्कालीन आदर्श से अनेक अंशों विपरीत था।

ईसाइयों की धर्म-पुस्तक बाइबिल सावोनारोला के विचारों का आधार थी। उसने समस्त ग्रंथ को कंठस्थ कर लिया था। बाइबिल से ही उसे दुःख में सान्त्वना तथा अन्धकार में ज्योति मिलती थी। वही उसके जीवन की पथ-प्रदर्शक थी। अपने समस्त सिद्धान्तों, कल्पनाओं तथा भविष्यद्वाणियों के प्रमाण उसे बाइबिल में दृष्टिगोचर होते थे किन्तु वह जानता था कि

है। परमात्मा उन्हें दारुण दण्ड देगा—इसका समय शीघ्र आ रहा है।

सावोनारोला धर्म और सदाचार के साथ २ स्वतन्त्रता के विचारों को भी जगाने लगा। ईश्वरीय प्रकोप और दण्ड के भय ने लोगों के हृदय में खलबली मचा दी। सावोनारोला कहता कि दिव्य-शक्ति ने उस पर यह प्रकट किया है कि पापियों पर घोर संकट आने वाले हैं। यह उसका सच्चा और पक्का विश्वास था। जब वह बोलता तो उसकी आकृति अतिमानुषी हो जाती। उसका मुख दिव्य-तेज से प्रकाशित हो उठता, उसकी आवाज में गम्भीरता, तीव्रता व सरलता का अद्भुत मेल हो जाता। लोग चित्र लिखे से सुनते रहते। कभी २ भक्तजनों को उसके दोनों ओर देवदूत खड़े हुए दिखलाई देते, कभी वे देखते कि ज्योति-पुञ्ज से आवृत माता मरियम हाथ उठा कर उसे आशीर्वाद दे रही हैं। फ्लोरेन्स में सावोनारोला ने नवीन भय और नवीन आशाओं को जागृत कर एक नूतन शक्ति का प्रादुर्भाव किया।

नगर निवासियों के उत्साह की सीमा नहीं रही। व्याख्यान-भवन में स्थान पाने के लिये नर-नारी बाल-वृद्ध आधी रात से दरवाजे पर जा बैठते। हवा, ठण्ड, वर्षा आदि की परवा न करके वे रात भर खुले में बैठे रहते। हजारों आदमी व्याख्यान सुनने को आते, परन्तु शोरगुल बिलकुल भी नहीं होता। पहिले बालक गण मधुर-स्वर से ईश्वर-वन्दना करते, फिर सावोनारोला

स्वार्थ-भावना से धर्म-ग्रंथ का अध्ययन नहीं करना चाहिये। इसीलिये उसका आग्रह था कि सांसारिकता के ऊपर उठकर, पवित्र भावना से बाइबिल का अनुशीलन और मनन करना चाहिये। बाइबिल बुद्धिगम्य नहीं है, उसे समझने के लिये हमें अपनी आत्मा और हृदय के कपाट भी खोलना चाहियें।

संतमार्क के गिर्जाघर में सावोनारोला के व्याख्यान होते रहे उसका प्रभाव दिन २ बढ़ता गया। जनता इतनी अधिक संख्या में इकट्ठी होने लगी कि स्थान की कमी के कारण उस भवन को छोड़ देना पड़ा। १४९१ ईस्वी में सावोनारोला फ्लोरेंस के प्रधान गिर्जाघर डुओमो में भाषण देने लगा। यही भवन अंत तक उसके प्रभावका केन्द्र रहा।

अधिकाधिक आवेश एवं निर्भयता के साथ सावोनारोला उन्हीं तीन भविष्यद्वाणियों को दुहराता और विस्तार पूर्वक समझता। फ्लोरेंस के पापों के विरुद्ध तो उसके शब्द प्रचण्ड अग्नि-वर्षा करने लगे जो फ्लोरेंस किसी समय शक्ति संपन्न था वहां आज व्यभिचार, मारकाट और छल कपट मचा हुआ है। जो फ्लोरेंस किसी समय स्वतंत्र था, आज पराधीन है। नगर में सर्वत्र अधोगति फैली हुई है। लोगों को अपने स्वत्वाधिकारों का ध्यान तक नहीं। वे सांसारिकता और कामुकता में फंसे हुए हैं, वे ईसाई-धर्म विरोधिनी संस्कृति के गुलाम बने हुए हैं—वे धर्म द्रोही हैं। वे निरंकुश शासन के विरुद्ध चूँ तक नहीं करते—वे देशद्रोही हैं। उन्होंने देश और धर्म के प्रति विश्वासघात किया

है। परमात्मा उन्हें दारुण दण्ड देगा—इसका समय शीघ्र आ रहा है।

सावोनारोला धर्म और सदाचार के साथ २ स्वतन्त्रता के विचारों को भी जगाने लगा। ईश्वरीय प्रकोप और दण्ड के भय ने लोगों के हृदय में खलबली मचा दी। सावोनारोला कहता कि दिव्य-शक्ति ने उस पर यह प्रकट किया है कि पापियों पर घोर संकट आने वाले हैं। यह उसका सच्चा और पक्का विश्वास था। जब वह बोलता तो उसकी आकृति अतिमानुषी हो जाती। उसका मुख दिव्य-तेज से प्रकाशित हो उठता, उसकी आवाज में गम्भीरता, तीव्रता व सरलता का अद्भुत मेल हो जाता। लोग चित्र लिखे से सुनते रहते। कभी २ भक्तजनों को उसके दोनों ओर देवदूत खड़े हुए दिखलाई देते, कभी वे देखते कि ज्योति-पुञ्ज से आवृत माता मरियम हाथ उठा कर उसे आशीर्वाद दे रही हैं। फ्लोरेन्स में सावोनारोला ने नवीन भय और नवीन आशाओं को जागृत कर एक नूतन शक्ति का प्रादुर्भाव किया।

नगर निवासियों के उत्साह की सीमा नहीं रही। व्याख्यान-भवन में स्थान पाने के लिये नर-नारी बाल-वृद्ध आधी रात से दरवाजे पर जा बैठते। हवा, ठण्ड, वर्षा आदि की परवा न करके वे रात भर खुले में बैठे रहते। हजारों आदमी व्याख्यान सुनने को आते, परन्तु शोरगुल बिलकुल भी नहीं होता। पहिले बालक गण मधुर-स्वर से ईश्वर-वन्दना करते, फिर सावोनारोला

उपदेश मंच पर आता। बर्लामशी कहता है "यह विशाल जन-समूह उसके मुख पर आंखें लगा कर ऐसे ध्यान से उसके वचनों को सुनता कि जब उसका उपदेश समाप्त हो जाता तब लोगों को ऐसा ही मालूम होता कि वह अभी तो प्रारम्भ ही हुआ है।"

सावोनारोला के लेखों और व्याख्यानों ने सब के हृदय में क्रान्ति मचा दी। जिन लोगों के हृदय में फ्लोरेन्स की विगत स्वतन्त्रता की स्मृति बनी हुई थी किन्तु जो नैराश्य के कारण अज्ञातवास में पड़े थे उन्होंने सावोनारोला को आशातीत स्फूर्ति वाले नेता के रूप में देखा। जो लोग लारेन्ज़ो के दरबार में पलते थे, जिनका कि जीवन आमोद-प्रमोद, विषयाशक्ति तथा पांडित्य की सेवा में ही बीतता था वे सावोनारोला को भय और संशय की दृष्टि से देखने लगे। उन्हें सावोनारोला की विद्वत्ता के प्रति श्रद्धा अवश्य होती थी परन्तु वे घबड़ाते थे उसके उद्दीपक एवं क्रान्तिकारी विचारों से जो कि उनका अस्तित्व मिटा देने का मार्ग तैयार कर रहे थे। सरल जनसाधारण, जिनके हृदय में चारों ओर फैले हुए अत्याचार और व्यभिचारसे स्वाभाविक घृणा थी परन्तु जो निर्बल व दलित होने के कारण मूक व निश्चेष्ट बैठे थे; उन्होंने सावोनारोला को अपने उद्धारक के रूप में देखा। कितने ही लोग तो अपनी दुःखित आत्मा की सरल श्रद्धा के साथ बहुत दिनों से एक ऐसे महापुरुष की बाट जोह रहे थे जो कि साधु जनों की रक्षा तथा दुरात्माओं के विनाश के लिये परमात्मा द्वारा भेजा गया हो, जो यह घोषित करे कि पाप का दण्ड और अन्त

सन्निकट है। प्रोस्पेरो पिटी नामक एक वृद्ध साधु बहुत दिनों से यह कह रहा था कि "एक सिद्ध-महात्मा का अवतार होगा जो कि फ्लोरेंस में बड़े २ कार्य करेगा और फिर अनेक कष्टों को सहन करता हुआ परलोकगामी होगा।" जब इस वृद्ध धर्मात्मा ने सावोनारोला की यह घोषणा सुनी कि "परमात्मा के प्रकोप की तलवार का प्रचण्ड आघात होने वाला है" तब वह मस्तक झुकाये कुछ देर तक सोचता रहा और फिर पास ही बैठे हुए अपने भतीजे से बोला कि "यह वही 'सिद्ध-महात्मा है जिसके आगमन की चर्चा मैं १० वर्षों से कर रहा हूं।"

फ्लोरेंस के प्रधान गिर्जाघर अर्थात् डुआमो में सावोनारोला का जो पहिला भाषण हुआ उसके कुछ अवतरण हम यहां देंगे। पुरोहितों की निन्दा करते हुए उसने कहा:—

"वे तो सुवर्ण की लालसा से ग्रसित हैं। वे आत्मा के आंतरिक तत्व का तिरस्कार करते और बाह्य कर्मकाण्ड में लगे हुए हैं और इसका उन्होंने एक रोजगार खड़ा कर लिया है। माता-पिता अपने पुत्रों को पुरोहिताई करने की सलाह देते हैं जिसमें कि उन्हें चर्च की भूमि और आमदनी मिल सके। इसलिये हम यह कहावत सुनते हैं कि धन्य वे हैं जो कि खूब आमदनी वाले गिर्जाघर के पुरोहित हैं। किन्तु मैं तुमसे कहता हूँ कि वह समय आयगा जब कि लोग कहेंगे कि ऐसे लोगों को धिक्कार है। तुम तलवार की धार का मजा चखोगे। जैसा मैं कहता हूँ, करो। चाहे तुम्हारे लड़के दूसरे लोगों के समान अन्यान्य धन्धों में

लग जावें परन्तु धन-लाभ की इच्छा से उन्हें कदापि धार्मिक-वृत्ति मत लेने दो। आजकल तो ईश्वर का कोई भी प्रसाद, कोई भी अनुग्रह, ऐसा नहीं रहा जो कि बेचा व खरीदा न जाता हो। एक तरफ तो यह हाल है, दूसरी तरफ दीन ग़रीबों पर अत्याचार किये जारहे हैं। उनसे इतना अधिक रुपया मांगा जाता है जिसे देना उनकी शक्ति के बाहर है। फिर अमीर लोग उनसे कहते हैं। कि जो कुछ तुम्हारे पास बचा हो उसे हमें देदो। कुछ बेचारे ऐसे हैं जिनकी आमदनी है ५० मुद्रायें परन्तु जिन्हें कर देना पड़ता है १००। परन्तु धनवानों को बहुत ही कम देना पड़ता है क्योंकि कर उन्हीं की इच्छा के अनुसार लगाया जाता है। जब विधवायें रोती हुई उनके सामने जाती हैं तब उनसे कहा जाता है कि जाओ, सो रहो। जब लोग उज्र करते हैं तब उनसे कहा जाता है कि दो, और दो।"

अमीरों को चेतावनी देते हुए उसने कहा:—

"हे अमीरो, याद रखो, तुम पर व्याधियें और विपत्तियें आयेंगी। इस नगर को लोग फ्लोरेन्स नहीं किन्तु डाकुओं, व्यभिचारियों तथा हत्यारों का अड्डा कहेंगे। तब तुम सब लोग दीन, कङ्गाल और हतभाग्य हो जाओगे। और हे पुरोहितो, तुम्हारा नाम सुनकर लोगों को भय और आतंक होने लगेगा। हे परमात्मन्, मैं आपके नाम से ये बातें नहीं कहना चाहता था परन्तु हे प्रभु आपने मुझे अभिभूत कर दिया, जीत लिया। आपका शब्द मेरे अन्तस्थल में अग्नि समान प्रज्वलित होता और मेरे

शरीर की मज्जा तक को भस्म किये देता है। इसीलिये लोग मेरा उपहास और तिरस्कार करते हैं। किन्तु मैं दिन रात आन्तरिक वेदना के कारण परमात्मा को पुकारता हूँ और तुम लोगों से मैं कहता हूँ कि समझ लो, अश्रुतपूर्व घटनायें शीघ्र ही घटने वाली हैं।"

बहुत से लोगों को ये बातें बुरी लगती थीं। कुछ लोग उसकी भविष्यद्वाणी और चेतावनी को धोखा समझते थे। वे कहते कि यह सन्यासी बड़ा धूर्त है, वह भोले भाले लोगों की सरल श्रद्धा से लाभ उठाकर अपनी प्रसिद्धि बढ़ाना चाहता है। सावोनारोला के मित्रों ने समझाया कि संभव है कि शत्रुगण तुम्हें देश से निर्वासित करा दें। उन्होंने सलाह दी कि दिव्य-दृष्टि संबन्धी बातों को कहना छोड़ दो और अन्य उपदेशकों के समान केवल धर्म व सदाचार की चर्चा ही किया करो। सावोनारोला जानता था कि उसके वचन-बाणों का बहुतों के स्वार्थ, हित अथवा कीर्ति पर भयंकर प्रहार होता है। और वे सब उसके विरोधी बनते जा रहे हैं। अतएव उसने मित्रों के आग्रह को मानने का प्रयत्न किया किन्तु उसे सफलता न मिल सकी। इस प्रश्न को लेकर उसके अंतः करण में जो द्वन्द्व-युद्ध हुआ उसके सम्बन्ध में वह स्वयं कहता है:—"जब २ मैंने नये मार्ग का अनुसरण करने का प्रयत्न किया, तब २ मुझे अपने आप से घृणा होने लगी। मुझे याद है कि जब मैं डुओमो में उपदेश देने को था। और दिव्य-दर्शन के सम्बन्ध में अपने भाषण की सामग्री तैयार कर चुका था, उस समय मैंने निश्चय किया कि उनका कोई उल्लेख

नहीं करूंगा और भविष्य में भी उनके सम्बन्ध में कुछ नहीं कहूँगा। परमात्मा साक्षी है कि किस प्रकार मैं शनिवार को दिन भर और रात भर प्रतीक्षा और प्रार्थना में तन्मय रहा किन्तु इसको छोड़ कर दूसरे सभी मार्ग मुझे बन्द मिले, इस तत्व को छोड़कर और कोई तत्व मुझे नहीं सूझ पड़ा। प्रभातोदय के समय जब कि मैं रात्रि के जागरण से थकित एवं निराश हो गया था, प्रार्थना करते हुए मुझे एक आकाशवाणी सुनाई दी कि 'हे मूर्ख' क्या तू देखता नहीं कि ईश्वर की यही इच्छा है कि तू इसी पथ का अनुगमन करता रहे। अतएव उस दिन मैंने एक प्रचण्ड भाषण दिया।"

सावोनारोला की वाणी क्रान्ति की जननी थी। यह स्वाभाविक था कि कुछ लोग उसे अपना शत्रु और विरोधी समझते और कुछ लोग मित्र और उद्धारक। क्रान्ति का दूसरा नाम है महान परिवर्तन। इस परिवर्जन से किसी की क्षति होती है और किसी के सम्मुख लाभ व आशा के द्वार खुल जाते हैं। जिनके स्वार्थ के लिये परिवर्तन हानिकर होता है, वे क्रान्ति की लहर को रोकने की भरसक चेष्टा करते हैं। जिनके भाव युगान्तर के संदेश से आन्दोलित हो जाते हैं वे दमन की परवाह न कर, नित नव उत्साह के साथ उसे आगे बढ़ाते हैं। सांसारिक बुद्धिमत्ता के विचार से सावोनारोला ने अपने को भेदभाव व उथल पुथल का जन्मदाता बचाने से रोकना चाहा किन्तु किसी लोकोत्तर-शक्ति ने उसे विवश कर दिया। सन्यासी के लिये रुकना व

पीछे लौटना असंभव था—यह उसके हाथ की बात ही नहीं थी। इसी प्रकार दोनों दलों का संघर्षण भी किसी न किसी समय अनिवार्य था।

इस समय के अपने कार्य अथवा अपने प्रभाव के सम्बन्ध में सावोनारोला अपने एक मित्र को लिखता है :—

"यद्यपि नगर के प्रधान २ पुरुष हमारे विरुद्ध हैं और बहुतों को यह भय है कि हमारी गति भी साधु बरनार्डिनों की सी होगी, फिर भी हमारा काम खूब अच्छी तरह से चल रहा है क्योंकि परमात्मा हमारी अद्भुत सहायता करते हैं। ईश्वर में मेरा विश्वास है। वे मुझे प्रतिदिन उत्तरोत्तर साहस व धैर्य प्रदान करते हैं और मैं बाइबिल को अपना पथ-प्रदर्शक बनाकर चर्च के पुनरुद्धार का मंत्र घोषित कर रहा हूँ।"

चर्च के पुनरुद्धार का मन्त्र एक सर्वतोमुखी क्रान्ति का मन्त्र था। फ्लोरेंस का नैतिक सुधार इसका एक साधन था और सावोनारोला की दृष्टि में बिना उसकी राजनीतिक स्वतन्त्रता के यह असंभव था। तात्पर्य यह कि फ्लोरेंस की मुक्ति को वह धार्मिक पुनरुत्थान का प्रथम सोपान मानता था।

---

(५)

सावोनारोला और लारेन्ज़ो

मेडिसियों का मत था कि "धर्मशीलता राज्यशासन नहीं कर सकती"। सावोनारोला की धारणा थी कि केवल धर्मशीलता से ही सुशासन हो सकता है, अन्यथा नहीं। उसका विश्वास था कि धर्म ही राष्ट्र को महान् बनाता है। सदाचार एवं परोपकार को वह धर्मशीलता का अभिन्न अंग मानता था। अतएव नगर का नैतिक सुधार उसके कार्यक्रम का एक प्रधान स्तंभ था। निरंकुश एकाधिपत्य को वह वैयक्तिक सदाचार का सब से भीषण शत्रु समझता था। उसने देखा कि लोगों की विषय-वासना को उत्तेजित कर लारेन्ज़ो ने उनके नैतिक अधः पतन पर ही अपने एकतंत्र की स्थापना की है। इसलिये वह मेडिसी-सत्ता को अपने ध्येय की प्राप्ति में सब से बड़ी बाधा समझता था। वह चाहता था कि फ्लोरेंस में धर्मराज्य की स्थापना हो, ईसामसीह वहां के शासक बनें जिससे कि प्रत्येक नागरिक अपने धार्मिक तथा नैतिक कर्त्तव्यों को समझे और पूरा करे। अतएव मेडिसियों का शासन उसे असह्य था और उसका उन्मूलन उसके ध्येय प्राप्ति के लिये अनिवार्य था।

लारेन्ज़ो यह नहीं जानता था कि सावोनारोला उसका कट्टर विरोधी बनेगा। वह सोचता कि सन्यासी को राजनीति से क्या

मतलब, वह इसकी बातों को क्या समझे और क्यों उनमें हस्ताक्षेप करे ! जब सावोनारोला के व्याख्यानों से पहिले पहिल राजनीतिक क्रान्ति की ध्वनि निकली, तब लारेन्जो ने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया और सोचा कि क्षणिक आवेश के प्रवाह में सन्यासी ने दुःसाहस व अनधिकार चेष्टा की है, संभवतः वह कुछ दिनों में आप ही चुप हो जावेगा। वह चतुर और दूरदर्शी था, जनता की मनोवृत्ति को पहिचानता था। उसने सोचा कि एक धर्मोपदेशक पर हाथ उठाने से उसकी बदनामी होगी। उसे याद था कि साधु बनरार्डिनो को निर्वासित कर देने से उसकी लोकप्रियता को धक्का पहुँचा था। वह जानता था कि यदि बलपूर्वक सावोनारोला का दमन किया जायगा तो इससे सावोनारोला की कीर्ति बढ़ेगी और उसके विचारों की चर्चा फैलेगी।

लारेन्जो महान् भी था। गुणग्राहकता उसकी एक विशेषता थी। उसे सावोनारोला के प्रतिभाशाली व्यक्तित्व, पवित्र जीवन तथा गम्भीर पांडित्य के प्रति आदर भी होता था। वह उसके ओजस्वी व्याख्यानों में दिलचस्पी लेता और उसकी मित्रता के लिये भी उत्कंठित था। किन्तु उसे यह कदापि इष्ट नहीं था कि सन्यासी लोगों को उसके विरुद्ध उभाड़े। लारेन्जो को विश्वास था कि अवसर आने पर उसे दबाने में कोई कठिनाई नहीं होगी। अतएव सावोनारोला की महानता का आदर करता हुआ वह उसकी बातों को अवज्ञा तथा उपहास की दृष्टि से देखता था और यह समझता था कि उसके सम्बन्ध में सिरपच्ची करना शान के

विरुद्ध है। किन्तु सावोनारोला की निर्भीकता ने लारेन्जो की इस तिरस्कारपूर्ण उदासीनता को बहुत दिनों तक नहीं रहने दिया।

सावोनारोला के बढ़ते हुए प्रभाव का अनुमान हम इसी से लगा सकते हैं कि ६ अप्रैल १४९१ ईस्वी को फ्लोरेंस के मंत्री-मण्डल सिन्योरी ने उसे व्याख्यान देने के लिये अपने भवन में निमन्त्रित किया। उनके सामने निर्भयता के साथ अपने शासन-सम्बन्धी विचारों को प्रगट करते हुए सावोनारोला ने कहा:—

"मैं आप से यह अवश्य कह दूँ कि नगर की सारी भलाई और बुराई उसके अधिकारी (प्रधान) पर ही निर्भर है। अतएव छोटे २ पापों व दोषों के लिये भी उसका उत्तरदायित्व बहुत होता है क्योंकि यदि वह सत्पथ पर चले तो लोगों का कल्याण हो जाय। × × × × × निरंकुश शासक का सुधार असंभव है क्योंकि वे घमण्डी होते हैं, खुशामद पसंद करते हैं और अन्याय से प्राप्त लाभों को वापिस करना नहीं चाहते। वे सारा काम काज बुरे मन्त्रियों के हाथ में छोड़ देते हैं। वे चापलूसों की ही सुनते हैं। उनके पास ग़रीबों की सुनवाई नहीं होती। वे धनिकों की बुराई नहीं करते। वे तथा उनके मन्त्री यही चाहते हैं कि ग़रीब और किसान लोग बिना मजदूरी लिये उनके लिये मेहनत करें। वे वोटरों को बिगाड़ देते हैं और लोगों का बोझ बढ़ाने के लिये ठेकेदारों को टैक्स वसूल करने का अधिकार दे देते हैं। अतएव आपको उचित है कि आप न्याय करें, सब को ईमानदारी से काम करने के लिये बाध्य करें और वैमनस्य को दूर करें।"

यह समझने में किसी को कठिनाई नहीं हुई कि लारेन्ज़ो को लक्ष्य करके ही उपरोक्त शब्द कहे गये थे। उसे ये अवश्य ही बुरे लगे होंगे तथापि वह चुप रहा। किन्तु इससे सावोनारोला का साहस और प्रभाव बढ़ता ही गया। जुलाई १४९१ ईस्वी में वह संत मार्क का मठाध्यक्ष चुना गया। इस पद से उसकी क्षमता और प्रतिष्ठा बढ़ी। अब वह अधिक स्वतंत्र हो गया क्योंकि मठाधीश होने के कारण उस पर कोई दबाव नहीं रहा। अभी तक वह केवल एक शिक्षक और उपदेशक ही था। किन्तु अब उसे एक महान् संस्था का प्रधान-पद मिला और इस कारण अपने धार्मिक आदर्शों को कार्यरूप में परिणत करने केलिये उसे अवसर, क्षेत्र और साधन भी प्राप्त हुए।

एक प्रथा चली आती थी कि संत मार्क के नव-निर्वाचित अध्यक्ष को लारेन्ज़ो के सन्मुख उपस्थित हो उसके प्रति सम्मान प्रदर्शन करना तथा मठ-संरक्षण के लिये धन्यवाद देकर यह निवेदन करना पड़ता कि भविष्य में भी मठ पर पूर्ववत् कृपादृष्टि बनाये रखिये। इसका अर्थ यही था कि मठाध्यक्ष फ्लोरेंस के शासक की आधीनता स्वीकार कर रहा है। पहिले से ऐसा होता चला आता था किन्तु सावोनारोला ने ऐसा करने से साफ़ इन्कार कर दिया। धार्मिक संस्था का प्रधान सिवाय परमेश्वर के अन्य किसी की वश्यता क्यों स्वीकार करे? संत मार्क के शुभचिन्तकों ने उसे समझाया कि यदि लारेन्ज़ो नाराज हो गया तो मठ को बहुत हानि होने का डर है। कासिमो तथा लारेन्ज़ो ने मठ पर

सावोनारोला के इस व्यवहार में शिष्टता व अतिथि-सत्कार के भावों की कमी खटकती है। जब हम सोचते हैं कि लारेन्जो मैत्री-भाव से ही उससे मिलने आया था तब लारेन्जो से सहानुभूति की भावना को रोकना असंभव हो जाता है किन्तु सावोनारोला के बर्त्ताव को ठीक २ समझने के लिये हमें यह भी याद रखना चाहिये कि उसके लारेन्जो के प्रति क्या विचार थे। वह उसके चरित्र को अति निन्दनीय मानता था, उसे जन साधारण के नैतिक अधः पतन का कर्त्ता समझता था और उसकी यह धारणा थी कि फ्लोरेंस की स्वतंत्रता का अपहरण करने वाला यही लारेन्जो लोगों के धार्मिक तथा राजनीतिक उद्धार में सब ... है। सावोनारोला में ऊपरी तथा दिखाऊ शिष्टा-

अनेक उपकार किये थे। परन्तु सावोनारोला ने इन सब बातों का कोई ख्याल नहीं किया और कहा—"मैं समझता हूँ कि परमात्मा की कृपा से ही मैं इस पद के लिये चुना गया हूँ। अतएव मैं उन्हीं का आभारी हूँ और केवल उन्हीं की आधीनता स्वीकार करूँगा।"

लारेन्जो ने जब यह बात सुनी तो उसे कुछ क्रोध और दुःख हुआ। उसने कहा—"देखो, एक विदेशी हमारे ही घर में आया है परन्तु वह मुझसे भेंट तक करने के लिये आना उचित नहीं समझता।" इतने पर भी लारेन्जो की यह इच्छा नहीं हुई कि वह मठाधिपति से झगड़ा मोल ले। इस सन्यासी महापुरुष के प्रति, जो कि उसके सामने नतमस्तक होना अपने आत्म-गौरव के प्रतिकूल मानता था, लारेन्जो आकर्षित हुआ। मित्रभाव स्थापित कर उसने सावोनारोला को अपने वश में करने की ठानी वह कभी २ संत मार्क जाता, वहाँ प्रार्थना-उत्सव में सम्मिलित होता तथा बगीचे में घूमता। किन्तु सावोनारोला अपने कर्त्तव्यों में ही व्यस्त रहता और लारेन्जो से मिलने की उत्कण्ठा नहीं दिखलाता। एक बार भिक्षुगण उसके पास दौड़कर गये और बोले कि लारेन्जो उद्यान में टहल रहा है,आपको उससे भेंट करने के लिये जाना चाहिये। सावोनारोला अध्ययन में तल्लीन था। उसने पूछा—क्या वह मुझे पूछ रहे हैं? उत्तर मिला नहीं। लारेन्जो सावोनारोला को बुलाता नहीं, सावोनारोला अपने आप—बिना बुलाये—उससे मिलेगा नहीं। यह मानना पड़ेगा कि

सावोनारोला के इस व्यवहार में शिष्टता व अतिथि-सत्कार के भावों की कमी खटकती है। जब हम सोचते हैं कि लारेन्जो मैत्री-भाव से ही उससे मिलने आया था तब लारेन्जो से सहानुभूति की भावना को रोकना असंभव हो जाता है किन्तु सावोनारोला के बर्ताव को ठीक २ समझने के लिये हमें यह भी याद रखना चाहिये कि उसके लारेन्जो के प्रति क्या विचार थे। वह उसके चरित्र को अति निन्दनीय मानता था, उसे जन साधारण के नैतिक अधः पतन का कर्ता समझता था और उसकी यह धारणा थी कि फ्लोरेंस की स्वतंत्रता का अपहरण करने वाला यही लारेन्जो लोगों के धार्मिक तथा राजनीतिक उद्धार में सब से बड़ी बाधा है। सावोनारोला में ऊपरी तथा दिखाऊ शिष्टाचार था ही नहीं कि इन सब विचारों की प्रचण्डता को हृदय में रखते हुए बिना बुलाये उससे मिलने को जाता—उसका आध्यात्मिक प्रकोप उसे ऐसा करने से रोकता था।

इतने पर भी लारेन्जो क्रुद्ध और हताश नहीं हुआ। वह मठ के लिये बहुमूल्य उपहार भेजने तथा वहां की भिक्षा-पेटी मे सुवर्ण-मुद्रायें डालने लगा। परन्तु सावोनारोला अपने निश्चय पर से तिल भर भी नहीं टला। अपने एक व्याख्यान में उसने कहा—"ईमानदार कुत्ता अपने मालिक के बचाव के लिये भोंकना बन्द नहीं करता चाहे उसके सामने कोई मांस का टुकड़ा क्यो न फेंके।" एक दिन मठ को दान-पेटी खोलने पर सावनारोला को उसमें सुवर्ण-मुद्रायें—एक अच्छी-रक़म मिली। उससे पता लग

गया कि दाता लारेन्जो ही है। उसने इस रक़म को ग़रीबों में बांटने के लिये भिजवा दिया और कहा" हमारे लिये चांदी व तांबे के सिक्के ही बहुत हैं, हमें इतनी रक़म की ज़रूरत नहीं।"

इस प्रकार सावोनारोला से व्यक्तिगत परिचय प्राप्त करने के प्रयत्न में लारेन्जो असफल हुआ। इन घटनाओं से लारेन्जो की जिस उदारता, मैत्री-भाव तथा सहिष्णुता का परिचय मिलता है वह प्रशंसनीय है। इसका क्या कारण था? कदाचित् सावोनारोला के व्यक्तित्व ने उसके हृदय पर गहरी छाप जमा दी थी और स्वयं महान् होने के कारण वह सावोनारोला की महानता को अपने मित्रों व खुशामदी सलाहकारों की अपेक्षा कहीं अधिक अच्छी तरह समझ गया था। कदाचित् उसे यह विश्वास नहीं हो सका कि सावोनारोला वास्तव में उसे कोई विशेष क्षति पहुँचा सकेगा। चाहे नीति से, चाहे गुण ग्राहकता के कारण, लारेन्जो ने सावोनारोला को बलपूर्वक दबाने की चेष्टा नहीं की।

व्यक्तिगत संबंध स्थापित करने के प्रयत्न में विफल होकर लारेन्जो ने अन्य लोगों द्वारा सावोनारोला पर प्रभाव डालने की कोशिश की। फ्लोरेन्स के पाँच प्रमुख नागरिक सावोनारोला के पास आये। उन्होंने यह जाहिर किया कि वे खुद ही आये हैं, किसी ने उन्हें भेजा नहीं। उन्होंने सावोनारोला को समझाया कि आप को जनता में इस प्रकार उत्तेजना फैलाना तथा मनुष्यों के आचार विचार की इतनी तीव्र निन्दा करना श्रेयस्कर नहीं होगा। यदि लारेन्जो को सन्तोष देने के लिये आपने अपने व्याख्यानों में

आवश्यक परिवर्तन नहीं किये तो सम्भव है कि मठ को भारी हानि पहुँचे और आप भी राज्य से निकाल दिये जायँ। परामर्श के साथ २ नागरिकों ने धमकी व चेतावनी भी दे दी। सावोनारोला मर्मान्तभेदिनी दृष्टि से उनकी ओर ताकता हुआ इन बातों को सुनता रहा और उनका मतलब समझ गया। उनका वक्तव्य समाप्त भी न हो पाया था कि उन्हें बीच ही में रोककर सावोनारोला ने कहा :—"मैं जानता हूँ कि आप लोग अपनी इच्छा से यहां नहीं आये हैं। आप को लारेन्जो ने भेजा है। जाओ, उससे कह दो कि अपने पापों का प्रायश्चित्त करे क्योंकि ईश्वर छोटे-बड़ों में कोई भेद-भाव नहीं रखता और संसार के शासक भी उसके दण्ड से नहीं बच पाते"। देश-निकाले की धमकी के उत्तर में उसने कहा :—"यद्यपि मैं एक बाहरी आदमी हूँ और लारेन्जो फ्लोरेंस का सर्वप्रधान नागरिक है तथापि उसे ही फ्लोरेंस से जाना होगा और मैं यहाँ ही बना रहूँगा"। सब के सामने उसने यह भविष्यद्वाणी की कि लारेन्जो तथा पोप इन्नौसेन्ट दोनों की मृत्यु सन्निकट है। पाँचों नागरिक अपना मुँह लेकर लौट गये किन्तु सावोनारोला के अलौकिक तेज की मुद्रा उनके हृदय पर अंकित हो गई।

बार २ विफल होने पर भी लारेन्जो निरुपाय नहीं हुआ। अब उसने प्रतिद्वन्द्वी खड़ा कर सावोनारोला की लोक प्रियता को नष्ट करना चाहा। सन्यासी मरियानो सावोनारोला के पहिले फ्लोरेन्स का सर्वप्रिय उपदेशक माना जाता था। वह

लारेन्जों का सभासद था और अपने धार्मिक भाषणों में उसकी प्रशंसा किया करता था। उसमें विद्वत्ता थी, शब्द-चातुर्य था, वह वक्ता भी अच्छा था किन्तु उसमें चरित्र, आदर्श अथवा आध्यात्मिक असन्तोष की वह प्रेरणा एवं स्फूर्ति नहीं थी जो कि सावोनारोला की महानता की प्रधान आधार-शिला थी, लारेन्जों के प्रोत्साहन से वह सावोनारोला के विरुद्ध विशेष कर उसकी भविष्यद्वाणी तथा दिव्यदृष्टि के विरुद्ध, भाषण देने को तैयार हुआ। संत गालो के गिर्जाघर में उसका उपदेश हुआ। नगर में बड़ी उत्तेजना फैली। बहुत से लोग उसका भाषण सुनने को इकट्ठे हुए। पिको डेला मिरेन्डोला, स्वयं लारेन्जों तथा कितने ही प्रमुख नागरिक भी उपस्थित थे। मरियानो आवेश में आकर अपने मस्तिष्क को प्रकृतिस्थ नहीं रख सका। वह सावोनारोला को दुर्वचन कहने तथा उस पर नीच व झूठे आक्षेप करने लगा। उसने कहा कि यह पाखण्डी है, दूसरों की निन्दा करता फिरता है और अराजकता को फैलाता है। यह सब मरियानो ने ऐसी अशिष्ट भाषा में कहा कि लोग उससे घृणा करने लगे। उसके भाषण का ऐसा विपरीत फल निकला कि जीवन भर के परिश्रम से उपार्जित यश उसने एक ही दिन में खो दिया। पराजित और लज्जित होकर मरियानो ने शपथ खाकर प्रण किया कि मैं सावोनारोला से बदला लूंगा। सावोनारोला के मार्ग में रुकावटें डालने तथा उसके शत्रुओं की संख्या बढ़ाने में मरियानो ने अक्लांत परिश्रम किया। इसकी चर्चा आगे आवेगी।

मरियानो की पराजय से लारेन्जो के हृदय को भारी धक्का पहुँचा। वह थकित और खिन्न हो गया। उसको शारीरिक व्याधियां भी धीरे २ जोर पकड़ रहीं थीं। उसने सावोनारोला को मिलाने अथवा रोकने के लिये जितने प्रयत्न किये उनका फल यह हुआ कि सावोनारोला का यश और साहस बढ़ता ही गया। प्रत्येक पराजय के साथ २ लारेन्जो के हृदय में सावोनारोला के प्रति श्रद्धा भी उत्तरोत्तर अधिक होती जाती थी, यद्यपि वह इसे प्रगट नहीं कर सकता था। अतएव अब उसने सावोनारोला के उपदेशों पर ध्यान देना तथा हस्तक्षेप करना छोड़ दिया। अन्त तक लारेन्जो ने बलप्रयोग की नीति का आश्रय नहीं लिया यह उसकी महानता तथा सहिष्णुता का प्रमाण है।

जब सावोनारोला ने कहा था कि एक वर्ष के भीतर ही लारेन्जो की मृत्यु हो जावेगी उस समय लारेन्जो स्वस्थ और निरोग था। उसकी अवस्था भी अधिक नहीं हुई थी। अतः लोगों को सावोनारोला की भविष्यद्वाणी पर आश्चर्य हुआ। किन्तु वह यथार्थ सिद्ध होने को थी। भीतर ही भीतर रोग लारेन्जो के शरीर को जर्जरित कर रहा था। यह बात लोगों को नहीं मालूम थी। किन्तु प्रतापी लारेन्जो का अन्त समीप था।

---

(६)

लारेन्ज़ो की मृत्यु-शय्या पर

"आज खूब खाओ और मौज उड़ाओ क्योंकि कल हमें मरना ही होगा" यह लारेन्ज़ो के बनाये हुए गीत का एक पद था। किन्तु जब वह 'कल' आता है तब 'आज' का खाना, पीना और मौज उड़ाना मनुष्य को शान्ति एवं सान्त्वना प्रदान नहीं कर सकता। सन् १४९२ ईस्वी के वसंत में लारेन्ज़ो बीमार पड़ा। उसे भासित हो गया कि उसका चिरशंकित 'कल' काल-रूप धारण कर सामने आ गया है। सांसारिक दृष्टि से उसे सफलता मिली थी, फ्लोरेंस उसका चरण-चुम्बन कर रहा था, वैभव, सुख और भोग छाया के समान सदैव उसके साथ रहे थे, उसके ऐश्वर्य और प्रताप की गूंज सारे यूरोप में फैली थी। इन सब ने उसके जीवन को प्रकाश से भर दिया था किन्तु जब उनसे सदा के लिये विदा लेने का समय आया उस समय उसने अपने को भयंकर अंधकार में पाया। अंत और अनंत, इहलोक और परलोक, इनके संधिस्थल पर आते ही उसकी अंतरात्मा जागृत् हो उठी और जो ध्वनि सांसारिक वैभव तथा सुख के वातावरण में "जीवन मौज उड़ाने के लिये है" इस सिद्धान्त के मोहक संगीत में डूब चुकी थी, वह अन्तकाल की शान्ति में अचानक शब्दायमान होने लगी। उसने अपने जीवन के कार्यों पर दृष्टि डाली

और अपनी जागृत् सदसद-विवेकबुद्धि की ज्योति में उनकी परीक्षा की। उसके पाप भीषण रूप धारण कर उसके सामने ताण्डवनृत्य करने लगे। उसकी आत्मा प्रायश्चित एवं क्षमा-याचना के लिये व्यग्र हो उठी। धर्माचार्य एवं पुरोहित पास ही थे। वे ईश्वर के प्रतिनिधि बनकर उससे पाप-स्वीकार कराने तथा क्षमा-दान देने को तैयार थे। ये लोग उसके दरबारी थे, दास थे, और सदा उसे प्रसन्न रखने की चेष्टा में लगे रहते थे। लारेन्जो उनके चरित्र व स्वभाव से परिचित था। वह जानता था कि ये वही करेंगे जो वह चाहेगा अथवा कहेगा। अतएव उसकी अन्तरात्मा को उनकी सचाई में विश्वास तथा सहृदयता में श्रद्धा न हो सकी। जो लोग धार्मिक आवरण धारण किये हुए भी अपनी बुद्धि और आत्मा को उसे पहिले ही से बेच चुके थे, उनके द्वारा दिया हुआ क्षमा-दान उसकी आत्मा को सन्तोष कैसे दे सकता था? जीवन भर उसे इस बात का गर्व था कि कोई भी मेरी आज्ञा को नहीं टाल सकता। यही बात अन्तकाल आने पर उसे शूल की भांति खटकने लगी। वह किसके सन्मुख अपना हृदय खोले? कौन उसे वह क्षमा-दान करेगा जिससे कि उसकी आत्मा को शान्ति मिल सकेगी? कहाँ है ऐसा स्वतन्त्र आध्यात्मिक विचार तथा पवित्र जीवन वाला पुरुष जो कि निडर एवं निःसंकोच भाव से उसके पाप-मोचन के लिये अग्रसर हो? कहाँ है वह पुण्यात्मा जिसके चरित्र एवं व्यक्तित्व के प्रति उसे वह श्रद्धा होगी जिसके बिना अन्त-काल में आत्मिक आश्वासन असंभव है?

सहसा उसे सावोनारोला की याद आई। वही एक व्यक्ति था जिसे लारेन्जो लोभ व भय से वश में नहीं कर सका था। उसकी दृढ़ता तथा निर्भयता, उसकी पुण्यशीलता एवं उग्र तापस विभूति लारेन्जो के अंतःकरण में श्रद्धा संचार कर रहे थे। यदि सावोनारोला द्वारा क्षमा-दान मिले तो लारेन्जो की आत्मा को शान्ति मिल सकती है। अतएव उसने कहा "सिवाय सावोनारोला के मैं किसी और सच्चे सन्यासी को नहीं जानता। मैं उसी के सन्मुख पाप-स्वीकार करूंगा और वही मेरी पाप-मुक्ति कर सकेगा।" शीघ्र ही दूत सावोनारोला को बुलाने के लिये भेजे गये। पहिले तो सावोनारोला को बड़ा आश्चर्य हुआ और वह वहां जाने से हिचकिचाया। फिर यह जान कर कि लारेन्जो की दशा बहुत खराब हो रही है और वह सावोनारोला के सामने पाप स्वीकार करने को अत्यन्त उत्कण्ठित है, सावोनारोला ने उससे मिलने के लिये प्रस्थान किया।

ऐश्वर्य, विलास और आमोद-प्रमोद की सभी सामग्री से सुसज्जित लारेन्जो का एक विशाल रमणीय प्रसाद नगर के बाहर बना हुआ था। बीमार होने पर लारेन्जो यहीं आगया था। सावोनारोला उस कमरे में ले जाया गया जहाँ पर कि फ्लोरेंस का प्रतापी स्वामी निःसहाय व निराश [illegible] में पड़ा हुआ मृत्यु

होगया। शान्त शिष्ट भाव से सावोनारोला लारेन्ज़ो की शय्या के निकट पहुँचा।

लारेन्ज़ो ने कहा—"धर्मपिता, मेरे तीन पाप-कार्य ऐसे हैं जो मुझे पीछे खींचते और निराश कर रहे हैं। मैं नहीं जानता कि परमात्मा उनके लिये मुझे क्षमा करेंगे अथवा नहीं।"

ये तीन कार्य कौन २ से थे? पहिला वोल्टेरा की लूट। दूसरा—मोन्टे डेला फेन्सियूल नामक संस्था की सम्पत्ति का अपहरण। यह संस्था ग़रीब कुमारी कन्याओं के लिये दहेज का प्रबंध करती थी। इससे उनके विवाह में सहायता मिलती थी। अतएव जब लारेन्ज़ो ने इसको सम्पत्ति लूट ली तब कितनी ही कन्यायें अविवाहित रह गई और उन्हें वेश्यावृत्ति स्वीकार करना पड़ी। तीसरा—पेज़ी षड्यन्त्र के दमन में भीषण हत्यायें व क्रूरता।

सावोनारोला ने प्रोत्साहन देते हुए कहा—"लारेन्ज़ो, इतने हताश मत होओ। परमात्मा दयासागर हैं। वे तुम पर भी दया करेंगे यदि तुम मेरी तीन बातों को मानोगे।"

लारेन्ज़ो—"वे तीन बातें कौन २ सी हैं?"

दाहिना हाथ उठाकर गंभीरता से सन्यासी ने उत्तर दिया—"प्रथम यह कि तुम्हारे हृदय में गहरा और सच्चा विश्वास होना चाहिये कि परमात्मा तुम्हें क्षमा कर सकता है और करेगा।"

लारेन्ज़ो ने कहा—"यह एक महत्वपूर्ण बात है। मैं स्वीकार करता हूँ, मुझे परमात्मा में पूरा विश्वास है।"

फिर सावोनारोला ने कहा—"दूसरी आवश्यक बात यह है

कि जो धन तुमने अन्याय से उपार्जित किया है उसे तुम, जहाँ तक सम्भव हो, वापिस लौटा दो अथवा अपने उत्तराधिकारियों को आज्ञा देदो कि वे तुम्हारी ओर से उसे वापिस कर दें।"

इन शब्दों को सुनकर लारेन्जो को कुछ आश्चर्य और क्रोध हुआ। तथापि उसने सिर हिलाकर इसे भी स्वीकार कर लिया।

तब सावोनारोला उठ खड़ा हुआ और अपनी मर्मान्तभेदिनी दृष्टि लारेन्जो की आँखों पर केन्द्रित कर तीव्र स्वर से बोला—"अन्तिम आवश्यक बात यह है कि तुम फ्लोरेंस की स्वाधीनता को लौटा दो और वहाँ फिर से प्रजातन्त्र शासन की स्थापना करो।"

यह लारेन्जो के लिये असह्य था, असम्भव था। उसने सारी शक्ति लगाकर सावोनारोला की ओर पीठ फेरली। इसके बाद वह कुछ नहीं बोला।

फलतः सावोनारोला भी उसे पाप-मुक्ति दिये बिना ही अपने मठ को लौट गया।

लारेन्जो और सावोनारोला की इस प्रथम और अन्तिम भेंट का दृश्य कितना अपूर्व, कितना चित्ताकर्षक और कितना स्मरणीय है! उस महान् युग के दो महान् व्यक्ति मिलते हैं। किन्तु दोनों की महानता का आधार कितना भिन्न है! एक अकिंचन भिक्षु है, दूसरा अतुल ऐश्वर्य का स्वामी। एक स्वतन्त्रता का पुजारी है, दूसरा निरंकुश सत्ता का अधीश्वर। एक अपने जीवन में धर्म एवं पुण्य की निःस्वार्थ उपासना कर रहा है, दूसरे ने स्वार्थ-सिद्धि की लालसा में सत्य-असत्य तथा न्याय-अन्याय का

कभी विचार ही नहीं किया। दोनों विद्वान हैं किन्तु एक की विद्वत्ता ईश्वरभक्ति और तपश्चर्या की जननी है, दूसरे की विद्वत्ता धार्मिक उदासीनता को उत्तेजित करती रही है। इस मिलन का अवसर भी अपूर्व है। प्रतापी, विजयी, यशस्वी लारेन्जो परलोक की चिन्ता में उसी अकिंचन सन्यासी की ओर उत्सुकता से देख रहा है। सन्यासी उसे पाप मुक्ति और आत्मिक शान्ति प्रदान करने के लिये प्रस्तुत है परन्तु तीन शर्तों पर। इन शर्तों का वास्तविक अर्थ क्या है? सावोनारोला कहता है कि यह अंगीकार करो कि ईश्वर में तुम्हारा गहरा और सच्चा विश्वास है। लारेन्जो पुनर्जागृति के आन्दोलन का एक महान् संरक्षक था। इस आन्दोलन के बुद्धिवाद और संशयवाद ने धार्मिक उदासीनता उत्पन्न कर दी थी। अतएव सावोनारोला की शर्त का यही आशय निकलता है कि लारेन्जो आत्मसमर्पण करे और जिस सत्ता का ध्यान उसे जीवन भर नहीं हुआ था उसे स्वीकार कर अपनी पराजय का अंगीकार करे। फिर सावोनारोला कहता है कि छल व अन्याय से प्राप्त सम्पत्ति को लौटा दो। लारेन्जो का जीवन वैभव-उपार्जन की एक कहानी है। इसके लिये उसने साधनों की पवित्रता का बलिदान कर दिया था। अब सावोनारोला कहता है पवित्र-साधनों की बलिवेदी पर पश्चात्ताप स्वरूप अन्याय से उपार्जित सम्पत्ति की आहुति दे दो। लारेन्जो फ्लोरेंस का सर्वेसर्वा था। यह उसकी कीर्त्ति का एक आधार था। तीसरी शर्त में सावोनारोला कहता है कि इस पद को भी त्याग

दो। सारा जीवन निरंकुश सत्ता की प्राप्ति में व्यतीत कर अब अन्त समय को शान्ति के हेतु उसे त्याग दो और फ्लोरेंस में प्रजासत्ता क़ायम करो। तात्पर्य यह कि जिस वैभव, व जिस सत्ता के लिये लारेन्जो ने जीवन भर परिश्रम किया, जिसे वह अथवा समस्त संसार उसके गौरव व गर्व की चीज़ मानता रहा, उसका पाप-मुक्ति के लिये उत्सर्ग कर लारेन्जो अपना परमार्थ-पथ सुगम बनावे। इस जीवन को अशेष पराजय स्वीकार कर आगामी जीवन के लिये प्रस्तुत हो। लारेन्जो ऐसा नहीं करता। सन्यासी भी दुःखित और निराश होकर लौट जाता है। दोनों की दृढ़ता उल्लेखनीय है। किन्तु जिसे लारेन्जो महाप्रस्थान के समय भी तिलाञ्जलि न दे सका उसका नाश सन्निकट था और वह भी इसी सन्यासी के हाथ से। भविष्य सन्यासी के साथ था।

यद्यपि लारेन्जो अपने संस्कारों पर विजय नहीं पासका तथापि उसमें सद्वृत्तियां थीं। इनका कुछ न कुछ असर सावो-नारोला पर भी पड़ा था। इसी लिये कुछ वर्षों बाद उसने लारेन्जो के संबंध में कहा भी था कि "मुझे दुःख है कि लारेन्ज़ो ने मुझे पहिले नहीं बुलाया। यदि ऐसा हुआ होता तो मुझे विश्वास है कि ईश्वर की दया से उसे पाप-मुक्ति मिल जाती।"

मानसिक संताप और वेदना से लारेन्ज़ो व्यथित रहा और ८ अप्रैल १४९२ ईस्वी में उसकी मृत्यु होगई।

---

(७)
परिवर्त्तन, सुधार और चेतावनी

लारेन्ज़ो की मृत्यु के बाद उसका पुत्र पाइरो डी मेडिसी फ्लोरेंस का शासक बना। वह बलिष्ठ नवयुवक था और खेल कूद में ही लगा रहता था। वह इसी प्रयत्न में रहता कि इटली का कोई भी खिलाड़ी टेनिस, फुटबाल मुक्कमुक्का, घुड़सवारी आदि में उसे न हरा सके। न उसमें लारेन्ज़ो का सा विद्याप्रेम था, न उसके जैसी राजकार्य कुशलता। अपनी राजनीतिज्ञता के कारण लारेन्ज़ो इटली के राज्यों के पारस्परिक झगड़ों का निर्णायक बन गया था। इससे फ्लोरेंस की प्रतिष्ठा बढ़ी थी। किन्तु पाइरो में यह गुण था ही नहीं। लारेन्जो की सत्ता का आधार था उसकी सफलता, नीतिमत्ता और लोकप्रियता। किन्तु पाइरो इन सब से रहित था। वह अयोग्य और आलसी था। लारेन्जो अपने शिष्ट व्यवहार से सब को मिलाये रखता था किन्तु पाइरो धृष्ट था, वह किसी को कुछ समझता ही नहीं था। अपने दुर्व्यवहार से उसने अनेक मित्रों को भी शत्रु बना लिया। लारेन्जो ने प्रजातन्त्र के बाह्य रूप को सुरक्षित रखा था, जिससे कि जनसाधारण वस्तु स्थिति को न समझकर भुलावे में पड़े रहे। परंतु पाइरो न अन्य राजाओं की सदिच्छा की परवाह करता था और न फ्लोरेंस-वासियों के भावों की। वह प्रजातंत्र के बाह्यरूप को भी नष्ट

करने लगा जिससे उसकी सत्ता की निरंकुशता स्पष्टतया दिखने लगी। फलतः लारेंजो के घराने के विरोधियों की संख्या बढ़ने लगी और लोग अपने अपहृत अधिकारों को फिर से पाने के लिये उपाय सोचने लगे। पाइरो के विरुद्ध एक दल का संगठन होने लगा। यह दल सावोनारोला को अपना नेता व प्रचारक मानता था। सावोनारोला का प्रभाव दिन प्रति दिन बढ़ रहा था। उसने भविष्यवाणी की थी कि लारेंजो तथा पोप की मृत्यु सन्निकट है। दोनों बातें सच निकलीं। जनसाधारण को उसकी दिव्यदृष्टि पर विश्वास होने लगा।

पोप इन्नोसेण्ट की मृत्यु भी १४९२ में हुई। नये पोप का चुनाव हुआ। धन से वोट खरीदकर रोड्रिगो बोर्जिया पोप बना। उसने एलेक्जेंडर छठवां की उपाधि धारण की। जन्म से यह स्पेनवासी था। इटली में इसने कानून पढ़ा। यह बड़ा कार्यकुशल था विशेषकर रुपये पैसे के प्रबन्ध में। धन इकट्ठा करने का तो इसे रोग था। इसी के बल से यह पोप निर्वाचित हुआ। विषय वासना तथा कामुकता का यह पुतला था। किसी न किसी प्रेयसी का गुलाम बना ही रहता था। जिस समय यह ईसाई संप्रदाय के परमपूज्य पद के लिये निर्वाचित हुआ उस समय विनोज्जा नामक एक बदनाम औरत इसकी प्रेमपात्री थी। इनकी कितनी ही सन्तानें हुईं। कहते हैं कि पहिले विनोज्जा की मा भी उसकी रखेली थी और बाद में विनोज्जा से उसकी जो लूक्रेजिया नामक कन्या हुई उससे भी उसने पाप-सम्बन्ध स्थापित किया।

संसार के इतिहास में कदाचित ही ऐसा कोई उदाहरण हो जहाँ पर कि इसके समान घृणित चरित्र वाला मनुष्य ऐसे परमपवित्र आसन पर ईसा के प्रतिनिधि के सिंहासन पर-बैठा हो। वह युग धार्मिक उदासीनता का युग था तथापि जब रोड्रिगो पोप की गद्दी पर आसीन हुआ तब उस युग के लोग भी स्तम्भित होगये और हैरान हो सोचने लगे कि अब क्या होने वाला है। सभी की दृष्टि फ्लोरेंस के उस महापुरुष की ओर जाने लगी जिसने कि पहिले ही से यह घोषित कर दिया था कि इटली तथा चर्च के ऊपर ईश्वरीय दण्ड का प्रहार होने वाला है।

पहिले टस्कनी प्रांत के सभी मठों का अपना एक अलग संगठन था किन्तु १४४८ में वे लोंबार्डी प्रान्त के अन्तर्गत कर दिये गये थे। अर्थात् संत मार्क का मठ लोंबार्ड-परिषद् के आधीन हो गया था। इसके अधिकारी मिलेन नगर में रहते थे। इसके अतिरिक्त पोप ईसाई संसार का अधिपति होने के कारण डोमिनीशियन संप्रदाय के सभी मठों का सर्वप्रधान माना जाता था। सारांश यह कि संत मार्क के मठाध्यक्ष सावोनारोला के दो उच्च अधिकारी थे—मिलेन स्थित लोंबार्ड-परिषद् का प्रधान और पोप।

जब पाइरो ने देखा कि दिन प्रति दिन उसके विरोधी बढ़ते जा रहे हैं और सावोनारोला उनका नेता बन गया है तो उसने सावोनारोला को फ्लोरेंस से हटाने की ठानी। उसने सावोनारोला के मिलेन तथा रोम में रहने वाले अधिकारियों से कह कर उसे कुछ समय के लिये फ्लोरेंस से निर्वासित करा दिया। सावो-

नारोला को बोलोना जाना पड़ा। इससे संत मार्क के भिक्षुओं को बहुत दुःख हुआ। निर्वासन की अवधि समाप्त होने पर वह पुनः फ्लोरेंस लौट आया। उसने देखा कि पाइरो के विरुद्ध जनता का असन्तोष बढ़ता ही जा रहा है।

फ्लोरेंस आते ही सावोनारोला ने टस्कनी के मठों को लोंबार्ड ने परिषद् से स्वतन्त्र करने का निर्णय किया। इसमें उसके तीन उद्देश्य थे—संत मार्क के मठ को टस्कनी के मठों का केन्द्र बनाना, अपने पद को अधिक स्वतन्त्र व सुरक्षित करना जिससे कि उसके शत्रु उसे सहज ही में न हटा सकें, और टस्कनी के मठों में अपनी इच्छा के अनुसार सुधार करने का अवसर प्राप्त करना। पोप की सेवा में संत मार्क के भिक्षुओं की ओर से प्रार्थना-पत्र भेजा गया। पाइरो ने सोचा कि इससे फ्लोरेंस की शान बढ़ेगी इसलिये उसने भी इस प्रस्ताव का समर्थन किया। रोम में फ्लोरेंस सरकार के जो प्रतिनिधि थे उन्हें आज्ञा दी गई कि पोप से इस प्रस्ताव को स्वीकृति लेने के लिये भरसक प्रयत्न करें। किन्तु लोंबार्ड-परिषद् तथा इटली के कई राजाओं ने इसका विरोध किया। पोप एलेक्ज़ेंडर बहुत दिनों तक यह निश्चित नहीं कर सका कि किसके पक्ष में निर्णय करे। अन्त में कार्डिनल कराफा के अनुरोध से उसने यह आज्ञा निकाल दी कि टस्कनी के मठ लोंबार्ड-परिषद् की आधीनता से मुक्त कर दिये जायँ। टस्कनी के मठों का संगठन किया गया और सन् १४९३में सावोनारोला उनका प्रधान निर्वाचित हुआ।

सावोनारोला ने अपने आधीनस्थ मठों के सुधार का कार्य प्रारम्भ किया। उनका नियमानुशासन दृढ़ बनाया गया। भिक्षु-गण स्वेच्छा दारिद्र् के नियम को भूल गये थे और आराम से दिन काटते थे। सावोनारोला ने इस दोष को दूर करने का प्रयत्न किया। मठ के खर्च के लिये जितनी जायदाद की जरूरत थी उसे छोड़कर बाक़ी को उसने बिकवा दिया। खर्च घटाने के लिये उसने यह आज्ञा निकाली कि भिक्षुगण सादे, गाढ़े व टिकाऊ कपड़े पहिनें, अपनी आवश्यकताओं को यथासम्भव कम करें, अपने कमरों में से फालतू चीजों को हटादें और सोने चांदी के क्रूश तथा अन्य दिखाऊ सामान अपने पास न रखें। उसने कहा कि भिक्षुओं को स्वावलंबी बनना चाहिये, उन्हें अपनी जीविका उपार्जन के लिये कोई न कोई काम अवश्य करना चाहिये। उन्हें योग्यतानुसार काम भी बांट दिये गये। चित्रकारी, मूर्ति-कला, भवन-निर्माण-कला तथा हस्तलिखित ग्रंथों की कापी करने के लिये कक्षायें खोली गईं। मठ के सुप्रबंध का कार्य योग्य भिक्षुओं तथा उपासकों को सौंपा गया। जो भिक्षु धर्म शील तथा धर्मशास्त्र पारंगत होते, वे ही उपदेश-कार्य के लिये बाहर भेजे जाते। उनकी सेवा के लिये एक श्रावक साथ जाता। मठ की शिक्षा का भी संगठन किया गया। धर्म, दर्शन, तथा सदाचारशास्त्रों के अध्ययन पर विशेष जोर दिया गया। भिक्षुओं से कहा गया कि ईसाई धर्म-पुस्तक का ग्रीक, हिब्रू तथा अन्य पूर्वीय भाषाओं की सहायता से अध्ययन करो जिससे कि उसके

मौलिक सत्य समझ में आसकें। इन भाषाओं के अध्ययन का प्रबंध किया गया। नियम बने, उनके पालन पर ज़ोर दिया गया, सुप्रबंध और सुसंगठन हुआ, परंतु भिक्षुओं के जीवन में सुधार करने की सर्वप्रधान प्रेरक-शक्ति स्वयं गान्धीनागोला का उदाहरण ही था। वह दूसरों से नियम व कर्त्तव्य के पालन में कड़ाई से काम लेता था किन्तु सबसे अधिक कट्टर तो वह स्वयं अपने ही साथ रहा करता था। वह सब से अधिक सादगी व ग़रीबी से रहता। जिस जीवन व संयम का उपदेश वह दूसरों को देता था उससे कहीं अधिक कठोरतर जीवन एवं संयम स्वयं उसी का था। नियमबद्धता, गम्भीर धार्मिक उत्साह, उग्र पवित्र आचरण, स्वावलम्बन, सरलता, संयम, स्वार्थ-त्याग तथा आत्मोत्सर्ग—यही ध्येय उसने अपने सामने रक्खा था और अपने आचरण व उदाहरण से वह अपने आधीनस्थ भिक्षुओं को इस पथ का अनुसरण करने के लिये प्रेरित और उत्साहित करता था। एक पत्र में वह लिखता है—"तुम पूछते हो कि हम क्या कर रहे हैं? हम बाह्य अनावश्यक बातों को दूर फेंक कर उस सादगी और ग़रीबी की ओर लौट रहे हैं जिसका कि विधान हमारे सम्प्रदाय के प्रारम्भिक नियमों में किया गया है। वास्तविक परिवर्तन तो उस समय हुआ था जब कि भिक्षुओं ने विलास की सामग्री से भरे हुए प्रासाद खड़े किये थे। यदि मैं तुमसे मिल सकूंगा तब यह समझाऊँगा कि सारे संसार में अन्धकार व अधःपतन फैला हुआ है और अब ईश्वर के सेवकों के पुनरुत्थान का अवसर आगया है।

× × अब हमें उस दमन चक्र को सहन करने के लिये तैयार होना आवश्यक है जिसका प्रहार साधुओं पर होना अनिवार्य है। और हम लोग उसके लिये तैयार भी हैं।"

ज्यों २ सावोनारोला की ख्याति व लोकप्रियता बढ़ने लगी, ज्यों २ उसकी भविष्यद्वाणी सच निकलने लगी, त्यों २ उसका विश्वास भी दृढ़ होने लगा कि परमात्मा ने उसे अपना सन्देश सुनाने के लिये नियुक्त किया है और दिव्य-दृष्टि प्रदान की है। लारेन्जो की मृत्यु के थोड़े दिन बाद उसे दिव्य-दर्शन हुआ। उसे आकाश में एक तलवार दिखलाई दी जिसके ऊपर लिखा हुआ था "यह ईश्वरीय प्रकोप की तलवार है जो शीघ्र ही पृथिवी पर प्रहार करेगी।" उसे तीन देवदूतों की आवाज सुनाई दी कि "संसार के रहने वालो, सब लोग सुनो। वह दिन आवेगा जब मेरी इस तीक्ष्ण तलवार का वार तुम पर होगा। जब तक मेरे रोष का प्याला लबालब नहीं भरा है, तुम लोग मेरा आश्रय ग्रहण करो—यह परमात्मा की वाणी है।" फिर उसने देखा कि "संसार पर उस तलवार का वार हुआ। आकाश में अंधकार छा गया, तीर, तलवार तथा अग्नि की वर्षा होने लगी, प्रचण्ड मेघ-गर्जन होने लगा, सारा संसार युद्ध, अकाल तथा व्याधियों से ग्रसित हो गया।" आकाशवाणी ने सावोनारोला को आदेश दिया कि "जाओ, अपने श्रोताओं को आने वाले दैवी प्रकोप की सूचना दे दो, उनके हृदय में ईश्वर के भय का संचार करो और परमात्मा से प्रार्थना करो कि चर्च के लिये अच्छे २ उपदेशक

चेतावनी देता रहा कि अपना सुधार करो, अन्यथा ईश्वरीय प्रकोप के प्रहार के लिये तैयार हो जाओ।

पुरोहितों के पाखण्ड के बारे में वह कहता है—"वे गर्व और स्वार्थ-लालसा के विरुद्ध उपदेश देते हैं, परन्तु स्वयं उसी में डूबे हुए हैं। वे ब्रह्मचर्य की शिक्षा देते हैं परन्तु स्वयं रखेलियां रखे हुए हैं। वे कहते हैं कि व्रत-उपवास करो किन्तु स्वयं बड़े २ भोजों में शामिल होते हैं। × × × × ये पुरोहित अपनी शान में मस्त रहते और दूसरों को तुच्छ समझते हैं। वे चाहते हैं कि लोग उनका मान करें, उनसे डरें।"

शासकों के सम्बन्ध में वह कहता है—"ये शासक इसलिये भेजे गये हैं कि लोगों को पापों के लिये दण्ड दें, पर वास्तव में ये उनके लिये फंदे के समान हैं। उनके प्रासाद व दरबार नर-पशुओं और नर-राक्षसों के आश्रय हैं क्योंकि वे नीचों और आततायियों को स्थान देते हैं। ये लोग उनके यहां आते हैं क्योंकि उन्हें पाप-वासना की पूर्ति के साधन मिलते हैं। वहां बेईमान मन्त्री हैं जो कि प्रजा का रक्त चूसने के लिये नये २ कर व नये २ बोझ ढूंढा करते हैं। वहां चापलूस कवि और दार्शनिक भी हैं जोकि हजारों झूठ बातों तथा दन्तकथाओं द्वारा यह सिद्ध करने की कोशिश करते हैं कि यह राजा देवताओं का वंशज है। सब से बुरी बात तो यह है कि पुरोहित भी इनका अनुसरण करते हैं। हे मेरे भाइयो, यह मूर्खों और पापियों का नगर है। यह वह नगर है जिसे परमात्मा नष्ट करेंगे।"

ऐसे अधःपतन के बीच सावोनारोला की आत्मा क्रोध के वशीभूत हो पुकार उठती है कि "एक ही आशा हमारे लिये शेष है कि परमात्मा की तलवार का वार संसार पर हो।" खड्ग का वार अवश्य होगा इसकी चेतावनी देते हुए वह अपने एक स्मरणीय भाषण में कहता है—"शीघ्र ही तुम निरंकुश शासकों की पराजय देखोगे। तुम देखोगे कि समस्त इटली की हार होगी, उसे लज्जित, अपमानित व पीड़ित होना पड़ेगा। और, रोम, तुम पर दूसरों का अधिकार होगा। मैं ईश्वरीय प्रकोप के तलवार का तुम पर प्रहार होते हुए देख रहा हूँ। समय कम है, शीघ्र ही दिन विलीन हो रहे हैं।"

एकाकी सन्यासी समस्त इटली के पापों की घोर निन्दा करता हुआ शासकों और पुरोहितों को ललकार कर कह रहा है कि प्रायश्चित करो अन्यथा तुम्हारा संहार होगा। लोग भयभीत हैं। इटली निर्बल है। तथापि कोई आसन्न विपत्ति के चिन्ह नहीं दिखाई देते। सहसा, मेघहीन आकाश से वज्रपात के समान, सीमा प्रान्त से समाचार आता है कि चार्ल्स के नेतृत्व में फ्रांसीसी सैनिकों का समूह आल्प्स पर्वत को पार कर इटली पर आक्रमण करने के लिये बढ़ा चला आ रहा है। सन्यासी का कहना सच निकला। यही ईश्वर की तलवार थी जो कि दुष्टों को दण्ड देने तथा साधुओं एवं पश्चात्ताप करने वालों की रक्षा के लिये इटली पर चलाई जा रही थी।

---

(८)

इटली पर चार्ल्स की चढ़ाई

भूमिका में इटली की राजनीतिक अवस्था का संक्षिप्त वर्णन किया जा चुका है। देश धन-धान्य से परिपूर्ण था। विद्या, कला व साहित्य की अपूर्व उन्नति हो रही थी। किन्तु वहां राष्ट्रीयता का नितान्त अभाव था। देश छोटे २ बहुसंख्यक राज्यों में बंटा हुआ था। शासकों में परस्पर द्वेष और ईर्ष्या के भाव रहते थे। उनकी नीति छल, कपट तथा स्वार्थ से भरी रहती थी, उसमें राष्ट्र-भाव व सिद्धान्त को कोई स्थान ही नहीं था। फलतः इटली में ऐश्वर्य था और निर्बलता भी। ऐश्वर्य विदेशियों को आक्रमण करने का प्रलोभन दे रहा था, निर्बलता उन्हें प्रोत्साहन प्रदान कर रही थी। फ्रांस के नवयुवक सम्राट् चार्ल्स अष्टम की विजय-लालसा जागृत् हो उठी।

सन् १४७६ में मिलेन का ड्यूक गलियाजो स्फोजा मार डाला गया। इसके बाद उसका पुत्र।गियोवनी ड्यूक हुआ। किन्तु उसकी अवस्था कम थी इसलिये राजकार्य उसका चाचा लुडोविको ही करता था। लुडोविको बड़ा स्वार्थी और अधिकार-लोलुप था। वह स्वयं मिलेन का ड्यूक बनना चाहता था इसलिये जब गियोवनी बड़ा हुआ तब उसने उसे राज्य नहीं लौटाया। उसने गियोवनी को महल में ही कैद कर दिया और

स्वयं ड्यूक बन बैठा। गियोवनी की स्त्री इसाबेला नेपिल्स की राजपुत्री थी। उसने लुडोविको को ड्यूक-पद से हटाने के लिये अपने पिता से सहायता मांगी। इससे लूडोविको बहुत डरा और नेपिल्स के राजा की शक्ति को नष्ट करने का उपाय सोचने लगा। कह चुके हैं कि फ्रांस के राजाओं का यह एक पुराना दावा था कि नेपिल्स का राज्य उन्हें मिलना चाहिये। अब लुडोविको ने फ्रांस के उच्चाकांक्षी सम्राट् चार्ल्स को इटली पर आक्रमण करने के लिये निमन्त्रित किया। उसने नेपिल्स को जीतने में चार्ल्स की सहायता करने का वचन दिया। पोप एलेक्जेंडर भी नेपिल्स की आपत्ति-ग्रस्त अवस्था से लाभ उठाना चाहता था। अतएव उसने भी गुप्तरीति से चार्ल्स को प्रोत्साहन दिया। इस प्रकार स्वयं इटालियनों के बुलाने पर, फ़रासीसी चार्ल्स ने इटली पर चढ़ाई की।

इटली के नरेशों में राष्ट्रीयता और देशभक्ति का कितना करुण अभाव था इसका उदाहरण हमें उपरोक्त घटना से ही मिल सकता है। इस राजनीतिक अधोगति के कारण जो विदेशी आक्रमण अब प्रारंभ हुए वे ३५० वर्ष तक जारी रहे। उन्होंने इटली को वीरान कर दिया, व्यापार को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया, साहित्य, विज्ञान तथा कला की उन्नति को रोक दिया और देश की बची, खुची स्वतंत्रता को भी कुचल डाला। इसे इटली के पापों का ईश्वरीय दण्ड कहना अनुचित न होगा। प्राचीन तथा मध्यकालीन युग में महत्व के सर्वोच्च शिखर पर जो स्थान इटली

को मिला था, यहीं से अब उसका पतन हुआ और उन्नीसवीं शताब्दि के मध्यतक उसकी दशा दयनीय और शोचनीय बनी रही। फिर कहीं नव जीवन का संचार एवं स्वातन्त्र्य की प्राप्ति उसे हुई।

इटली के नरेश इतने स्वार्थी और अत्याचारी थे कि वहां की जनता उनसे मुक्त होने की आशा से चार्ल्स का मन ही मन स्वागत कर रही थी। स्वातंत्र्योपासक समझते थे चार्ल्स का आक्रमण इन निरंकुश शासकों की शक्ति को छिन्न भिन्न कर देगा जिससे कि जनसाधारण अपने खोये हुए अधिकारों को पाने के लिये सिर उठा सकेंगे।

फ्लोरेंस के सम्बन्ध में तो उपरोक्त बात विशेष रूप से कही जा सकती है। वहां के लोग पाइरो से खिन्न हो गये थे और उससे मुक्त होना चाहते थे। सावोनारोला के उपदेशों से उनको स्वातंत्र्य-प्राप्ति की प्रेरणा मिल रही थी। पाइरो ने नेपिल्स के राजा का साथ दिया, इससे फ्लोरेंस की जनता की सहानुभूति चार्ल्स के साथ थी। किन्तु उन्हें यह पता नहीं था कि चार्ल्स की नीति उनके प्रति क्या होगी। वह उन्हें मुक्त करेगा अथवा उन्हें अपने आधीन करेगा, वह उद्धारक के रूप में आवे अथवा विजेता के रूप में। सावोनारोला ने बड़ी २ विपत्तियों की चेतावनी दी थी। इससे लोग व्याकुल हो गये थे। अब वे इस दुविधा से व्यथित होने लगे कि चार्ल्स उनके साथ कैसा वर्त्ताव करेगा। सबकी आंखें उसी ओर लगी थीं।

सुसंगठित व सुशिक्षित फरासीसी सेना के साथ सन् १४९४

में चार्ल्स ने इटली में प्रवेश किया । ड्यूक लुडोविको ने आगे बढ़कर उसका स्वागत किया । उसने चार्ल्स की मदद के लिये धन व सेना दी । स्वगतोत्सव बड़े समारोह से मनाया गया । चार्ल्स पाविया पहुँचा । वहां उसने गियोवनी को देखा जो कि अपने चाचा की क्रूरता और अधिकार-लालसा का शिकार बनकर युवावस्था में ही रोग-शय्या पर पड़ा हुआ दिन काट रहा था । उसकी स्त्री राजकुमारी इसाबेला चार्ल्स के चरणों पर गिरी और रोते हुए उससे विनती की कि मेरे पति को इन असहनीय यातनाओं से बचाइये । चार्ल्स ने सहानुभूति दिखलाते हुए कहा कि मैं लौटते समय इस सम्बन्ध में कुछ करूँगा । वह पाविया से आगे बढ़ा । थोड़े दिनों के बाद ही उसे गियोवनी की मृत्यु का सम्वाद मिला । लोगों ने कहा कि लुडोविको ने उसे जहर देकर मार डाला है । चार्ल्स ने इस दुर्घटना को कोई महत्व नहीं दिया ।

नेपिल्स के राजा ने फ़रासीसियों को रोकने की चेष्टा की किन्तु वह विफल हुआ । स्थल-मार्ग से फ़रासीसी फ़ौज ने तथा समुद्र की ओर से उनकी नौ-सेना ने नेपिल्स राज्य पर हमला किया । नेपिल्स की फौज हार कर पीछे हटी । समुद्र के किनारे पर रपालो नामक एक छोटा सा नगर था । उसे फ़रासीसी फौज की एक टुकड़ी ने घेर लिया । वहाँ जो फौज थी उसने हथियार रख दिये । नगर फरासीसियों के क़ब्जे में आगया । इसके बाद फ़रासीसियों ने वहाँ के सब लोगों को क़त्ल कर डाला, सैनिकों नगरवासियों, बीमारों में से किसी को भी न छोड़ा । नगर मिट्टी

में मिला दिया गया। यह उन लोगों के लिये एक उदाहरण अथवा चेतावनी थी जो कि फरासीसियों को रोकना चाहते थे। सारे इटली में आतंक छा गया। बिना कठिनाई के चार्ल्स ने लोंयार्डी प्रान्त को पार किया। आगे टस्कनी प्रान्त था फ्लोरेंस जिसकी राजधानी थी।

लूट मचाते, मारकाट करते और आग लगाते हुए फरासीसी सेना ने टस्कनी में प्रवेश किया। फ्लोरेंसवासी क्या करते? उनके पास जल-सेना थी, प्रान्त में उचित स्थानों पर किले भी बने हुए थे। किन्तु शासन की बागडोर तो आलसी एवं अयोग्य पाइरो के हाथों में थी। सब लोग यही देख रहे थे कि वह क्या करता है। किन्तु पाइरो की दशा खराब थी। उसके पास न धन था, न सलाहकार। सारा राज्य उसका विरोधी था। वह किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गया। यहां उसने पाओलो ओर्सिनी को ३-४ सौ सैनिकों के साथ सज़ीना के दुर्ग की रक्षा के लिये भेजा वहां वह स्वयं ही सन्धि-याचना करने के लिये चार्ल्स के शिविर की ओर चल पड़ा। चार्ल्स के सैनिक तीन दिन से सरज़ानेलो के दुर्ग पर हमला कर रहे थे पर उन्हें सफलता नहीं मिली थी। तथापि पाइरो चार्ल्स के शिविर में पहुँचा और उसकी शर्तों को मानने को तैयार हो गया। फ्लोरेंसवासियों ने अपने दूत भेजे कि पाइरो से मिलकर चार्ल्स से ऐसी शर्तें स्वीकार कराने का प्रयत्न करें जिससे फ्लोरेन्स की अधिक हानि न हो। उनकी यह धारणा थी, और ठीक थी, कि चार्ल्स यह समझ गया होगा

कि टस्कनी के क़िलों को फ़तह करना बड़ा कठिन काम होगा, उसमें समय, धन व सेना की बर्बादी होगी। अतएव उन्होंने सोचा कि यदि सन्धि की ऐसी शर्तें उसके सामने रखी जायं जिस से उसे भी सन्तोष हो जाय और फ्लोरेंस भी बिना युद्ध किये बच जाय तो वह उन्हें मान लेगा। यदि पाइरो बुद्धि और साहस से काम लेता तो ऐसा होना कठिन नहीं था। परन्तु वह तो इतना भयभीत था कि उसने दूतों की एक न सुनी और चार्ल्स की शर्तों को मान लिया। उसने टस्कनी के तीन क़िले चार्ल्स को दे दिये और यह बात भी मान ली कि जब तक युद्ध जारी रहेगा तब तक पीसा और लेगहोर्न के क़िले भी फ़रासीसियों के क़ब्ज़े में रहेंगे। इसके सिवाय उसने चार्ल्स को दो लाख मुद्रायें देने का भी वचन दिया। इतने सस्ते में ऐसी लाभदायक शर्तों को पाकर फरासीसियों को आश्चर्य हुआ। जब इन घटनाओं की ख़बर फ्लोरेंसवासियों को मिली तब उनके क्रोध और आतंक का ठिकाना नहीं रहा। प्रान्त व नगर पर आक्रमण रोकने के लिये जो क़िले इतने परिश्रम व धन-व्यय से बनाये गये थे, उन्हें कापुरुष पाइरो ने, स्वदेशवासियों से विश्वासघात कर, शत्रुओं को सौंप दिया। फ्लोरेंसवासी आत्म-रक्षा के लिये क्या करें ?

रक्षा की चिन्ता भी सभी को लगी थी। ऐसे अवसर पर उत्तेजित और उन्मत्त जनता सब कुछ कर सकती है। प्रेरणा और नेतृत्व पर ही सब कुछ निर्भर रहता है। आप उनको उच्छृङ्खल व प्रतिहिंसात्मक प्रवृत्तियों को भड़का दीजिये, वे लूट मार, हत्या और लम्पटता का बीभत्स दृश्य उपस्थित कर देंगे, सदियों के दासत्व और अत्याचार का बदला एक दिन में ही चुका देंगे। आप उनमें देशप्रेम व स्वातंत्र्य के भावों को जागृत कर दीजिये, वे युद्ध-कौशल व समुचित अस्त्र-शस्त्रों के बिना ही उस वीरता का परिचय देंगे जिसकी आशा आपने स्वप्न में भी न की होगी। साठ वर्ष के बाद उन्हें सिर उठाने का मौका मिला था। किन्तु कोई सेनापति व राजनीतिज्ञ उनका पथ-प्रदर्शन करने के लिये आगे नहीं आता था। सन्यासी सावोनारोला ही एक ऐसा व्यक्ति था जिसमें कि उन्हें पक्का भरोसा था। उसी को वे अपना नेता मानने लगे थे, उसी से उन्हें आशा थी। उसी ने उन्हें चेतावनी दी थी और वही इस आँधी और तूफान में अविचलित भाव से खड़ा था। और उसी की ओर वे दौड़े।

डुओमों में सभा हुई। इतनी अधिक संख्या में जनता वहाँ कभी इकट्ठी नहीं हुई थी। भवन ठसाठस भर गया था, हिलने तक की जगह नहीं थी। सन्यासी का आदेश जानने के लिये लोग व्यग्र थे। वही उनका एक मात्र आधार था। उसकी आज्ञा से वे सब कुछ करने को तैयार थे। वह चाहता तो बात ही बात में खून की नदियां बहवा देता, धनिकों तथा मेडिसी-दल के लोगों

(९)

हिंसाहीन क्रान्ति

आसन्न घोर विपत्ति ने सारे नगर में खलबली मचा दी। विजेता विजय-गर्व के साथ नगर पर अधिकार करने के लिये बढ़ा आरहा था। किन्तु नगर की रक्षा कैसे की जाती? वहाँ न हथियार थे, न सैनिक, पाइरो के विश्वासघात ने तो लोगोंको बिलकुल ही निःसहाय व निःसंबल बना दिया था। अपनी शोचनीय दशा को देखकर उन्हें भय होता था। पाइरो की कायरता और देशद्रोह का विचार कर उन्हें क्रोध होता था। अपने सुन्दर ऐश्वर्य-सम्पन्न नगर के प्रति उनके हृदयों में भक्ति उमड़ पड़ी। फरासीसियों ने रपालो में जो भीषण रक्तपात व ध्वंस मचाया था कहीं उसकी पुनरावृत्ति फ्लोरेंस में न हो। इन सब भावों से जन-साधारण के हृदय उत्तेजित होरहे थे—उत्तेजना उन्माद की सीमा तक पहुँच रही थी। लोग यहाँ वहाँ सड़कों व चौराहों पर झुण्ड के झुण्ड इकट्ठे होने लगे। किसी के हाथ में पुराने अस्त्र-शस्त्र थे, कोई छुरा लिये थे, किसी के पास लाठी ही थी। उनके मुख पर आतंक व प्रतिहिंसा के भाव झलकते थे। कोई कहते, कि धनिकों को लूट लो, हमें चूस कर ही ये धनवान बने हैं। कोई कहता कि मेडिसी-दल के लोगों को क़त्ल कर डालो, इन्होंने हमारे साथ विश्वासघात और द्रोह किया है। साथ ही साथ नगर का

रक्षा की चिन्ता भी सभी को लगी थी। ऐसे अवसर पर उत्तेजित और उन्मत्त जनता सब कुछ कर सकती है। प्रेरणा और नेतृत्व पर ही सब कुछ निर्भर रहता है। आप उनकी उच्छृङ्खल व प्रतिहिंसात्मक प्रवृत्तियों को भड़का दीजिये, वे लूट मार, हत्या और लम्पटता का वीभत्स दृश्य उपस्थित कर देंगे, सदियों के दासत्व और अत्याचार का बदला एक दिन में ही चुका देंगे। आप उनमें देशप्रेम व स्वातंत्र्य के भावों को जागृत कर दीजिये, वे युद्ध-कौशल व समुचित अस्त्र-शस्त्रों के बिना ही उस वीरता का परिचय देंगे जिसकी आशा आपने स्वप्न में भी न की होगी। साठ वर्ष के बाद उन्हें सिर उठाने का मौका मिला था। किन्तु कोई सेनापति व राजनीतिज्ञ उनका पथ-प्रदर्शन करने के लिये आगे नहीं आता था। सन्यासी सावोनारोला ही एक ऐसा व्यक्ति था जिसमें कि उन्हें पक्का भरोसा था। उसी को वे अपना नेता मानने लगे थे, उसी से उन्हें आशा थी। उसी ने उन्हें चेतावनी दी थी और वही इस आँधी और तूफान में अविचलित भाव से खड़ा था। और उसी की ओर वे दौड़े।

डुआमों में सभा हुई। इतनी अधिक संख्या में जनता वहाँ कभी इकट्ठी नहीं हुई थी। भवन ठसाठस भर गया था, हिलने तक की जगह नहीं थी। सन्यासी का आदेश जानने के लिये लोग व्यग्र थे। वही उनका एक मात्र आधार था। उसकी आज्ञा से वे सब कुछ करने को तैयार थे। वह चाहता तो बात ही बात में खून की नदियां बहवा देता, धनिकों तथा मेडिसी-दल के लोगों

को लुटवा देता और मरवा डालता, वह चाहता तो गृह-युद्ध खड़ा करा देता क्योंकि लोग उत्तेजित थे और बहुत दिनों से दलित होने के कारण प्रतिहिंसा से पागल होरहे थे। वह चाहता तो उन्हें आक्रमणकारी से लड़ने के लिये आगे बढ़ने की सलाह दे देता। किन्तु यह सब उसने नहीं किया। इस अवसर पर उसने युद्ध व राजनीति का उल्लेख ही नहीं किया। उपदेश-मंच पर खड़े हो, हाथ फैलाकर, समवेदना से कांपते हुए मर्मस्पर्शी शब्दों में उसने अहिंसा, एकता तथा पश्चाताप के महान् तत्त्वों की घोषणा की। उसकी प्रचण्ड आवाज से सभा-भवन गूँज उठा। उसने कहा—"देखो! तुम पर तलवार का वार हुआ है, भविष्य-वाणी पूरी हुई, ईश्वरीय दण्ड का प्रारम्भ हुआ है। देखो पर-मात्मा ही इस विजयवाहिनी के प्रेरक हैं। हे फ्लोरेंस! नाचने गाने का समय अब बीत चुका, अब समय आया है आंसू बहाने का। हे फ्लोरेंस! हे रोम! हे इटली! अपने पापों के लिये आंसू बहाओ। उन्हीं के कारण तुम पर इस दण्ड का प्रहार हुआ है। इसलिये पश्चाताप करो, दान दो, ईश्वर की स्तुति करो, आपस मे ऐक्य स्थापित करो। मेरे देशवासियो, मैं बहुत दिनों से तुम्हारे प्रति पिता के समान वर्तता रहा हूँ। मैं सदैव तुम्हें धर्म और पुण्याचरण के तत्त्वों की शिक्षा देने के लिये परिश्रम करता रहा हूँ, किन्तु इसका बदला तुमने क्या दिया? सिवाय क्लेश, तिरस्कार और अपमान के कुछ भी नहीं। कम से कम अब तो अपने पुण्याचरण द्वारा मुझे आश्वासन दो। मेरे भाइयो,

मेरी सदैव यही इच्छा रही है कि तुम्हारा उद्धार देखूँ तुम्हें एकता के सूत्र में ग्रथित पाऊँ। पश्चात्ताप करो क्योंकि स्वर्ग का राज्य सन्निकट है। परंतु यह तो मैंने तुम से कितनी ही बार कहा है। हे फ्लोरेंस, कितनी बार मैंने तुम्हारे लिये आंसू बहाये हैं। हे प्रभु, मैं तुम्हारी ओर सतृष्ण नेत्रों से देख रहा हूँ, तुम्हीं ने प्रेम के कारण हमारे पापों के लिये अपने जीवन का बलिदान दिया था। हे प्रभु, इन फ्लोरेंस वासियों को क्षमा करिये, ये आपकी शरण आना चाहते हैं।"

उसकी वाणी में जादू था। वह चाहता तो परिस्थिति से लाभ उठा कर फ्लोरेन्स का शासक बन जाता। वह चाहता तो अपने शत्रुओं को जड़ से उखाड़ देता। किन्तु त्यागी सन्यासी ने ऐसा नहीं किया। उसने जनता की प्रवृतियों को उच्च आध्यात्मिक आदर्श की प्राप्ति के लिये उत्साहित किया। फ्लोरेन्स की दशा संकटापन्न अवश्य है किन्तु उससे बचने का उपाय प्रतिशोध, हत्या व युद्ध नहीं,वरन् आत्म शुद्धि और आत्म-सुधार ही है। लोग मन्त्रमुग्ध हो गये। उनकी उत्तेजना शान्त हो गई। शत्रुओं, अत्याचारियों तथा विश्वासघातकों के लिये भी उनके हृदय में हिंसा के भाव नहीं रहे। सावोनारोला के आदेश को शिरोधार्य कर वे आशा और गम्भीरता के साथ २ अपने घरों को लौट गये। सफल, किन्तु अहिंसात्मक, क्रान्ति का सूत्रपात हुआ। यह फ्लोरेन्स के इतिहास में एक अपूर्व बात थी। इसका कारण था सावोनारोला का प्रभाव और उसकी उच्च प्रेरणा।

फ्लोरेन्स के मन्त्रिमण्डल सिन्योरी की बैठक हुई। उन्होंने परामर्श के लिये ७० नागरिकों की सभा को बुलाया। यहां सावोनारोला जनसाधारण की विप्लवकारिणी प्रवृत्तियों को वश में किये था, वहाँ शांति और स्थिरता के साथ प्रधान नागरिकगण कर्त्तव्य-पथ निश्चित कर रहे थे। लोगों के हृदय में स्वाधीनता के भाव जागृत हो ही रहे थे। पाइरो की कायरता और विश्वासघात ने उन्हें और भी सबल बना दिया था। अतएव सब लोगों ने एक स्वर से यही निर्णय किया कि अब उसे नगर में स्थान नहीं दिया जाय। पायरो कोपिनी एक अनुभवी राजनीतिज्ञ तथा शूरवीर था। उसने साफ २ कह दिया—"पाइरो डी मेडिसी अब राज्य करने योग्य नहीं रहा। अब इस प्रजातन्त्र को स्वयं अपने शासन का प्रबन्ध करना चाहिए। वह समय आ गया है कि बच्चों के शासन से हम मुक्त हों," फ्लोरेन्स में प्रजातन्त्र की घोषणा की गई।

चार्ल्स के साथ क्या नीति बर्ती जाय! फ्लोरेंस की जनता तो सदैव फरासीसियों से मित्रता ही करती रही है। अतएव उचित है कि चार्ल्स के पास प्रतिनिधि भेजे जायँ जोकि उससे निवेदन करें कि पाइरो ही सब झगड़ों की जड़ है, नगर तो चार्ल्स की तरफ है। किंतु यदि चार्ल्स के इरादे बुरे हों? यदि वह प्रतिनिधियों की बातों को न सुने? यदि वह फ्लोरेंस का सर्वनाश करने पर ही तुला हो? इसके लिये यह तय किया गया कि सन्धि व मित्रता का प्रस्ताव लेकर दूत तो जावें ही, पर नगर

भी अपनी रक्षा के लिये पूरी तरह तैयार रहे। अतएव नगर में राज्य भर के सैनिक तथा सेनापति बुलाये गये और युद्ध सामग्री इकट्ठी की गई। कोपिनो ने अपने भाषण के अन्त में कहा—"सब से बड़ी बात तो यह है कि हम धर्मपिता साबोनारोला को प्रतिनिधि बना कर भेजना कदापि न भूलें क्योंकि जनता की उस पर पूर्ण श्रद्धा है।" साबोनारोला के अतिरिक्त कोपिनी भी प्रतिनिधि चुना गया।

साबोनारोला ने अन्य प्रतिनिधियों को आगे जाने के लिये कहा। वह स्वयं दो भिक्षुओं के साथ चार्ल्स से मिलने के लिये पैदल ही रवाना हुआ। किन्तु प्रस्थान के पूर्व उसने जनसाधारण को एक उपदेश दिया, और कहा—"परमात्मा ने तुम्हारी प्रार्थना सुनी है और शान्तिमय उपायों से एक महान् क्रान्ति का आविर्भाव हुआ है। वे ही तुम्हारे नगर की रक्षा के लिये आये जब कि और सब ने उसे छोड़ दिया। ठहरो और तुम देखोगे कि दूसरे स्थानों पर कैसी २ विपत्तियां आती हैं। अतएव, हे फ्लोरेंस के रहने वालो, सत्कार्यों में निश्चल रहो, शान्ति-पथ में दृढ़ रहो। यदि तुम चाहते हो कि परमात्मा अविचल रूप से तुम पर दया दर्शाते रहें तो तुम्हें भी अपने भाइयों, मित्रों और शत्रुओं के प्रति दयाभाव रखना चाहिये। अन्यथा जो दण्ड बाक़ी इटली को मिलने वाला है, वह तुम्हें भी मिलेगा।" इसके बाद उसने सन्तमार्क के भिक्षुओं को इकट्ठा किया और कहा कि तुम लोग इस बात का गर्व मत करते फिरना कि तुम्हारा मठाधीश फ्रा-

सीसी राजा के पास राजदूत बनाकर भेजा गया है। तुम लोग मठ के भीतर ही रहना और ईश्वर से प्रार्थना करते रहना जिस से कि मुझे सहायता मिले। तदनंतर उसने पीसा नगर के लिये प्रस्थान किया। चार्ल्स तथा फ्लोरेंस के अन्य राजदूत वहाँ पहिले ही पहुँच चुके थे।

सावोनारोला के पहुँचने से पहिले ही कोपिनी आदि राज॰ दूत चार्ल्स से मिल चुके थे। जब पाइरो ने देखा कि ये राजदूत स्वतंत्र फ्लोरेंस द्वारा नियुक्त किये गये हैं और उसके विरोधी हैं तब वह समझ गया कि उसके चले आने पर फ्लोरेंस में महान् परिवर्तन हुआ है। उसने चार्ल्स से मदद के लिये प्रार्थना की और अपने सैनिकों को इकट्ठा कर फ्लोरेंस को लौट आया। उसका इरादा था कि राजप्रासाद में जनता की एक सभा कर अपनी सत्ता को फिर से हस्तगत करने की चेष्टा करे। किन्तु नगर में किसी ने उसका स्वागत ही नहीं किया। जनता उसे देखकर कुपित होगई। पाइरो और उसके साथियों को जनसमूह ने घेर लिया और उसे चिढ़ाने व गालियाँ देने लगे। पाइरो ने चाहा कि उनपर आक्रमण करे किन्तु उसके साहस ने जबाब दे दिया। प्रधान जेलर ने उसकी सहायता करने का प्रयत्न किया किन्तु निःशस्त्र जनता उसके ऊपर टूट पड़ी और उसके हथियार छीन लिये। लोग उसे पकड़ कर राजकीय कारागार में लेगये और सब क़ैदियों को छोड़ने के लिये उसे बाध्य किया। उन्हें वहाँ हथियार भी मिले। इसी समय फ्रेंसिसको वलोरी जो कि चार्ल्स

के पास भेजे गये राजदूतों में एक था, लौट कर आया और चार्ल्स तथा फ्लोरेंस के राजदूतों से जो भेंट हुई थी उसका हाल जनता को सुनाने लगा। उसने कहा कि पाइरो ने चार्ल्स की ऐसी शर्तें मान ली हैं जिनसे कि फ्लोरेंस की बड़ी हानि और बेइज्जती होगी। इसी से चार्ल्स ने प्रतिनिधियों का अच्छा स्वागत नहीं किया और उनकी बातें भी नहीं मानीं। वलोरी के भाषण से जनता और भी क्षुब्ध होगयी और उसे नेता बनाकर मेडिसियों के प्रासाद पर आक्रमण करने के लिये चल पड़ी। यह देखकर पाइरो ने पीछे पैर हटाये। सिन्योरी ने (फ्लोरेंस का मन्त्रि-मण्डल) एक आज्ञा निकाल कर उसे राजद्रोही घोषित कर दिया। पाइरो ने सुवर्ण मुद्रायें लुटायीं और लोगों को अपनी तरफ करने की चेष्टा की। किन्तु नीच जाति के लोगों तक ने भी उसका साथ नहीं दिया। निराश हो उसने फ्लोरेंस छोड़ दिया। धीरे २ उसके साथी भी उससे अलग होगये। टस्कनी की सीमा को पार कर वह बोलोना पहुँचा। किन्तु वहाँ के शासक ने उसकी इज्जत नहीं की और घमण्ड से बोला—"चाहे मेरे टुकड़े होजाते परन्तु मैं अपने राज्य को इस तरह छोड़कर कभी न भागता।" खिन्न थकित पाइरो वहाँ से वेनिस पहुँचा। वहाँ के लोगोंने उसे सम्मान सहित आश्रय दिया। अपने राज्य से निर्वासित पाइरो को वेनिस में कुछ विश्राम मिला।

चार्ल्स के पास फ्लोरेंस के प्रतिनिधियों को कोई सफलता नहीं मिली। उन्होंने निवेदन किया कि फ्लोरेंसवासी आपके मित्र

हैं, वे आपके स्वागत की तैयारियाँ कर रहे हैं किन्तु वे केवल इतना ही जानना चाहते हैं कि आपकी शर्तें क्या हैं और इस आश्वासन के लिये उत्कंठित हैं कि आप भी उनके साथ मित्रवत बर्ताव करेंगे। किन्तु चार्ल्स ने कोई सन्तोषप्रद उत्तर नहीं दिया। उसने यही कहा कि "उस महान् नगर में पहुँचने हो हम सब ठीक कर देंगे।" इसका अर्थ कुछ भी नहीं था।

यहां सावोनारोला की अनुपस्थिति में फ्लोरेन्स के जनसमूह को काबू में रखना कठिन हो गया। प्रतिनिधियों की असफलता ने उन्हें और भी उत्तेजित कर दिया। वे मेडिसियोंके साथियों तथा कर्मचारियों के घरों पर हमला करने लगे। कई मकान लूट लिये गये, कुछ लोग घायल भी हुए परंतु सावोनारोला के अनुयायियों तथा सिन्योरी के कारण अधिक उत्पात नहीं हो पाया। सावोनारोला के लौटने की प्रतीक्षा भी प्रतिक्षण की जाती थी।

विफल और निराश होकर अन्य प्रतिनिधि तो लौट आये परन्तु सावोनारोला वहीं रह गया। वह सीधा चार्ल्स के पास पहुँचा। चार्ल्स ने प्रतिनिधियों के साथ बड़ा शुष्क बर्ताव किया था। किन्तु सावोनारोला का उसने संमान के साथ स्वागत किया। सावोनारोला ने उसके सामने आते ही उच्च एवं आदेशात्मक स्वर में कहना प्रारंभ किया—"हे ईसाई-श्रेष्ठ नरपति, तुम परमात्मा के हाथ के हथियार हो। उन्होंने तुम्हें इटली के दुःख दूर करने के लिये भेजा है। इसकी भविष्यद्वाणी मैं बहुत वर्षों से कर रहा हूँ। उन्होंने तुम्हें चर्च के सुधारके लिये भेजा है जो कि आज

धूलि में लोट रहा है। परन्तु यदि तुमने न्याय और दया नहीं की, यदि तुमने फ्लोरेंस की, उसकी स्त्रियों की, उसके नागरिकों की अथवा उसकी स्वतंत्रता की इज्जत नहीं की, ईश्वर ने जिस कार्य के लिये तुम्हें भेजा है यदि तुम उसे भूल गये, तो वह और किसी को निर्वाचित करेंगे, तुम पर उनका वार होगा और तुम्हें भीषण दण्ड मिलेगा। यह सब मैं प्रभु के नाम से तुम्हारे सामने कह रहा हूँ।"

चार्ल्स तथा उसके सभासदों व सेना नायकों पर इन शब्दों का गहरा असर पड़ा। जिस प्रकार उन्हें अनायास विजय मिलती जाती थी उससे उनके हृदय में आश्चर्य होता था और वे सोचते थे कि कोई अदृश्य शक्ति उनकी सहायता कर रही है। इससे उनके अन्तःकरण में सावोनारोला के प्रति बड़ी श्रद्धा उत्पन्न हुई। चार्ल्स पर तो उसका आतंक सा छा गया। यद्यपि उसने सावोनारोला को कोई निश्चित वचन नहीं दिये और न कोई शर्त ही तय की, तथापि सावोनारोला आशा का संवाद लेकर फ्लोरेंस को लौटा। नैराश्य व आशंका में पड़े हुए फ्लोरेंस वासियों को उसके समाचार से तनिक सान्त्वना मिली। उसकी उपस्थिति मात्र से उन्हें बल और आश्वासन मिलता था। फ्लोरेंस का राजनीतिक आकाश युद्ध, एवं विप्लव के बादलों से घिरा हुआ था। इस महापुरुष ने वहाँ पहुँचते ही मैत्री, दया तथा भ्रातृभाव के उच्च आदर्शों की ज्योति को प्रकाशित किया। नगर के इतिहास में क्रान्तियां तो अनेक हुई थीं किन्तु उनके साथ भीषण रक्तपात भी हुए थे। सावोनारोला चहता था कि क्रान्ति

की पुनरावृत्ति हो, रक्तपात की नहीं। इस महात्मा ने समझ लिया था कि आध्यात्मिक तत्व जिस क्रान्ति के आधार-स्तंभ होंगे वह अवश्य ही रक्तपात से हीन होगी।

पीसा नगर फ्लोरेंस राज्य के आधीन था। वहां के लोग फ्लोरेंस की दासता से मुक्त होना चाहते थे। परतंत्रता के कारण उनके व्यापार तथा उद्योग-धंधों को भारी क्षति पहुँची थी। उनकी स्वायत्त संस्थायें नष्ट हो गई थीं और कितने ही नागरिक दूसरे नगरों में जा बसे थे। अब फ्लोरेंस पर आपत्ति आई देख उन्हें भी सिर उठाने का मौक़ा मिला। लुडोविको ने उन्हें विद्रोह के लिये उत्साहित किया और चार्ल्स के अफसरों ने भी गुप्तरीति से सहायता की आशा दिलवाई। फलतः पीसावासियों ने फ्लोरेंस के विरुद्ध बग़ावत का झण्डा उठाया। चार्ल्स ने जब पीसा में प्रवेश किया तो वहाँ के लोगों ने उसका स्वागत किया और उसे अपना उद्धारक घोषित किया। उन्होंने स्वतंत्रता का ऐलान कर दिया, निर्वासित नागरिकों को वापिस बुला लिया, फ्लोरेंस सरकार के कर्मचारियों को अपने नगर से मार भगाया, उनके मकान लूट लिये और युद्ध की तैयारियां करने लगे। चार्ल्स यह निश्चित नहीं कर सका कि उन्हें फ्लोरेंस के विरुद्ध सहायता दे अथवा नहीं। इसलिये पीसा के क़िले में थोड़ी सी फरासीसी फौज को छोड़ कर उसने फ्लोरेंस के लिये कूच किया। पीसा फ्लोरेस राज्य का प्रधान बन्दरगाह था। यदि वह हाथ से निकल जाय तो उनका व्यापार नष्ट हो जायगा।

चार्ल्स के पास शर्तें तय करने के लिये एक बार फिर फ्लोरेंस की ओर से दूत भेजे गये। किन्तु उसने फिर वही उत्तर दिया—नगर में पहुँच कर हम सब ठीक कर देंगे। इसलिये फ्लोरेंस-वासियों ने बड़ी सावधानी और बुद्धिमता से काम लिया। चार्ल्स के स्वागतोत्सव के लिये तैयारियां तो कीं परन्तु नगर की रक्षा के लिये भी कोई बात उठा नहीं रक्खी। जितने सैनिक हो सके एकत्रित किये गये। उन्हें महलों, मठों तथा अन्य स्थानों में छिपा दिया गया। उनसे कह दिया गया कि संकेत पाते ही युद्ध के लिये निकल पड़ना। नगरवासियों से कह दिया गया कि लड़ने के लिये तैयार रहो। सड़कों के समीप मकानों में अस्त्र-शस्त्र, रसद तथा मोरचा बन्दी का सामान इकट्ठा किया गया। सब लोगों को यह चेतावनी दे दी गई कि ज्योंही सिन्योरी के भवन में खतरे की घन्टी बजे त्योंही नगर की रक्षा के लिये तैयार होकर बाहर निकल आवें। सावोनारोला की प्रेरणा से नगरवासी विकट परिस्थिति में धैर्य, आशा और एकता से काम करते थे। नगर में ऊपर से शान्ति थी, स्वागत की तैयारियां हो रही थीं, भीतर से लोग फरासीसी सेना से मोरचा लेने के लिये भी कटिबद्ध थे।

१७ नवम्बर १४९४ को चार्ल्स ने अपनी सेना के साथ फ्लोरेंस में पदार्पण किया। रास्तों पर ग़ालीचे बिछाये गये थे। चार्ल्स के ठहरने का प्रबन्ध मेडिसी-प्रासाद में किया गया था। उसके बड़े २ अफसर प्रधान-नागरिकों के अतिथि बने। सिन्योरी ने आगे बढ़कर राजा का स्वागत किया और उसे मान-पत्र समर्पित

किया। सारे नगर में रोशनी की गई। बड़े २ भोज हुए और उत्सव मनाये गये। दो दिन इस प्रकार बीते। फिर सन्धि की चर्चा छिड़ी। सिन्योरी ने जो प्रतिनिधि भेजे उनमें कोपिनी और वलोरी भी थे। कोपिनी युद्ध, विग्रह, सन्धि-चर्चा, वाग्मिता में सिद्धहस्त था। इनकी शिक्षा उसे लारेन्जो के समय में मिली थी किन्तु पाइरो से खिन्न होकर वह जनता के अधिकारों का हामी बन गया था। कोपिनी में वीरता, दूरदर्शिता और बुद्धिमता थी, किस समय किस नीति व युक्ति से काम लेना चाहिये, यह वह अच्छी तरह से जानता था। उसकी जीवट अपूर्व थी। जो प्रतिनिधि फ्लोरेंस प्रजातन्त्र की ओर से चार्ल्स के पास भेजे गये थे उनका वह एक प्रकार से नेता था।

परन्तु प्रतिनिधियों के सामने बड़ा कठिन कार्य था। पाइरो मेडिसी की माता और पत्नी चार्ल्स से मिलीं और उन्होंने कहा कि यदि पाइरो को राज्याधिकार फिर से दिलवा दिये जायं तो वह फरासीसियों के कहने के अनुसार राजकार्य करेगा। इसका अर्थ यही था कि अब वह फरासीसियों की आधीनता तक स्वीकार करने को तैयार था। इसलिये चार्ल्स की सहानुभूति मेडिसी वंश की ओर होगई। उसने प्रतिनिधियों से बड़े घमण्ड से बातें कीं और नयी २ व कठिन २ मांगें उनके सामने रखने लगा। उसने कहा कि मैंने विजेता की हैसियत से नगर में प्रवेश किया है। बातें दिन २ बिगड़ने लगीं। सिन्योरी ने लोगों को सावधान कर दिया कि किसी भी क्षण फरासीसी-सेना से युद्ध प्रारम्भ

हो सकता है । फरासीसी सैनिक तथा फ्लोरेंसवासी एक दूसरे को वैर व घृणा की दृष्टि से देखने लगे। कभी २ गाली-गलौज भी हो जाती। चार्ल्स के उद्धत व्यवहार का कारण यही था कि उसे मेडिसियों से अच्छी शर्तें मिल रही थीं और वह अपने को सबल तथा फ्लोरेंसवासियों को निर्बल समझता था। किन्तु उसे शीघ्र ही वस्तु-स्थित जानने का मौक़ा मिल गया। फरासीसी सैनिकों का एक छोटा सा दल इटली के किसी अन्य प्रान्त में पकड़े गये लड़ाई के कुछ कैदियों को रस्सी से बांधे हुए फ्लोरेंस के मार्गों में घुमा रहा था। वे कहते थे कि तुम लोग भिक्षा मांग कर अपने छुटकारे के लिये काफी रक़म इकट्ठी करलो नहीं तो हम तुम्हें मार डालेंगे। यह देखकर फ्लोरेंसवासियों को बड़ा क्रोध हुआ। कुछ लोगों ने कैदियों के बन्धन काट कर उन्हें भगा दिया। इस पर फरासीसी सैनिक बहुत बिगड़े और मारपीट शुरू हो गई। फरासीसी शिविर के सैनिकों ने समझा कि राजा की जान खतरे में है इसलिये वे मेडिसी-प्रासाद की ओर हथियार लेकर दौड़े। यहां नगर भर में हल्ला मच गया। फ्लोरेंस के सैनिक भी निकल पड़े। फ़रासीसी सैनिकों के रास्ते रोक लिये गये। वहां मोर्चा-बन्दियां खड़ी होगईं। खिड़कियों पर से पत्थरों की वर्षा होने लगी। घरों में से सहस्रों सैनिक निकल पड़े। एक घंटे तक दंगा होता रहा। फिर चार्ल्स तथा सिन्योरी ने अपने अफसरों को दोनों दलों को समझाने व शान्ति स्थापित करने के लिये भेजा। दंगा बन्द होगया परन्तु उद्धत विदेशियों को

यह पता लग गया कि फ्लोरेंस से लोहा लेना कितना कठिन काम होगा।

उपरोक्त घटना से चार्ल्स का दिमाग़ कुछ ठिकाने आया। सिन्योरी ने भी अवसर से लाभ उठाकर अपनी शर्तें उसके सामने पेश कीं। शर्तें ये थीं—१ चार्ल्स को फ्लोरेंस की स्वतंत्रता के रक्षक की उपाधि दी जाय, २—दो साल तक फ्लोरेंस राज्य के क़िले उसके हाथ में रहें किन्तु यदि युद्ध इससे पहिले समाप्त हो जाय तो वह उसी समय उन्हें वापिस करदे। ३—फ्लोरेंसवासी चार्ल्स को अच्छी रक़म दें। प्रश्न यह उठा कि कितनी रक़म दी जाय। चार्ल्स ने इतनी अधिक रक़म मांगी कि सिन्योरी उसे स्वीकार नहीं कर सकी। फिर वाद-विवाद प्रारम्भ हुआ। चार्ल्स ने अपनी हठ नहीं छोड़ी और क्रोध में आकर अपने मन्त्री से कहा कि प्रतिनिधियों को मेरी अन्तिम शर्तें सुनादो। किन्तु प्रतिनिधियों ने उन्हें अस्वीकार किया। इस पर चार्ल्स ने धमकी देते हुए चिल्लाकर कहा—"तब हम रण-भेरी बजा देंगे।" कोपिनी कब दबने वाला था। वह गुस्से से लाल हो गया। उसने मन्त्री के हाथ से सन्धि-पत्र छीन लिया और चार्ल्स के मुँह के पास ले जाकर उसे फाड़ डाला और कहा—"हम भी अपनी ख़तरे की घण्टियां बजा देंगे।" यह युक्ति काम कर गयी। चार्ल्स ने शर्तें मान लीं। कुछ ही घण्टों में सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर भी हो गये। चार्ल्स तथा फ्लोरेंस सरकार में मित्रता स्थापित हो गई। फ्लोरेंस सरकार ने उसे १२०,००० मुद्रायें देने का वचन दिया। चार्ल्स

ने प्रतिज्ञा की कि वह पाइरो की मदद नहीं करेगा परन्तु पाइरो के वध के लिये सिन्योरी ने जो आज्ञा निकाली थी और पारितोषिक घोषित किया था उसे रद्द कर दिया। यह तय हुआ कि पाइरो निर्वासित रहे और फ्लोरेंस राज्य की सीमा से २०० मील के भीतर नहीं आवे। पीसा के सम्बन्ध में यह निर्णय हुआ कि पीसावासी फ्लोरेंस की आधीनता स्वीकार करलें और उन्हें पूर्व विद्रोह के लिये क्षमा प्रदान की जाय।

सन्धि तो हो गई किन्तु चार्ल्स फ्लोरेंस से टलता ही नहीं था। उसके अफसर प्रधान नागरिकों के यहाँ टिके थे। उसकी सेना नगरमें यत्र तत्र फैली हुई थी। मकानों में फ्लोरेंस के सिपाही छिपे थे। सब कारोबार बन्द था। लूट के भय से दुकानें नहीं खुलती थीं। ज़रासी चिनगारी दोनों दलों के सैनिकों में कलह की आग को भड़का सकती थी। इसके सिवाय फरासीसियों को खिलाने पिलाने व उनका अतिथि-सत्कार करने में फ्लोरेंस के लोगों का बहुत खर्च होता था। उन्हें यह चिन्ता हो रही थी कि अब ये लोग क्यों ठहरे हुए हैं। फ्लोरेंस के प्रतिनिधियों ने विविध प्रकार से इन भार स्वरूप अतिथियों को विदा करने की चेष्टा की, किन्तु वे विफल हुए। जनता पुनः उत्तेजित होने लगी।

जब कोई उपाय नहीं सूझ पड़ा तो लोगों ने सावोनारोला की शरण ली। जब तक संधि-चर्चा होती रही वह लोगों को उपदेश देता रहा कि "वैमनस्य व स्वार्थ-लालसा को दूर करो। नगर की भलाई के विचार को सामने रखकर, ऐक्य एवं मैत्री

की इच्छा से प्रेरित हो, धार्मिक भावना के साथ राजसभा में उप-स्थित हुआ करे।" जब नागरिकों ने उससे आग्रह किया कि चार्ल्स को टालने का प्रयत्न कीजिये तो उसने सहर्ष इस कार्य को अपने हाथ में लेलिया। वह सीधा चार्ल्स के पास पहुँचा। चार्ल्स ने उसका सम्मानपूर्वक स्वागत किया। सावोनारोला ने बाह्य शिष्टाचार में समय नष्ट न कर कहा "ईसाई-श्रेष्ठ नरपति, तुम्हारे यहां ठहरने से हमारे नगर को तथा स्वयं आप के कार्य को बड़ी हानि होरही है। जो कार्य ईश्वर ने तुम्हें सौंपा है उसे भूलकर तुम समय नष्ट कर रहे हो। इससे तुम्हारे आत्मिक कल्याण तथा सांसारिक यश को भारी धक्का पहुँच रहा है। अब ईश्वर के सेवक के वचनों को मानो। देर मत करो, अपना रास्ता लो। इस नगर पर विपत्ति लाने की इच्छा को छोड़ दो नहीं तो परमात्मा का प्रकोप तुम्हारे विरुद्ध भड़क उठेगा।" यह प्रबोधन काम कर गया। ता० २८ को चार्ल्स ने फ्लोरेंस से प्रस्थान कर दिया। मेडिसी प्रासाद में कला कौशल की रचनाओं का उत्तम संग्रह था। उसे फरासीसी अपने साथ लेते गये। तथापि फ्लोरेंस के लोग सस्ते ही निबटे। आपत्ति टल गयी। नगर में निर्भय व स्वच्छंद जीवन प्रारंभ हुआ। जो थोड़ी बहुत क्षति हुई उसे लोग हर्षोल्लास में भूल गये।

चार्ल्स फ्लोरेंस में कुल ११ दिन रहा। जब फरासीसी फौज चली गयी और फ्लोरेंसवासियों की छाती पर से भय, चिन्ता, आतंक और उत्तेजना का पहाड़ टल गया, जब नगर में शान्ति

छागयी; तब उन्होंने आँख खोल कर देखा और समझा कि उनके इतिहास में एक महान सफल क्रान्ति होचुकी है। मेडिसी वंश देश से भाग चुका था। जिस सत्ता को उन्हों ने इतनी बुद्धि-मत्ता व कौशल से हस्तगत किया था वह क्षण भर में उनके हाथ से निकल गई थी। साठ वर्षों के अनंतर एकबार फिर फ्लोरेंस स्वतंत्र था। और सब से बड़े आश्चर्य की बात तो यह थी कि इसके लिये न उनको रक्तपात करना पड़ा था, न गृह-युद्ध, न विरोधियों के वध और लूटमार। उन्होंने सन्यासी के उपदेश का पालन किया था। उसने कहा था कि ईश्वरीय प्रकोप का प्रहार होगा—चार्ल्स का आक्रमण हुआ। उसने उपदेश दिया था कि अपने पापों का प्रायश्चित करो, एकता के सूत्र में संबद्ध रहो, स्वतन्त्रता के शांत, साहसी एवं निःस्वार्थी उपासक बनो, फ्लोरेंस की रक्षा होगी, उसे मुक्ति मिलेगी; लोगों ने उसके उपदेश को माना, फ्लोरेंस की रक्षा हुई, उसे स्वतन्त्रता मिली। अतएव सबने एक स्वर से कहा कि सावोनारोला ही हमारा उद्धारक है। वह जनसाधारण का हृदय-सम्राट् बन गया। यह राजनीतिक विजय, नैतिक व आध्यात्मिक शक्तियों की विजय थी।

---

(९)

नव-शासन विधान

फ्लोरेंस स्वतन्त्र तो होचुका था परन्तु उसे अराजकता से बचाने के लिये शासन का नवीन संगठन भी अत्यन्त आवश्यक था। नवजात प्रजातन्त्र के शत्रु भी कम नहीं थे। पीसा का विद्रोह जारी था और राज्य के अन्य नगर भी उसके उदाहरण का अनुसरण कर रहे थे। फ्लोरेंस के भीतर मेडिसियों के अनुयायी थे और अराजकता में लाभ उठाकर वे मेडिसियों की सत्ता को फिर से स्थापित करना चाहते थे। प्रजातन्त्र को भीतरी व बाहरी सभी आपत्तियों से बचाने के लिये यह बहुत जरूरी था कि शीघ्र ही एक ऐसे शासन-विधान का संगठन हो जिससे कि स्वतन्त्रता का आधार दृढ़ हो और शत्रुओं से राज्य की रक्षा की जासके।

अतएव फरासीसियों के चले जाने के थोड़े दिन बाद ही नागरिकों की एक सभा बुलाई गई। प्राचीन प्रथा के अनुसार नागरिक १६ विभागों में बँटे हुए थे। वे अपने २ नेताओं के साथ राज भवन के विस्तृत चौक में इकट्ठे हुए। सिन्योरी ने उनके सामने प्रस्ताव रखा कि आप लोग २० सदस्यों को अपने प्रतिनिधि चुनें और उन्हें साल भर के लिये मन्त्रि-मण्डल तथा अन्यान्य अधिकारियों को चुनने का अधिकार दें। सभा ने इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार किया और २० प्रतिनिधियों की समिति को चुना।

प्राचीन प्रजातन्त्र में जनसाधारण की दो सभायें थीं। इनका काम था क़ानून बनाना और कार्यकारिणी समितियों को चुनना। शासन की प्रधान समिति सिन्योरी कहलाती थी। इसमें आठ सदस्य तथा एक न्याय-प्रधान होता था। इसका चुनाव दो महीने में होता था। युद्ध-समिति १० सभ्यों की होती थी, इसका चुनाव छ महीने में होता था। नगर की रक्षा के लिये ८ सदस्यों की एक समिति थी। साधारणतः यह राजनीतिक तथा फ़ौजदारी मामलों का विचार और निर्णय करती थीं यद्यपि कभी २ महत्वपूर्ण राजनीतिक मामलों का न्याय सिन्योरी करती थी। आठ सदस्यों की समिति को हम न्याय-समिति भी कह सकते हैं। इसका चुनाव चार महीने में होता था। इन सब अधिकारियों का चुनाव जन-सभा के हाथ में था। कभी २ सिन्योरी महत्वपूर्ण विषयों पर विचार करने के लिये सभी अधिकारियों, विभाग-पतियों तथा प्रमुख नागरिकों की सभा को बुलाती। इसे प्राटिका-सभा कहते थे। जब मेडिसी वंश को सत्ता बढ़ी तब जन-साधारण की सभाओं से सभी अधिकार छीन लिये गये तथापि नाम मात्र को उनका अस्तित्व बना रहा। लारेन्जो ने ७० सभ्यों की एक नयी सभा की स्थापना की और जन-सभाओं के सभी अधिकार उसे दे दिये। इस सभा में उसने अपने साथियों को भर दिया अतएव सारी सत्ता उसी के हाथ में आ गयी।

अब सत्तर सभ्यों की सभा, जो कि मेडिसी सत्ता की आधार शिला थी, तोड़ दी गई। उसके सारे अधिकार बीस सदस्यों की

प्रतिनिधि-समिति को दे दिये गये। तात्पर्य यह हुआ कि एक साल के लिये यही बीस सदस्य फ्लोरेंस के सर्वेसर्वा बनाये गये।

नवीन शासन-विधान में कौन २ सी सभायें और समितियें रहें, उनके क्या २ अधिकार हों, उनके सदस्य किस प्रकार निर्वाचित किये जायं, इस पर विविध समितियों में वाद-विवाद प्रारंभ हुआ। राजनीतिक सिद्धान्तों तथा व्यवहारिक बातों की चर्चा छिड़ी। इटली के राजनीति विशारदों का यह मत था कि सर्वोत्तम शासन-विधान वही है जहां पर निरंकुशता असम्भव हो और सभी लोगों को राजकार्य करने का अवसर मिले। किन्तु व्यवहारिक दृष्टिकोण से यह स्पष्ट था कि राजकार्य थोड़े लोगों के हाथ में ही सुचारु रूप से चलता है क्योंकि उसके लिये अनुभव, कार्यकुशलता तथा उत्तरदायित्व की आवश्यकता होती है और इन गुणों की आशा प्रत्येक नागरिक से नहीं की जा सकती। अतएव शासन-विधान का ऐसा रूप होना चाहिए कि जनसाधारण के स्वात्वाधिकार तथा प्रभुत्व भी सुरक्षित रहें और साथ ही साथ शासन-कार्य भी अच्छी तरह चले। अर्थात् उसमें सार्वजनिक स्वाधीनता तथा शासन-सुव्यवस्था दोनों की आवश्यकताओं का सम्मिलन होना चाहिये।

इस दृष्टि से फ्लोरेंस के राजनीति-पण्डितों को वेनिस का शासन-विधान अनुकरणीय जंचा। वेनिस ही इटली का एक ऐसा राज्य था जहाँ पर कि कभी एकाधिपत्य की दाल नहीं गली थी। साथ ही साथ उसकी उन्नति व कीर्ति की गति भी अबाध

रूप से जारी थी। अतएव सोडेरिनी ने, जो कि वेनिस में फ्लोरेंस का राजदूत रह चुका था, प्रस्ताव किया कि जनसाधारण की दोनों सभायें तोड़ दी जावें और उनके स्थान पर एक महासभा की स्थापना हो जिसमें १५०० के लगभग सदस्य रहें। इस महासभा का काम शासन-समितियों को चुनना, कर लगाने की अनुमति देना तथा क़ानून बनाना हो। इसके सिवाय एक और सभा क़ायम की जाय जिसमें ८० सभ्य हों। ये अनुभवी व गण्य मान्य नागरिक हों। इनका काम महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार करना ही हो क्योंकि महासभा के सदस्यों में इतनी योग्यता व अनुभव की आशा नहीं की जा सकती कि वे इन बातों का समुचित निर्णय कर सकें। सिन्योरी, युद्ध-समिति, रक्षा-समिति (न्याय-समिति) आदि जैसी की तैसी रहें परन्तु बीस सदस्यों की नयी समिति तोड़ दी जाय। वेस्पुकी ने महासभा की स्थापना का घोर विरोध किया। उसने कहा कि जनता के हाथ में इतनी सत्ता दे देना उचित नहीं होगा क्योंकि न उनमें अनुभव है, न गम्भीरता से विचार करने की योग्यता; वे जल्दी से उत्तेजित हो जाते हैं और अविचार कर बैठते हैं। उसने यह भी बतलाया कि वेनिस में जो इस प्रकार की सभा है उसके सदस्य सभ्य सुशिक्षित नागरिक ही हैं, साधारण लोग नहीं। किन्तु उसे प्रत्युत्तर मिला कि यदि जनता के अधिकार सीमित किये जायं तो निरंकुश शासन की स्थापना को प्रोत्साहन मिलेगा, और जन साधारण ने ही मेडिसियों को निकाल कर स्वतन्त्रता की प्राप्ति की है अतएव

उन्हें सर्वाधिकार न देना भारी अन्याय होगा । लोकमत तथा बुद्धिमानों का मत सोडेरिनी के साथ था परन्तु शासन-समितियों के सदस्यों का झुकाव वेस्पुकी की तरफ़ था । कुछ लोग धनवानों की सत्ता क़ायम करना चाहते थे, कुछ लोग ऐसे थे जो कि परंपरागत विधान को बदलने में डरते थे यद्यपि वह निष्प्राण होचुका था । कुछ लोग स्वार्थ-लालसा तथा अधिकार-लोलुपता के वशीभूत हो परिवर्त्तन के विरोधी बन गये थे । उदाहरण के लिये बीस प्रतिनिधियों की समिति को ले लेजिये । नवीन शासन विधान की स्थापना होते ही उनकी सत्ता का अन्त होने को था । कुछ लोग गुप्त रीति से मेडिसियों के पक्षपाती थे और उनकी सत्ता को जमाने के लिये उपाय सोचते व मौक़ा ढूँढते थे । इन सब ने मिलकर सोडेरिनी के प्रस्ताव का विरोध जारी रक्खा। राजभवन मे गर्म २ बहसें होतीं । समितियों की बैठक कभी २ आधी रात तक होती रहती । यहाँ फ्लोरेंस के आधीनस्थ नगरों का विद्रोह उग्र रूप धारण कर रहा था और यह आवश्यक था कि शीघ्र ही उसके दबाने का पूरा २ प्रयत्न किया जाय । जनसाधारण भी विलम्ब के कारण थक गये थे और उद्विग्न हो रहे थे । अवसर था कार्य करने का, किन्तु राजभवन में निष्फल वाद-विवाद में समय बरबाद किया जा रहा था । यदि वेस्पुकी की बात मानली जाती तो नगर में उत्पात मच जाता। पर सोडेरिनी की तरफ समितियों का बहुमत नहीं था । दोनों पक्षों के सूक्ष्म तर्कों को समझने की योग्यता व स्थिर-चित्तता लोगों में नहीं थी । सोडेरिनी तथा

बेसुर्को किसी में भी वह उच्च प्रेरणा व सहृदयता नहीं थी जिसके कारण लोगों में उनके प्रति श्रद्धा होती निरर्थक वादविवाद होते रहे, जनता की परेशानी बढ़ती गई और परिस्थिति विषम होने लगी।

सावोनारोला की इच्छा थी कि वह राजनीतिक झगड़ों से दूर रहे। बहुत दिनों तक उपरोक्त वाद-विवाद में उसने कोई मतलब नहीं रखा। वह जनता में शान्ति बनाये रखने तथा नगर की दरिद्रता को दूर करने के प्रयास में ही लगा रहा। उसने धनिकों से कहा कि गरीबों के लिये त्याग करो, भोग-विलास छोड़ दो, सरल-जीवन को अपनाओ, बेकारों को काम दो। किन्तु जब उसने देखा कि नवीन शासन-विधान की योजना निश्चित न हो सकने के कारण जनता में घोर असंतोष एवं उत्तेजना फैल रही है तो बरबस उसे भी अपने विचारों को इस कार्य की ओर ले जाना पड़ा। वह जानता था कि शासन-योजना का निर्णय करने के लिये आवश्यकता होती है निःस्वार्थ स्वातंत्र्य-प्रेम की, उच्च प्रेरणा की तथा जनसाधारण की आकांक्षाओं के प्रति सच्ची सहानुभूति की, किन्तु उसने देखा राजनीति-विशारदों का पाण्डित्याभिमान, अपने को बुद्धिमान समझने वालों की अयोग्यता, स्वार्थ लोलुपों की कुटिलता। यह असम्भव था कि ऐसे लोग जनता की श्रद्धा के पात्र बनते। सावोनारोला को विश्वास हो गया कि जनता उसकी प्रतीक्षा कर रही है। नागरिकता के कर्तव्यों ने विरागी सन्यासी को आमन्त्रित किया। और इसे उसने स्वीकार किया।

किन भावों के साथ, किस ध्येय को सामने रखकर, सावोना-रोला इस क्षेत्र में उतरा, इसका परिचय उसके इन शब्दों से मिलता है—"मेरे देशवासियो! तुम जानते हो कि मैं सदा ही राजकार्य-सम्बन्धी बातों से दूर रहा हूँ। क्या तुम समझते हो कि मैं इस क्षेत्र में कदापि प्रवेश करता यदि मैं इसे तुम्हारी आत्मा के कल्याण के लिये परमावश्यक न समझता? × × × × यदि तुम सुशासन चाहते हो तो ईश्वर की आधीनता स्वीकार करो। मुझे तो उस राज्य से कोई सरोकार ही नहीं हो सकता जहाँ कि ईश्वर की सत्ता स्वीकार न की जावे।"

इसलिये सावोनारोला अपने उपदेशों में शासन-संबन्धी बातों की भी चर्चा करने लगा। उसने भी वेनिस के शासन-विधान की प्रशंसा की और कहा "तुम जानते हो कि जब से उसकी स्थापना हुई है तब से किसी प्रकार का वैमनस्य, भेदभाव व दलबन्दी आदि वहां पैदा नहीं हुई। अतएव हमें यह विश्वास रखना चाहिये कि उसकी स्थापना ईश्वर की इच्छा से ही हुई है।" सावोनारोला के जनसाधारण का पक्ष ग्रहण करते ही शासन-विधान के निर्णय में देर नहीं लगी। अपने उपदेशों में उसने शासन-योजना के आवश्यक अंगों की ऐसी विशद विवेचना की और उसकी बारीकियों को इतनी उत्तमता के साथ समझाया कि लोगों को आश्चर्य होने लगा कि जिस पुरुष का जीवन और शिक्षा धर्म-क्षेत्र में ही बीता हो उसे राजनीतिक बातों का ऐसा सूक्ष्म-ज्ञान कैसे हो सकता है। सिन्योरी भी उससे परामर्श लेती

और कभी २ राजभवन में व्याख्यान देने के लिये सावोनारोला निमन्त्रित किया जाता।

डुश्रामों में एक विराट् सभा की गई। सभी नागरिक और अधिकारी उसमें बुलाये गये। सावोनारोला ने लोगों को प्रोत्साहन देते हुए कहा कि इन उद्देश्यों को सामने रखकर शासन-विधान का निर्माण करो। पहिला—ईश्वर का भय और आचरण का सुधार। दूसरा—व्यक्तिगत स्वार्थ का त्याग तथा सार्वजनिक सत्ता तथा कल्याण के प्रति भक्ति। तीसरा—मेडिसियों के अनुयायियों को क्षमा तथा सब नागरिकों में परस्पर मैत्री-भाव की स्थापना। चौथा—सार्वजनिक शासन, जिसमें कि प्रत्येक योग्य नागरिक को राजकार्य में भाग मिले। इसके अतिरिक्त उसने सम्मति दी कि वेनिस की शासन-प्रणाली में फ्लोरेंसवासियों के स्वभाव तथा परिस्थिति के अनुकूल परिवर्तन कर उसे अपनाओ। नवीन शासन-विधान के कारण फ्लोरेंसवासियों पर जो नये दायित्व आये थे उनके महत्व का ध्यान दिलाते हुए सावोनारोला ने कहा—"अब तुम्हारे नगर में एक नवीन युग का उदय हुआ है। तुम्हारा भाग्य तुम्हारे ही हाथों में है। तुम्हारा भविष्य वैसा ही होगा जैसा कि तुम चाहोगे। यदि तुम चाहो तो तुम महान, उदार, सबल तथा ऐक्य-युक्त बन सकते हो अथवा यदि तुम चाहो तो निकृष्टतम दासत्व के अत्याचार को सहन करते हुए निर्बल, अधम, दुःखी तथा एकता-हीन बन सकते हो। अब तुम यह जान गये हो कि किन २ उपायों से स्वतन्त्रता का दमन किया

जाता है और किन २ साधनों से उसकी पुनः प्राप्ति व रक्षा की जाती है। तुम्हें यह भी ज्ञात है कि अधः पतन, भोग-विलास तथा आलस्य के कारण बहुधा इस नगर को किन २ आपत्तियों व कष्टों का सामना करना पड़ा है। अतएव अपनी विवेक-बुद्धि से काम लो, जिन विपत्तियों को भोग चुके हो, उनसे शिक्षा लो और अपनी स्वतन्त्रता का इस प्रकार उपयोग करो कि भविष्य में दूसरों पर अत्याचार करने के लिये थोड़े से लोग राजसत्ता को अपने हाथ में न कर सकें, वरन् उससे सभी का कल्याण हो और राजसत्ता पर उन सभी नागरिकों को अधिकार हो जो कि अपनी आयु व योग्यता के कारण उसे सम्हालने के लिये समर्थ हों।"

इन उच्च एवं पवित्र विचारों ने लोगों के हृदय को उस देश-भक्ति व स्वातन्त्र्य-प्रेमसे भर दिया जो कि ईश्वर-भक्तिका एक अंग है। सावोनारोला ने आध्यात्मिक साधनों से जनसाधारण की उत्तेजना तथा उच्छृंखल प्रवृत्तियों को संयमित कर उन्हें अपना नियति-विधायक बनने की प्रेरणा प्रदान की।

उपरोक्त भाषण के दस दिन के भीतर ही शासन-योजना का निर्माण हो गया। यहाँ सावोनारोला जनता को उपदेश देता, वहाँ सिन्योरी उसके अनुसार उपयुक्त प्रस्ताव तैयार करती और जन-सभा उन्हें स्वीकार कर क़ानून बनाती। प्रेरणा सन्यासी की थी यद्यपि सिन्योरी तथा जन-सभा की वैध स्वीकृति ले लेना भी जरूरी था।

. . . . .

यद्यपि सोडेरिनी और सावोनारोला का मत शासन-विधान के बारे में एक था किन्तु सोडेरिनी में वह प्रभाव नहीं था कि विरोध को जीत सकता। ज्योंही सावोनारोला ने उसका समर्थन किया त्योंही उसके प्रस्ताव के अनुसार फ्लोरेंस में भी वेनिस के समान जन-सभा की स्थापना की गई। इसे महासभा का नाम दिया गया। व्यवहारिक कार्यकुशलता का ध्यान रखकर यह निश्चय किया गया कि वे ही लोग इस सभा के सदस्य हो सकते हैं जिनकी कि अवस्था २९ वर्ष से अधिक हो और जो स्वयं व जिनकी तीन पीढ़ी का कोई मनुष्य राज्य की कार्यकारिणी-समिति का सदस्य रह चुका हो। फ्लोरेंस की जन-संख्या ९०,००० के लगभग थी। महासभा के सदस्य बनने की आवश्यक शर्तों को पूरा करने वाले ३२०० मनुष्य निकले। यह संख्या अत्यधिक समझी गई। इसलिये यह निश्चय किया गया कि इसके तीन भाग किये जायँ और प्रत्येक भाग के सदस्य ६,६ महीने तक महासभा में रहें। सभा की कार्यवाही के लिये उसके दो तिहाई सदस्यों की उपस्थिति अनिवार्य थी। जो नागरिक व नवयुवक उपरोक्त शर्तों के कारण महासभा के सदस्य नहीं बन सकते थे उनके उत्साह-संवर्धन के लिये इस विधान में एक विशेष धारा यह जोड़ दी गई कि हर तीसरे साल ६० साधारण नागरिक तथा २४ वर्ष से ऊपर आयु वाले २४ युवक महासभा के सदस्य निर्वाचित किये जायँ। महासभा के अधिकार व कर्तव्य ये थे—अधिकारियों व कर्मचारियों का चुनाव, मन्त्रि-मण्डल को परामर्श देने वाली ८०

सभ्यों की समिति का निर्वाचन, क़ानूनों तथा कर-सम्बन्धी प्रस्तावों पर वोट देना।

इसके अतिरिक्त एक और नयी सभा की स्थापना की गई। इसे अस्सी सदस्यों की सभा कहते थे। इस सभा का काम था सिन्योरी को परामर्श देना। इसे हम परामर्श-सभा भी कह सकते हैं। इसके सदस्य महासभा चुनती थी। यह सभा प्रस्तावों पर बहस करती और इसी वाद-विवाद को सुनकर महासभा वोट देती थी। यह सोचकर कि परामर्श-समिति में परिपक्व-बुद्धि नागरिक ही जा सकें यह नियम बनाया गया कि ४० वर्ष से कम आयु के लोग इस सभा में न जा सकें। सिन्योरी का यह कर्त्तव्य था कि वह कम से कम हफ्ते में एक बार इस सभा से सलाह ले। सैनिकों की भर्ती, राजदूतों की नियुक्ति तथा उन प्रश्नों का निर्णय जिनका कि महासभा के सामने लाना अनुचित समझा जाता, इसी सभा की सम्मति से होता था। इसका चुनाव हर ६ महीने बाद होता था।

राज्य की अन्य समितियों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। एक विचित्र नियम यह बनाया गया कि सिन्योरी (प्रधान शासन-समिति व मन्त्रि-मण्डल) प्रस्ताव उपस्थित करे, परामर्श-समिति उस पर बहस करे और महासभा उसे स्वीकृत व अस्वीकृत करे।

पुराने जमाने मे फ्लोरेन्स सरकार केवल आयात-निर्यात कर ही लगाया करती थी। यही उसकी आमदनी का ज़रिया था। युद्ध काल में जब कि धन की विशेष आवश्यकता पड़ती, तब

जनता से कर्ज ले लिया जाता। किन्तु आमदनी अधिक न होने के कारण कर्ज चुकाना बहुधा असम्भव हो जाता और इससे प्रजातन्त्र की साख को भारी धक्का पहुँचता था। इसलिये नया कर लगाना जरूरी समझा गया। सिन्योरी अपनी इच्छा के अनुसार प्रत्येक नागरिक से उसकी सम्पत्ति पर कर लेती। किन्तु सत्ताशाली मनुष्य या तो इससे बच जाते या कर चुकाते ही नहीं। अतएव कर का सारा भार जनसाधारण पर ही पड़ता था। जब मेडिसियों का प्रभुत्व जमा तब उन्होंने धनिकों की शक्ति को दबाने के लिये तथा जनसाधारण में यश प्राप्त करने की इच्छा से सब लोगों की सम्पत्ति व आमदनी की गणना कराई और उसके हिसाब से कर लगाया। किन्तु इस नीति से फ्लोरेंस के उद्योग-वाणिज्य को धक्का पहुँचने लगा क्योंकि व्यापारियों की आमदनी तो निश्चित थी नहीं, परन्तु कर उन्हें निर्धारित नियम के अनुसार ही देना पड़ता था। इसके सिवाय मेडिसियों ने अपने साथियों पर विशेष अनुग्रह दिखलाया और उन पर कम तथा अपने विरोधियों पर अत्यधिक कर लगा दिया। क़र्ज लेने की प्रथा भी मेडिसियों ने जारी रखी—किन्तु शायद ही वे उसे कभी चुकाते रहे हों। जब १४९४ ईस्वी में फ्लोरेंस स्वाधीन हुआ उस समय कर की यही हालत थी। जो प्रथा प्रचलित थी वह अन्याय व पक्षपात पर स्थित थी और असंतोष उसका फल था। प्रजातंत्र को धन की जरूरत भी अधिक थी। चार्ल्स को रक़म अदा करना थी, पीसा तथा अन्य

नगरों के विद्रोहों को दबाने के लिये धन की आवश्यकता थी। अतएव राजस्व-नीति की जांच व सुधार अत्यन्त आवश्यक था। कुछ लोगों का इरादा था कि केवल भूमि-कर ही लिया जाय। परंतु इससे व्यापारी लो बच जाते। सावोनारोला ने उपदेश दिया कि समता व सार्वजनिक न्याय को ही राजस्व-नीति का आधार बनाना चाहिये। उसकी प्रेरणा से सन १४९५ में एक क़ानून बनाया गया कि प्रत्येक नागरिकों को अपनी सम्पत्ति की आमदनी का १० वां हिस्सा राज्य को कर-स्वरूप देना होगा। क़र्ज़ लेने की प्रथा, व्यक्तिगत कर तथा अन्याय व पक्षपात-पूर्ण कर बन्द कर दिये गये। यह फ्लोरेंस तथा इटली के लिये पहिला मौक़ा था कि सार्वजनिक सम्पत्ति पर नियमित रूप से कर लगाया गया। फ्लोरेंस में सदियों तक यह प्रथा क़ायम रही, इसमें ग़रीब अमीर व्यापारी-ज़मींदार किसी को भी शिकायत की गुन्जाइश नहीं रही क्योंकि सब के साथ एक ही नीति बर्ती गई थी। जायदाद का मूल्य तथा उसकी आमदनी का हिसाब करने के लिये विशेष कर्मचारी नियुक्त किये गये।

राजनीतिक विरोधियों से मैत्री स्थापित करने तथा उनके साथ राजकोय मामलों में न्याय करने की इच्छा से सावोनारोला ने सिन्योरी के विचारार्थ दो प्रस्तावों की विवेचना अपने व्याख्यानों में की। पहिला प्रस्ताव था कि मेडिसी-दल के लोगों को क्षमा प्रदान किया जाय। सावोनारोला की प्रेरणा के कारण जन साधारण इसके पक्ष में होगये। अतएव जब सिन्योरी ने इस

प्रस्ताव को परामर्श-समिति व महासभा के सामने रखा तो वह सहर्ष स्वीकार कर लिया गया। प्रस्ताव के शब्द इस प्रकार थे— "यह निश्चय किया जाय कि सार्वजनिक शान्ति व मैत्री की स्थापना हो और मेडिसी सरकार के अनुयायियों के सब अपराध क्षमा कर दिये जायँ और उनको सजा व जुर्माने भी माफ कर दिये जायँ।"

दूसरा प्रस्ताव राजनीतिक अपराधियों व राजद्रोहियों के न्याय के बारे में था। अभी तक ऐसे मामलों का फैसला रक्षा-समिति के हाथ में था। इसमें आठ सदस्य थे, निर्णय के लिये छः सदस्यों का बहुमत अनिवार्य था। कभी २ सिन्योरी भी राजनीतिक मामलों का न्याय करती थी। वह चाहे जो दण्ड दे सकती थी—जुर्माना, कारावास, जायदाद-जब्ती, देश-निकाला और मौत। इसका निर्णय अन्तिम होता था। अभियुक्त अपील नहीं कर सकते थे; इसके लिये न कोई विधान था, और न कोई न्यायालय। रक्षा-समिति व सिन्योरी के सदस्य अपने शत्रुओं व विरोधियों को कुचलने के लिये अपनी सत्ता का कभी २ दुरुपयोग कर डालते थे। दलबन्दी व प्रतिहिंसा के भाव न्याय को कलुषित कर देते थे। अतएव सावोनारोला ने यह निश्चय किया कि *सिन्योरी तथा रक्षा-समिति की न्याय-सम्बन्धी सत्ता का नियन्त्रण अवश्य होना चाहिये।* यह किस प्रकार किया जाय? उनके बहुमत के [छः सदस्यों का मत] निर्णय के विरुद्ध अभियुक्तों को अपील करने के अधिकार दिये जायँ और महासभा द्वारा

निर्वाचित ८० व १०० सदस्यों की एक समिति अपील पर विचार व न्याय करे। इस प्रस्ताव के सिद्धान्त को तो सिन्योरी ने मान लिया किन्तु जो क्रियात्मक साधन सावोनारोला ने बतलाया था उसमें परिवर्तन कर दिया। जो प्रस्ताव उन्हें महासभा के सामने रखा वह इस प्रकार था—'अभियुक्त को अधिकार है कि यदि वह चाहे तो सिन्योरी व न्याय-समिति के निर्णय के विरुद्ध निर्णय सुनाये जाने से आठ दिन के भीतर महासभा के सामने अपील कर सकता है। यदि महासभा के दो-तिहाई वोट उसके पक्ष में आवें तो वह निर्दोष समझ कर छोड़ दिया जायगा।"

जो प्रस्ताव सावोनारोला ने किया था और जो प्रस्ताव सिन्योरी ने महासभा से स्वीकृत कराया उनमें एक बड़ा अन्तर था। सावोनारोला चाहता था कि अपील का निर्णय एक निर्वाचित विशेष-समिति करे। वह जानता था कि महासभा के सदस्यों में वह अनुभव, वह विवेक एवं क़ानून का वह सूक्ष्म-ज्ञान नहीं होसकता जोकि समुचित न्याय के लिये अनिवार्य है। जन-साधारण अस्थिर-चित्त होते हैं, क्षणिक उत्तेजना के वशीभूत हो चाहे जो कर डालते हैं, उन्हें सहज में उल्टी सीधी पढ़ाई जासकती है, उनकी न्याय-बुद्धि भावुकता के प्रवाह में बह जाती है; अतएव जीवन-मरण का अन्तिम निर्णय उनके हाथों में छोड़ देना न्याय का गला घोंटने के समान है। लेकिन सिन्योरी ने यह अधिकार महासभा को ही दिया। स्वाधीन शासन की नव-योजना में जिन लोगों के हाथ से सत्ता छीनी जारही थी, जो

लोग भीतर ही भीतर प्रजातन्त्र के दुश्मन थे, उन सबने सिन्योरी के प्रस्ताव का समर्थन किया क्योंकि वे जानते थे इस नये क़ानून से असंतोष और उपद्रव बढ़ेगा और तब उन्हें नूतन शासन को उलटने का मौक़ा मिलेगा। महासभा के तो इससे अधिकार बढ़ रहे थे, साथ ही साथ प्रस्तावों में परिवर्तन करने का अधिकार उनको था ही नहीं, इसलिये उसने भी इस प्रस्ताव का विरोध न कर उसे स्वीकृत कर लिया—यद्यपि सावोनारोला के मौलिक प्रस्ताव से वह एक बात में भिन्न था। यह पहिला मौक़ा था कि सिन्योरी ने सावोनारोला के आदेश का अक्षरशः पालन नहीं किया। यह स्पष्ट है कि इससे उनकी सत्ता को धक्का पहुँच रहा था। प्रस्ताव के दो भाग थे—अपील का अधिकार देना, और दूसरा अपील का निर्णय करने के लिये न्यायालय का विधान। महासभा के सामने एक ही रास्ता था, पूरा प्रस्ताव स्वीकार करना व उसे रद्द करना। पहिला भाग सावोनारोला की इच्छानुसार था, दूसरे में तनिक परिवर्तन कर दिया गया था। निदान उसे उन्होंने पूरा ही स्वीकृत किया।

ग़रीब जनता को साहूकारों के पंजे से बचाने के लिये सावोनारोला की प्रेरणा से राज्य की ओर से एक कर्ज़ देने वाली संस्था की स्थापना की गई। उस समय यूरोप भर में यहूदी साहूकारों और महाजनों का दबदबा था। वे लोग बहुत अधिक सूद पर रुपया उधार देते थे। फ्लोरेन्स के यहूदी साहूकार ३२॥ रुपया सैंकड़ा ब्याज लेते थे और सूद पर सूद अलग लगाते थे। उनकी

व्यवसाय नीति कैसी थी इसे बतलाने के लिये एक उदाहरण पर्याप्त होगा। किसी मनुष्य ने १०० मुद्रायें कर्ज लीं। ५० साल बाद साहूकार ने उस पर ४,४७,९२,५५६ मुद्राओं का दावा किया। लारेन्जों के समय में कर्ज देने वाली एक संस्था को राज्य की ओर से स्थापित करने का एक बार प्रयत्न किया गया था। किंतु यहूदियों ने अधिकारियों को रिश्वत देकर मिला लिया। उन्होंने लारेन्जो को एक लाख मुद्रायें देकर अपने हाथ में कर लिया। फलतः प्रयत्न विफल हुआ। किन्तु सावोनारोला इस शुभकार्य में सफल हुआ। उसने धनिकों से आग्रह किया कि इस संस्था की सहायता करो। संस्था के सञ्चालन के लिये अलग कर्मचारी नियुक्त किये गये। यहां से लोग चीजें रहन रख कर रुपया उधार ले सकते थे। उनसे ५ से ७॥ रुपया सैकड़ा का ब्याज लिया जाता था। उन्हें यह प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी कि वे इस धन से जुआ नहीं खेलेंगे। इस संस्था के आविर्भाव का परिणाम यह हुआ कि लोग साहूकारों के अत्याचारों से मुक्त हो गये। धीरे २ यहूदी लोग फ्लोरेन्स से बिदा हो गये।

उपरोक्त विविध एवं महान् परिवर्तन एक साल के भीतर ही हुए। फ्लोरेंस जैसे नगर में जहाँ पर कि ऐसे अवसरों पर मार-काट होना स्वाभाविक सी बात हो गई थी, यह सब बिना रक्त-पात के सिद्ध हुआ। आश्चर्य की बात तो यह थी कि इन सब का कर्त्ता-धर्ता विधाता एक निरीह सन्यासी था। प्रजातन्त्र के प्रत्येक शासन-विधान और प्रत्येक क़ानून पर उसकी छाप अंकित थी

किन्तु न तो वह किसी शासन-समिति का सदस्य था और न कोई वैभव-सम्पन्न नागरिक। राजभवन में सारे कार्य उसी की इच्छानुसार हो रहे थे किन्तु वह सार्वजनिक उपदेश-मञ्च को छोड़ कर कहीं जाता ही नहीं था। उसके प्रभाव का क्या आधार था? उसकी परम पवित्र देशभक्ति, उसका अलौकिक स्वातंत्र्य-प्रेम और उसकी वह निस्पृहता, सदिच्छा एवं परोपकारिता जिनको कि स्वार्थ एवं दलबन्दी के भाव छू तक नहीं सकते थे। वह आदर्शवादी अवश्य था—रहस्यवाद से तो उसका जीवन ही रँगा हुआ था—तथापि उसने राजनीतिक व सामाजिक प्रश्नों में विलक्षण व्यवहारबुद्धि एवं कार्य-कुशलता का परिचय दिया।

एक मनुष्य के आदेश के सन्मुख नत मस्तक होकर फ्लोरेंस दासता से स्वतंत्रता, तथा अनियन्त्रित शासन से स्वायत्त शासन को प्राप्त करता है। यह भी एक प्रकार का एकाधिपत्य था–सारी प्रजा का एक सन्यासी से शासित होना। किन्तु ऐसे मनुष्य का एकाधिपत्य कितना भिन्न है, लारेन्जों यदि निरंकुश शासकों के एकाधिपत्य से। सन्यासी महात्मा को शक्ति मिलती है ईश्वर से, अपनी आत्मा से, अपने उद्दीपक आदर्श से, अपने स्वार्थ त्याग से। वह उसे खर्च करता है, अपनी शान व सत्ता के लिये नहीं, वरन् सार्वजनिक कल्याण के लिये, सच्ची स्वतंत्रता के लिये। उसके अस्त्र-शस्त्र आध्यात्मिक हैं। उसके पास सैनिक नहीं। वह कूट-नीति से अनभिज्ञ है। वह लोगों की आध्यात्मिक प्रवृत्तियों को आमन्त्रित करता है और वे उसको आज्ञा शिरोधार्य करते हैं।

के परम पवित्र ज्योति से आलोकित युग दीर्घकाल-व्यापी नहीं होते, विशेष कर उस दशा में जब कि उनका सम्बन्ध किसी एक महापुरुष से होता है। तथापि उस ज्योति की कुछ रेखायें समस्त प्रतिबन्धों को पार कर, किसी व्यक्ति व संस्था द्वारा, किसी शिक्षा व आदर्श द्वारा, संसार में सन्मार्ग खोजनेवालों के पथ को सदैव आलोकित करती रहती हैं।

संसार विरक्त साधु ने राजनीति-क्षेत्र में क्यों पदार्पण किया इसे समझना कठिन नहीं। न इनमें अस्वाभाविकता है और न कोई आश्चर्य। जो धर्म के सच्चे तत्व को समझ लेते हैं उनका व्यक्तित्व अलौकि स्फूर्ति और उत्साह से ओत-प्रोत हो जाता है। वे अत्याचार, अनाचार, हीनता, व दुःख को देखकर न चुप हो बैठ सकते और न जंगल में भागकर ही उन्हें शान्ति मिल सकती है। जिस प्रकार वे धर्म और सदाचार का घनिष्ट सम्बन्ध समझ लेते हैं उसी प्रकार उनकी तीव्र विवेक-बुद्धि यह भी जान लेती है कि दासता तथा अराजकता उस अधम मनोवृत्ति और वातावरण को उत्पन्न या उत्तेजित करती है जिनसे कि धार्मिक व नैतिक जीवन में बड़ी २ विघ्न-बाधायें उपस्थित होती हैं। अतएव धर्म एवं सदाचार के प्रचार में विचरण करते २ वे राजनैतिक क्षेत्र में भी पहुँच जाते हैं यद्यपि उस सांसारिक सत्ता, यश तथा वैभव से वे पूर्णतया विरक्त बने रहते हैं जो कि प्रायः लोगों को इस क्षेत्र में आकर्षित करती है। ऐसे साधु सन्त ही राजनीति में उच्चतर व पवित्रतर भावों और आदर्शों का समावेश कर उसे गौरवान्वित

इसी कारण उसे रक्तपात नहीं करना पड़ता, दलबन्दियां नहीं करनी पड़तीं, वैमनस्य व भेदभाव को उत्तेजित नहीं करना पड़ता। ऐसे आराध्य एकाधिपत्य की महिमा बड़े २ कवियों, दार्शनिकों तथा आदर्शवादी राजनीति-विशारदों ने गाई है। परन्तु ऐसे अद्भुत एवं स्तुत्य एकाधिपत्य के उदाहरण संसार के इतिहास में यत्र-तत्र ही मिलते हैं। ये अपूर्व होते हैं, अलौकिक होते हैं, और मानव-समाज के लिये शोक का विषय तो यह है कि इसी कारण ये अस्थायी भी होते हैं क्योंकि जिन उच्च एवं महान् प्रवृत्तियों पर इनका आधार रहता है वे सांसारिक मनुष्यों में चिरस्थायी नहीं होतीं। एक महात्मा आता है, उसका उद्दीप्त व्यक्तित्व और उसकी आध्यात्मिक स्फूर्ति लोगों को चकाचौंध कर देती हैं, उनके हृदय की तंत्री सहसा बज उठती है, उनकी आत्मा बरबस उसका अभिनंदन करने लगती है। किन्तु धीरे २ संसार की हीन व निकृष्ट प्रवृत्तियां भी अपना काम करती रहती हैं शनैः शनैः हृत्तंत्री का वह तार ढीला पड़ने लगता व टूट जाता है, आत्मा को स्वार्थबुद्धि अभिभूत कर देती है और कभी २ महापुरुष को अपना बलिदान भी कर देना पड़ता है। देदीप्यमान ज्योति क्षीण हो जाती है और संसार फिर अपने पुराने ढंग से चलने लगता है। हमें मंद प्रकाश में रहने का अभ्यास सा हो गया है इसीलिये हम उज्वल तथा प्रखर ज्योति को अस्वाभाविक मान बैठते हैं और जब वह विलीन हो जाती है तब प्रकृतिस्थ से होकर अपने अपने काम में लग जाते हैं। तात्पर्य यह है कि मानव-इतिहास

के परम पवित्र ज्योति से आलोकित युग दीर्घकाल-व्यापी नहीं होते, विशेष कर उस दशा में जब कि उनका सम्बन्ध किसी एक महापुरुष से होता है। तथापि उस ज्योति की कुछ रेखायें समस्त प्रतिबन्धों को पार कर, किसी व्यक्ति व संस्था द्वारा, किसी शिक्षा व आदर्श द्वारा, संसार में सन्मार्ग खोजनेवालों के पथ को सदैव आलोकित करती रहती हैं।

संसार-विरक्त साधु ने राजनीति-क्षेत्र में क्यों पदार्पण किया इसे समझना कठिन नहीं। न इनमें अस्वाभाविकता है और न कोई आश्चर्य। जो धर्म के सच्चे तत्व को समझ लेते हैं उनका व्यक्तित्व अलौकि स्फूर्ति और उत्साह से ओत-प्रोत हो जाता है। वे अत्याचार, अनाचार, दीनता, व दुःख को देखकर न चुप हो बैठ सकते और न जंगल में भागकर ही उन्हें शान्ति मिल सकती है। जिस प्रकार वे धर्म और सदाचार का घनिष्ठ सम्बन्ध समझ लेते हैं उसी प्रकार उनकी तीव्र विवेक-बुद्धि यह भी जान लेती है कि दासता तथा अराजकता उस अधम मनोवृत्ति और वातावरण को उत्पन्न या उत्तेजित करती है जिनसे कि धार्मिक व नैतिक जीवन में बड़ी २ विघ्न-बाधायें उपस्थित होती हैं। अतएव धर्म एवं सदाचार के प्रचार में विचरण करते २ वे राजनैतिक क्षेत्र में भी पहुँच जाते हैं यद्यपि उस साँसारिक सत्ता, यश तथा वैभव से वे पूर्णतया विरक्त बने रहते हैं जो कि प्रायः लोगों को इस क्षेत्र में आकर्षित करती है। ऐसे साधु सन्त ही राजनीति में उच्चतर व पवित्रतर भावों और आदर्शों का समावेश कर उसे गौरवान्वित

करते हैं। वे स्वराज्य के राजनीतिक ध्येय को धर्मराज्य के आध्यात्मिक आदर्श में परिणत कर मानव-जीवन को स्वतन्त्र, पुनीत तथा पूर्ण बनाने का प्रयास करते हैं।

सावोनारोला समझता था कि फ्लोरेंस के उद्धार के लिये ईश्वर ने उसे अपना प्रतिनिधि बना कर भेजा है। और फ्लोरेंस के राजनीतिक व धार्मिक सुधार को वह इटली व चर्च के पुनरुत्थान का प्रथम सोपान मानता था। फ्लोरेंस में स्वतन्त्रता व सुशासन स्थापित करते समय उसका ध्येय यही था कि इससे धार्मिक व नैतिक सुधार का पथ सुगम व विस्तृत हो जावेगा।

राजनीतिक दृष्टि से सावोनारोला की सफलता स्मरणीय थी। मकियावेली सावोनारोला का कट्टर समालोचक था। वह सावोनारोला के रहस्यवाद, भविष्यद्वाणी तथा आध्यात्मिक व नैतिक विचारों का उपहास किया करता था। उसके विचार तथा दृष्टिकोण सावोनारोला से विपरीत थे। किन्तु सावोनारोला की राजनीतिज्ञता की उसने भी प्रशंसा की है। महासभा को उसने प्रजातन्त्र का अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग माना है। उसे यह भी स्वीकार करना पड़ा है कि अवश्य ही यह पुरुष किसी "दैवी साधुता से प्रेरित था" और "ऐसे मनुष्य का नाम श्रद्धा के साथ लेना चाहिये।" यह उस मकियावेली के वचन हैं जिसका कि यह सिद्धान्त था कि राजनीति में धार्मिक व नैतिक भावों को कोई स्थान नहीं देना चाहिए। सत्ता व सफलता प्राप्त करो, चाहे

वह किसी तरह भी प्राप्त हो, साधनों के औचित्य-अनौचित्य, व न्याय-अन्याय का तनिक भी ध्यान मत करो।

ग्युइसियार्डिनी सावोनारोला का समकालीन इतिहासकार था। सावोनारोला के पतन व अन्त के बाद ही उसने लिखा है। वह कहता है—"तुम सन्यासी के बड़े आभारी हो। उसने उपयुक्त अवसर पर क्रांति को और बिना रक्तपात के उसे सफल बनाया। यदि वह न होता तो भीषण रक्तपात होता और अराजकता मचती। यदि वह न होता तो पहिले फ्लोरेंस में कुलीनों की परिमित सत्ता की स्थापना होती और उसके बाद अतिशय से पूर्ण अपरिमित प्रजासत्ता। इसमें विद्रोह मचते, खून-खराबी होती और सम्भवतः परिणाम यह होता कि पाइरो को फिर राज्य मिलजाता।"

इतिहासकार फ्रेन्सिसको फोर्टी, जो १९ वीं सदी में हुआ है, लिखता है—"सन्यासी ने जो सुधार किये उनसे ही फ्लोरेंस को अपने इतिहास के एकमात्र सच्चे प्रजातन्त्र-शासन की प्राप्ति हुई। वास्तव में जितने बड़े २ लोग १५३० ईस्वी तक फ्लोरेंस में सार्वजनिक शासन स्थापित करने के पक्ष में थे, वे सब एक स्वर से सावोनारोला के विचारों का सादर समर्थन करते थे। १५ वीं शताब्दि में समस्त इटली में जितने महापुरुष हुए उनमें शायद ही कोई सावोनारोला से अधिक महान् हो। फ्लोरेंस प्रजातन्त्र के राजनीतिक इतिहास में उसके समान महापुरुष कदाचित् कोई भी नहीं हुआ।"

(१०)

नैतिक-सुधार

इस महान् सफलता के समय सावोनारोला के हृदय की क्या दशा थी ? नगर का वह,सर्व सर्वा था तथापि भविष्य उसे उज्ज्वल नहीं दीखता था। उसे ऐसा प्रतीत होरहा था कि जिस आध्यात्मिक आधार पर उसने अपने कार्य की रचना की थी वह चिरस्थायी नहीं रहेगा। क्या लोग सदा के लिये पाप मार्ग छोड़ कर ईश्वर तथा ईसामसीह को अपना पथ-प्रदर्शक बनावेंगे ? यदि नहीं, तो उन्हें दुःख भोगना पड़ेगा। उसकी अन्तरात्मा की व्यथा इन शब्दों से प्रस्फुटित होती है—"हे फ्लोरेंस, मैं थकित हूँ, चार साल तक लगातार उपदेश देते २ मैंने अपनी शक्ति को केवल तुम्हारे लिये ही खर्च किया है। इसके अतिरिक्त आने वाली विपत्तियों के विचार से सदैव मेरा हृदय दबा रहता है और मुझे यह भय लगा रहता है कि कहीं तुम भी उनके शिकार न बन जाओ। इसीलिये मैं सदा ही तुम्हारे कल्याण के लिये परमात्मा से बिनती करता रहता हूँ। × × × यदि तुम ईश्वर की शरण नहीं गहोगे तो सुख के सब समाचार दुःख में परिणत हो जावेंगे।"

स्वयं सावोनारोला के भाग्य में क्या है ? इस अनवरत प्रयास का फल उसे क्या मिलेगा ? विजय-गौरव के सर्वोच्च

शिखर पर आसीन होते हुए भी सावोनारोला के हृदय में यह धारणा जम गई थी कि उसे आत्म-बलिदान देना होगा। बार २ उसने अपने व्याख्यानों में इसका उल्लेख भी किया है। जिस पथ को उसने अपनाया है, वहां से वापिस लौटना असम्भव है। भावप्रवनता से कंपित शब्दों में वह कहता है—"मैंने अपना घरबार छोड़ कर धर्म का आश्रय ग्रहण किया। वहां २३ वर्ष की अवस्था में मैं उन दो वस्तुओं को खोजने की इच्छा से गया जो कि मुझे परम प्रिय थीं—स्वातंत्र्य एवं शान्ति। तत्पश्चात् मैंने संसार-सागर की ओर देखा और मैं अपने उपदेशों से कुछ आत्माओं को वश में करने लगा। तदनंतर यह देख कर कि मुझे इस कार्य में आनन्द की प्राप्ति होती है, परमात्मा मुझे एक नाव के ऊपर ले गये और उसे विस्तृत सागर में छोड़ दिया। अब मेरी नाव डगमगा रही है, थल तो दीखता ही नहीं। मेरे सामने आंधी और तूफान उठ रहे हैं, मुझे कोई बन्दर-स्थान दिखलाई ही नहीं पड़ता, हवा के झोंके मुझे आगे बढ़ाये लिये जा रहे हैं। दाहिनी ओर भक्तगण हैं जो मुझसे सहायता की प्रार्थना कर रहे हैं, बाईं ओर राक्षस और नीच लोग हैं जो हम पर आक्रमण कर कष्ट दे रहे हैं। मैं ऊपर देखता हूँ, वहां परमात्मा की चिरन्तन कृपा मुझे आशान्वित होने के लिये उत्साहित कर रही है। मैं नीचे की ओर देखता हूँ, वहां नरक है और, चूंकि मैं मनुष्य हूं, मुझे डर लगता है कि यदि परमात्मा की दया नहीं हुई तो मुझे वहीं जाना पड़ेगा। हे प्रभु! हे प्रभु!

तुम मुझे कहां लिये जा रहे हो ! थोड़ी सी आत्माओं की मुक्ति की खोज करते हुए मैं उस स्थान पर आगया हूं जहां से कि शांति-कुटीर को लौटना असम्भव है। × × हे नाथ ! ऐसे संग्राम में विजय पाने वाले को क्या पुरस्कार मिलेगा ? वही जिसे नेत्र देख नहीं सकते, कान सुन नहीं सकते—अनन्त सुख। किन्तु इस जीवन में उसे क्या मिलेगा ? परमात्मा कहते हैं—'एक ही सेवक स्वामी से बड़ा नहीं हो सकता। तुम जानते हो कि तुम मनुष्यों को उपदेश देने से अनन्तर मुझे क्रूश पर चढ़ाया गया था। तुम्हें भी यही मिलेगा —इसी प्रकार का आत्मोत्सर्ग।' हे प्रभु, मैं आत्म-बलि दूं, हुतात्मा बनूं, यही प्रसाद मुझे दीजिये। जैसे कि आपने हम सब के निमित्त प्राणोत्सर्ग किया था, उसी प्रकार मैं भी आपकी सेवा में प्राण-दान करूं।"

श्रोताओं पर ऐसे वचनों का क्या प्रभाव पड़ता था, यह वर्णनातीत है। स्त्री, पुरुष, मजदूर, कवि, दार्शनिक सभी गद्गद् होकर उन्हें सुनते। वे सन्यासी के भावों के प्रवाह में बह जाते, उनके धैर्य का बांध टूट जाता, आंसू निकल पड़ते। जो सम्वाददाता उसके व्याख्यानों को लिखने के लिये वहाँ उपस्थित होते उन्हें भी लिखना पड़ा है कि 'अमुक स्थान पर हम आंसू नहीं रोक सके, इसलिये आगे लिखना असम्भव होगया।" श्रोताओं की सिसकियों से सभा भवन प्रतिध्वनित होने लगता। कभी-२ सावोनारोला का हृदय इतना भर जाता कि उसके लिये व्याख्यान को जारी रखना असम्भव हो जाता।

आन्तरिक उद्वेग और आवेश के मारे उसका शरीर इतना जर्जरित हो जाता कि कई दिनों तक उठने की शक्ति उसमें नहीं रहती।

कहा जा चुका है कि सावोनारोला के विचारों में धर्म और राजनीति का अपूर्व सम्मिलन था। एक को दूसरे से अलग करना उसके लिये असंभव था। अतः स्वतन्त्रता के नवयुग में उसने यह घोषणा की 'कि ईसामसीह तुम्हारे शासक हैं।' इसी लिये वह बार २ कहता था कि आत्म-सुधार करो, त्याग करो, पुण्यशील बनो। स्वतन्त्रता तथा परमात्मा से क्या संबंध है इस पर वह कहता है "स्वतन्त्रता ईश्वर का तत्व है। ईश्वर के समान साधुजन भी स्वतन्त्र होते हैं। स्वतन्त्रता केवल वहीं है जहाँ कि पुण्यमय जीवन की आकांक्षा हो। × × × × नागरिकों, तुम स्वतन्त्र होना चाहते हो? तो ईश्वर से प्रेम करो, अपने पड़ोसी को प्यार करो, एक दूसरे से स्नेह रक्खो, सार्वजनिक कल्याण से अनुराग करो। यदि यह प्रेम और ऐक्य तुम में होगा, तो तुम सच्ची स्वतन्त्रता पा सकोगे।"

फ्लोरेंस की भलाई के लिये पारस्परिक प्रेम व एकता की कितनी मार्मिक आवश्यकता थी, इस पर सावोनारोला ने क्यों विशेष जोर दिया, इसकी विवेचना हम अगले अध्याय में करेंगे। यहां हम यही देखेंगे कि फ्लोरेंस के सामाजिक वातावरण में सावोनारोला के नैतिक सुधारों ने क्या २ परिवर्तन किये।

क्रान्ति एवं शासन-योजना के समय में सावोनारोला को इतना कठिन परिश्रम करना पड़ा था, इनके कारण उस पर उत्तर

दायित्व का इतना बोझ आगया था कि उसका शरीर बहुत दुर्बल होगया। किन्तु उसने विश्राम नहीं लिया। उसकी आत्मा ऐसे नैसर्गिक उत्साह व स्फूर्ति से अभिभूत थी, वह सार्वजनिक कल्याण के लिये इतना व्यग्र था, कि शासन-योजना के पूर्ण होते ही वह नैतिक सुधार के कार्य में तन, मन, वचन से लग गया। यही अब उसके भाषणों का मुख्य विषय बनगया। सरल, पवित्र, त्यागमय जीवन यही सच्चे ईसाई का जीवन होना चाहिये। लारेन्जो ने किस प्रकार भोग-विलास की प्रवृत्तियों को उत्तेजित किया था इसका वर्णन किया जा चुका है। अतएव सावोनारोला ने जो कार्य हाथ में लिया वह सरल नहीं था। तथापि उसे अपूर्व सफलता मिली। जर्जरित शरीर ने मानो उसकी आत्मा को और भी सबल बना दिया। उसके नेत्रों की उग्र ज्योति श्रोताओं के अन्तःकरण को आलोकित कर देती। उसके वचनों में वह मर्मान्त-भेदिनी व हृदय को हिला देने वाली शक्ति रहती कि लोग उनको सुनते हुए पुलकित व गद्गद होजाते, आंसू बहाने लगते और नवजीवन से दीक्षित हो अपने घरों को लौटते। स्त्रियों ने अपने रत्न-जड़ित आभूषणों, रेशमी वस्त्रों तथा वाह्याडंबर की सामग्री को त्याग दिया। वे सादे व मोटे वस्त्र ही धारण करतीं लज्जा व धर्म शीलता को ही उन्होंने अपना आभूषण बनाया। विषय-भोग में सदा फँसे रहने वाले नवयुवकों में अद्भुत परिवर्तन हुआ। वे, जो कि धर्म व पुण्य को अवज्ञा व विनोद की वस्तु समझते थे, अब उसे गम्भीर-भाव से अपनाने लगे। लारेन्जो के

अश्लील गीतों को लोगों ने भुला दिया—अब धार्मिक गीत ही सर्वत्र, सब उत्सवों में गाये जाने लगे। सर्वसाधारण बाइबिल तथा सावोनारोला के ग्रन्थों को पढ़ते हुए दुकानों पर नज़र आते। लोग नियमपूर्वक उपासना मंदिर में जाने लगे, यथाशक्ति दान देने लगे। साहूकारों, महाजनों तथा व्यापारियों में ऐसा मानसिक परिवर्तन हुआ कि वे अन्याय अथवा अनीति से प्राप्त अपनी सम्पत्ति तथा आय को वापिस करने लगे। विलासिता व कामुकता को जागृत करने वाले उत्सव या तो बंद होगये या उनका ऐसा रूपान्तर कर दिया गया कि वे धार्मिक-जीवन को प्रोत्साहित करने के साधन बन गये। देहातों में रहने वाले ग़रीब किसान रात २ भर चल कर सावोनारोला का उपदेश सुनने के लिये प्रातःकाल गिर्जाघर में उपस्थित होते। कितने ही लोग सावोनारोला के भिक्षु-सम्प्रदाय में दीक्षित हो गये। पिको डेला मिरेन्डोला की उत्कट अभिलाषा थी कि सावोनारोला से दीक्षा लेकर संत-मार्क में प्रवेश करे। किन्तु उसे यम का निमन्त्रण मिला, और ३२ वर्ष की अवस्था में इस होनहार युवक का देहान्त हो गया। सन्तमार्क के मठ में पहिले ५० सन्यासी रहते थे, अब उनकी संख्या २५० तक पहुंच गई। जगह की कमी के कारण सावोनारोला को एक और भवन का प्रबन्ध करना पड़ा। नव दीक्षित श्रावकों में उच्च घराने के लोगों का बाहुल्य था। ६ लोग तो उस स्ट्रोज़ी परिवार के थे जिसकी एक कन्या को वंशाभिमान के कारण सावोनारोला की युवावस्था में

उसके प्रेम का तिरस्कार करना पड़ा था। इसके अतिरिक्त कोई राजनीतिज्ञ थे, कोई साहित्यिक थे, कोई वैज्ञानिक थे। सावोनारोला नहीं चाहता था कि क्षणिक आवेश में आकर लोग घरबार छोड़ कर सन्यासी बन जायें। जो लोग मठ में भर्ती होने की इच्छा प्रगट करते थे उन्हें सावोनारोला पहिले भिक्षु-जीवन के कठिन कर्त्तव्यों को समझाता और उन्हें स्थिर चित्तता व सावधानी से विचार करने की सम्मति देता था। दृष्टान्त के लिये बेनेडोटो की कथा को ले लीजिये। वह एक धनी सुवर्णकार का पुत्र था। वह युवक था, और गीत, वाद्य, कविता, आमोद-प्रमोद में व्यस्त रहता था। वह विषय-वासना का दास था। जो लोग सावोनारोला का उपदेश सुनने जाते उनकी वह हंसी उड़ाया करता था। एक बार किसी कुलीन सुन्दरी के आग्रह से वह सावोनारोला के व्याख्यान में उपस्थित हुआ। लोग बेनेडोटो को देख कर विस्मय से अवाक् हो गये। सावोनारोला मंच पर से व्याख्यान दे रहा था। किसी अदृश्य शक्ति से अभिभूत हो कर बेनेडोटो निर्निमेष दृष्टि से उपदेशक की ओर देखता रहा, उस पर से दृष्टि हटाना असम्भव हो गया। उपदेश समाप्त हो जाने पर वह निर्जन स्थानों में विचारमग्न हो अकेला घूमता रहा। वह स्वयं कहता है कि इस समय मैं जीवन में पहिली बार अपने विचारों को अपनी अन्तरात्मा की ओर ले गया। जब वह घर पहुंचा तब उसमें मानसिक क्रांति हो चुकी थी। उसने भोग-विलास की सारी सामग्री को फेंक दिया और नियमित रूप से

सावोनारोला के उपदेशों को सुनने के लिये जाने लगा, उसके मित्रों ने उसकी हंसी उड़ाई, अभ्यस्त वासनाओं के प्रलोभनों ने उस पर मोहिनी डाली, किन्तु उसने उन सब पर विजय पाई। तत्पश्चात् वह सावोनारोला के सम्मुख गया और उसके चरणों में गिरा। सावोनारोला ने कहा जाओ, अभी और तय्यारी करो, क्यों कि सन्यासी की जीवन-चर्या अत्यन्त कठिन और कठोर है। बेनेडोटो ने इस आदेश को शिरोधार्य किया। वह आत्मपरीक्षा और इन्द्रिय-निग्रह में लग गया। जब कभी वह विफल होता, पश्चात्ताप के लिये घोर तपस्या करता। सावोनारोला उस पर दृष्टि रखता और समय-समय पर उचित उपदेश और सलाह देता रहता। वह बेनेडोटो को कभी रोगियों की सेवा करने, तथा कभी मुर्दों को दफ़नाने के लिये भेजता। अन्त में जब बेनेडोटो सब परीक्षाओं में उत्तीर्ण हुआ तब उसे भिक्षु की दीक्षा दी गई और उसने सन्यासी का परिधान धारण किया। वह सावोनारोला का परम प्रिय-भक्त निकला और विपत्तियों में भी उसने अपने गुरु का साथ नहीं छोड़ा।

नगर के जीवन में एक पवित्र परिवर्तन हुआ। लोग इस चमत्कार को देख कर स्तम्भित हो गये। समकालीन इतिहासकारों में कोई तो इस उदात्त नवजीवन की सहर्ष प्रशंसा करते हैं, कोई आमोद-प्रमोद भोग-विलास आदि के दिनों की याद कर दुःख प्रकट करते हैं, किन्तु एक स्वर से सभी का यह कहना है कि नागरिकों के आचरण में जो परिवर्तन हुआ वह अद्भुत एवं महान् था, और यह सब एकमात्र सावोनारोला की पुनीत प्रेरणा का फल था।

(११)

पाइरो का विफल आक्रमण

यद्यपि ऊपर से फ्लोरेंस में सर्वत्र शान्ति व एकता ही दीखती थी, और ऐसा प्रतीत होता था, कि सभी नागरिक सावोनारोला के भक्त एवं प्रजातंत्र के सच्चे उपासक हैं; तथापि अधर्म स्वार्थ, अधिकार-लालसा तथा पारस्परिक द्वेष के कारण वैमनस्य व दलबन्दियों का बीजारोपण. प्रारम्भ हो गया था। यद्यपि भयवश अथवा कुटिलता के कारण वे सन्यासी के विरुद्ध खुलकर आगे आने को तैयार नहीं थे, फिर भी बहुतों के हृदय में रोष तथा द्वेष की आग धधक रही थी। सार्वजनिक दल तो सावोनारोला की तरफ था और उसे ही अपना पथ-प्रदर्शक मानता था। उसके अतिरिक्त कुछ लोग ऐसे थे जो कि स्वाधीनता के उपासक होते हुए भी, सावोनारोला अथवा सन्यासीमात्र से कोई सहानुभूति नहीं रखते थे। ये लोग सावोनारोला की इसलिये, और इसी सीमा तक, प्रतिष्ठा करते थे कि उसका प्रभाव स्वातंत्र्य व प्रजातंत्र की रक्षा के लिये आवश्यक और श्रेयस्कर है। वे धार्मिक तथा नैतिक-सुधार-सम्बन्धी बातों से तटस्थ रहते और उसकी भविष्यद्वाणी, दिव्य-दृष्टि,रहस्यवाद आदि की मन ही मन उपेक्षा करते थे। ये लोग राजनीतिक हितों की दृष्टि से ही सावोनारोला की उपयोगिता व महत्व को स्वीकार करते थे, अन्यथा उसके

भक्त नहीं थे। वे जानते थे कि विना सावोनारोला के अधिकार-लोलुप धनिक-मण्डलो तथा मेडिसी-दल को दबाये रखना असंभव होगा। अतएव वे खुले आम उसका विरोध नहीं करते थे। इस दल का नाम पियांचो था। दूसरे दल में मेडिसियों के साथी थे, इसका नाम धिगों था। सावोनारोला की कृपा से उन्हें क्षमा-दान मिल गया था। ये लोग ऊपर से अपने को प्रजातंत्र की तरफ़ बतलाते थे, परन्तु भीतर ही भीतर यह चाहते थे कि मेडिसी-सत्ता की फिर से स्थापना हो और पाइरो लौट आवे। इसी उद्देश्य को सामने रखकर ये छिपे २ पाइरो से लिखा-पढ़ी कररहे थे। इनका गुप्त संगठन अच्छा था। यहां सावोनारोला के भक्त-गण ऐक्य व मैत्री के भावों मे विभोर होकर नैतिक सुधार के कार्य में व्यस्त थे, वहाँ धिगी दल के लोग गुप्त षड्यंत्र की रचना कर, प्रजातंत्र के सर्व-नाश की तैयारी कर रहे थे। इनके अतिरिक्त एक और दल था जो चाहता था कि फ्लोरेंस में कुलीन-राज्य की स्थापना हो। इनमें धनिकों के सिवाय बहुत से ऐसे लोग भी थे जिन्हें कि मेडिसियों के समय में राज-कार्य का अनुभव प्राप्त हो चुका था किन्तु जिनकी सत्ता प्रजातन्त्र के कारण छीन ली गई थी। इन लोगों के पास धन, प्रभाव एवं अनुभव, सभी कुछ था। बड़े २ व्यापारियों के परिवार भी इसी दल में सम्मिलित थे। पोप के दरबार में तथा मिलेन में भी इनका दबदबा था। ये लोग एकतंत्र के दुश्मन होने के कारण पाइरो तथा बिगो दल के भी विरोधी थे, किन्तु अपना सब से अधिक कट्टर शत्रु तो ये सावोनारोला को ही मानते

थे। सावेनारोला के कारण ही उन्हें क्रान्ति के बाद अपना प्रभुत्व जमाने के उद्योग में मुँह की खानी पड़ी थी। वही प्रजातंत्र का प्रधान आधार-स्तंभ था। उसके नैतिक कार्यक्रम की भी ये निन्दा करते थे। सारांश यह है कि सावोनारोला और उसके अनुयायियों से ये तीव्र द्वेष रखते थे और उन्हें पियग्नोनी नाम से पुकारते थे। इस दल का नाम था अराबियाटी। वे कहते थे कि सन्यासी राजनीति में क्यों हस्तक्षेप करे। वे उसकी दिव्य दृष्टि व भविष्यद्वाणी की हमेशा हँसी उड़ाया करते और कहते कि पादरियों की निन्दा कर सावोनारोला पोप को फ्लोरेंस का दुश्मन बना रहा है। उन्होंने यह भी समझ लिया था कि सार्वजनिक अथवा पियांची दल की शक्ति सावोनारोला पर अवलम्बित है, इसलिये यदि उसे दूर कर दिया जाय तो ये दल निर्बल पड़ जावेंगे। इस कारण गुप्त रीति से सावोनारोला की हत्या करना भी इनके कार्यक्रम में सम्मिलित था। तथापि सावोनारोला की लोक-प्रियता व शक्ति को देखकर ये लोग ऊपर से दबे रहते थे। सावोनारोला की सूक्ष्म-दृष्टि ने इन सब दलों के अस्तित्व तथा उनके मन्तव्यों को समझ लिया था। वह जानता था कि पिगो व अराबियाटी दल स्वातन्त्रता व प्रजासत्ता के शत्रु हैं, इनके कारण उसके हृदय को तीव्र वेदना पहुँचती थी और वह बार २ लोगों से स्वातंत्र्य-प्रेम, एकता तथा मैत्री की अपील करता था। यदि वह चाहता तो इन्हें सहज ही में जड़ से उखाड़ देता। किन्तु उसके विचार दलबंदी से कहीं अधिक उच्च और उदार थे। उसकी नीति

क्षमा व मैत्री की नीति थी। उसके साधन पवित्र थे। वह उनका उन्मूलन नहीं, वरन् मानसिक परिवर्तन चाहता था।

फ्लोरेंस से चार्ल्स ने नेपिल्स के लिये कूच किया था। बिना किसी प्रकार की कठिनाई व रुकावट के उसने नेपिल्स पर क़ब्ज़ा कर लिया। वहां का राजा भाग गया। किन्तु फरासीसियों ने अपनी उद्दण्डता व लोभ से इटली के सभी लोगों को अपना शत्रु बना लिया था। फ्लोरेंस के प्रति भी उनका जो बर्ताव था वह अत्यन्त निन्दनीय था। फरासीसियों की अनायास विजय से लोग भयभीत हो गये। विदेशी राजाओं की ईर्ष्या जागृत हो उठी। लूडोविको ने चार्ल्स का साथ छोड़ दिया। मार्च १४९५ में पोप, लूडोविको, जर्मन सम्राट्, स्पेन का राजा तथा वेनिस की सरकार, इन सब ने मिल कर चार्ल्स को इटली से निकालने के लिये कमर कसी। इन्होंने एक संघ की स्थापना की। पोप इसका नेता था अतएव इसे "पुण्य-संघ" कहते हैं। किन्तु फ्लोरेंस चार्ल्स का मित्र बना रहा। चार्ल्स नेपिल्स में अपनी फौज का एक हिस्सा छोड़ कर, फ्रांस को वापिस लौटने लगा। रास्ते में फ्लोरेंस पड़ता था। चार्ल्स ने फ्लोरेंसवासियों के साथ विश्वास घात किया। उसने प्रतिज्ञा की थी कि हम पीसा को बग़ावत बन्द करने के लिये वाध्य करेंगे। किन्तु वास्तव में वह विद्रोहियों को प्रोत्साहन देता रहा। फ्लोरेंस सरकार ने पीसा का दमन करने के लिये कोपिनी के नेतृत्व में सेना भेजी, परन्तु पीसा को जेनोआ, मिलेन, तथा फरासीसियों की सहायता मिली। इससे

फ्लोरेंस को सफलता नहीं मिल सकी। संधि की शर्तों के अनुसार जो रक़म फ्लोरेंस ने देना स्वीकार किया था उसकी दो क़िस्तें दी जा चुकी थीं, केवल एक और बाक़ी थी। अब अफ़वाह उड़ रही थी कि चार्ल्स तलवार के बल से तीसरी क़िस्त वसूल करेगा। सब से अधिक भय और घबड़ाहट पैदा करने वाली बात यह थी कि पाइरो भी उसकी सेना के साथ था।

यह अवश्य ही आश्चर्य का विषय है कि चार्ल्स जैसे मनुष्य को सावोनारोला ने क्यों इटली तथा चर्च के सुधार के लिये ईश्वर-प्रेषित दूत समझा था। यद्यपि वह ईश्वरीय प्रकोप की धमकी देकर चार्ल्स को सन्मार्ग पर लाने की चेष्टा करता था और उसपर उसने आतंक भी जमालिया था। यद्यपि सावोनारोला के कारण चार्ल्स द्वारा फ्लोरेंस को उतनी हानि नहीं पहुँची जितनी कि संभव थी व जिसका कि सब को भय था, तथापि यह हमें अवश्य ही स्वीकार करना पड़ेगा कि चार्ल्स में महानता, सदाशयता तथा साधारण सचाई तक की बहुत कमी थी। यह सब होते हुए भी सावोनारोला का दल फरासीसियों से मित्रता बनाये रखने के पक्ष में था। यहाँ इतना कह देना उचित है कि चार्ल्स का यह विचार अवश्य था कि पापी पोप एलेक्ज़ेंडर को सिंहासन से उतारने तथा चर्च का सुधार करने के लिये सार्वदेशीय धर्म-सभा के अधिवेशन का प्रबन्ध करे। यदि सावोनारोला आंख मूंद कर, भावुकता एवं अकर्मण्यता के साथ, चार्ल्स पर अंध-विश्वास करता रहता, तो हम उसे दूरदर्शी राजनीतिज्ञ

कदापि नहीं कह सकते थे। यदि हमें यह कहना ही पड़ता है कि चार्ल्स को जो उच्च पद सावोनारोला ने दिया वह उसके अयोग्य निकला तो साथ ही साथ यह भी कहना उतना ही जरूरी है कि चार्ल्स के प्रति व्यवहार रूप में उसने जिस नीति का अनुसरण किया वह निस्संदेह प्रशंसा के योग्य है क्योंकि उससे न फ्लोरेंस की विशेष हानि हुई, न उसे युद्ध ही करना पड़ा और चार्ल्स से मित्र-भाव भी बना रहा।

उपरोक्त तथ्य को अच्छी तरह समझने के लिये हमें यह देखना चाहिये कि जब चार्ल्स अपनी सेना के साथ लौट रहा था, उस समय सावोनारोला और उसके साथियों ने किस प्रकार परिस्थिति का सामना किया। लोगों को भय था कि कहीं चार्ल्स फ्लोरेंस पर अधिकार न जमा ले, नगर को लूट न ले और कहीं पाइरो को फ्लोरेंस का शासक बनाने का प्रयत्न न करे। उसने संधि की शर्तों का पालन नहीं किया था, इस कारण लोग उससे बहुत नाराज भी थे। उसने न पीसा को वापिस दिलवाया था, न अन्य क़िले ही लौटाये थे। यह भी कोई नहीं जानता था कि उस के इरादे क्या हैं। अतएव उसका सामना करने के लिये नगर में तैयारियां की गईं। बालकों तक ने हथियार बाँधे। किसान भी सैनिक बने। दस हजार सैनिक तैयार किये गये। घरों में अस्त्र-शस्त्र भर दिये गये। सड़कों पर मोर्चे खड़े किये गये। बुर्जों पर पहिरेदार बिठलाये गये। नगर के सब द्वार बंद कर दिये गये। रात दिन फ़ौज का पहरा रहने लगा। यह सब पिय-

रनोनी दल के परिश्रम व अध्यवसाय का फल था। यहाँ सावो-नारोला आध्यात्मिक साधनों के महत्व को समझाता हुआ, आशा का संदेश सुना रहा था—"ईश्वर-वन्दना में तल्लीन रहो, परन्तु आत्म-रक्षा के मानव-सुलभ उपायों को भी अपनाना मत भूलो। × × × × मेरे भाइयो, धैर्य रखो और सब से अधिक आवश्यक बात तो यह है कि ऐक्य-भाव बनाये रहो। यदि तुम एकता में सम्बन्ध रहोगे और सब लोग एक ही उद्देश्य को सामने रखकर कार्य करोगे तो निश्चय ही तुम्हें विजय प्राप्त होगी चाहे सारा संसार तुम्हारे विरुद्ध क्यों न खड़ा हो जाय।"

चार्ल्स का अभिमत जानने के लिये जो दूत भेजे गये उनसे उसने बड़ा रूखा बर्ताव किया। उन्होंने पूछा—"आप किस मार्ग से पधारेंगे? जिससे कि हम वहाँ रसद-पानी का प्रबन्ध कर दें।" चार्ल्स ने क्रोध में आकर कहा—"सारे राज्य भर में उनका प्रबन्ध करो।" राजदूत हताश होकर लौट आये। एक बार फिर नगरवासी सावोनारोला की ओर त्राहि, त्राहि, करते हुए दौड़े। सावोनारोला का विश्वास था कि ईश्वर-निर्धारित कर्त्तव्य की अवहेलना करने के कारण ही चार्ल्स को इटली से लौटना पड़ रहा है। उसने नगरवासियों का आग्रह मान लिया। पहिले तो उसने चार्ल्स को भर्त्सना भरा एक पत्र लिखा और फिर स्वयं उससे जाकर मिला। चार्ल्स अपने शत्रुओं के डर से फ्रांस को लौट रहा था, इसका उल्लेख करते हुए सावोनारोला ने कहा—

"ईसाई श्रेष्ठ राजन, फ्लोरेंसवासियों के साथ विश्वासघात

कर तथा चर्च-सुधार के उस कार्यको त्यागकर, जिसके लिये ईश्वर ने तुम्हें निर्वाचित किया था और जिसकी सूचना मेरे द्वारा कितनी ही बार तुम्हें मिल चुकी है, तुम परमात्मा के कोप-भाजन बने हो। वर्त्तमान विपत्तियों से तुम बच जाओगे। किन्तु परमात्मा अपने इस नम्र सेवक द्वारा तुम्हें यह आदेश देते हैं कि उस कार्य को तुम पूरा करो। यदि तुम ऐसा नहीं करोगे तो मैं कहता हूँ कि ईश्वरीय प्रकोप के कारण इससे भी अधिक भयंकर आपत्तियाँ तुम्हारे ऊपर आवेंगी और तुम्हारे स्थान पर परमात्मा और किसी व्यक्ति को नियुक्त करेंगे।"

यह फटकार काम कर गई। सावोनारोला को फिर सफलता मिली। चार्ल्स ने फ्लोरेंस जाने का इरादा छोड़ दिया। उसने लेघोर्न का क़िला देदिया और पीसा को भी लौटाने की प्रतिज्ञा की। सावोनारोला ने फ्लोरेंस आकर जनता को सुसंवाद सुनाया कि ईश्वर की दया से संकट टल गया। उसने लोगों को सच्चरित्र तथा स्वातंत्र्योपासक बनने का उपदेश दिया। सावोनारोला की भविष्यवाणी के अनुसार चार्ल्स की फौज भी सर्वनाश से बच गई। पुण्य-संघ की जो फ़ौजें फरासीसियों का रास्ता रोकने तथा उनसे बदला लेने के लिये इकट्ठी हुई थीं उनसे फोर्नोवो में घमसान युद्ध हुआ। फरासीसी बेलाग निकल गये। लेकिन फ्लोरेंस को पीसा नहीं मिला। चार्ल्स के अफ़सर पीसा वालों की मदद करते रहे। इसके दो कारण हो सकते हैं। एक तो यह कि चार्ल्स ने जान बूझ कर झूठा वादा किया था। दूसरा

यह कि उसके अफ़सरों ने पीसवालों से घूँस ली, उनसे मिल गये और चार्ल्स की आज्ञा को नहीं माना। दूसरा कारण ठीक जँचता है क्योंकि यह निर्विवाद है कि चार्ल्स ने बार २ अफ़सरों को आज्ञा भेजी कि पीसावालों की सहायता मत करो और नगर को फ्लोरेंस के हवाले करदो। कहते हैं कि पीसा में जो फरासीसी फ़ौज थी उसका सेनापति पीसा की एक सुन्दरी के प्रेमपाश में फँस गया था, इसलिये उसने पीसावालों का ही पक्ष लिया। अस्तु, जुलाई १४९५ के अन्त में चार्ल्स ने इटली से प्रस्थान किया।

फ्लोरेंस ही इटली का एक प्रमुख राज्य था जो कि चार्ल्स का मित्र बना रहा। अतएव चार्ल्स के चले जाने के बाद पुण्यसंघ के राजाओं ने उसके विरुद्ध हथियार उठाये। उनका कहना था और कोई २ इतिहासकारों ने इसका समर्थन भी किया है, कि उनका उद्देश्य विदेशी फरासीसियों को इटली से निकाल बाहर करने का था, अर्थात् उनकी नीति देश-प्रेम के भावों से प्रेरित थी। अतएव फ्लोरेंस का पुण्य-संघ में सम्मिलित न होना देश-द्रोह के समान था। और सावोनारोला ही फ्रांस से मित्रता बनाये रखने का प्रमुख समर्थक था। फ्लोरेंस तथा सावोनारोला पर किये गये इस दोषारोपण पर विचार करते समय यदि हम इटली के शासकों की सूक्ष्म राजनीतिक तथा मनोवैज्ञानिक विवेचना न करें तो ठीक निर्णय पर कदापि नहीं पहुँच सकते। पुण्य-संघ के सदस्य कहां तक स्वातन्त्र्य व स्वदेश-प्रेम से प्रेरित थे? एक

सदस्य तो स्वयं लूदोविको था जिसने कि पहिले पहिल चार्ल्स को इटली पर चढ़ाई करने के लिये बुलाया था। दूसरा सदस्य था पोप एलेक्झेंडर, जिसने कि चार्ल्स को गुप्त रीति से प्रोत्साहन दिया था और जिसकी कूटनीति स्वार्थ के सन्मुख सचाई व देश-हित को कुछ नहीं समझती थी। तीसरा सदस्य स्पेन का राजा था जिसके वंश के लोग नेपिल्स पर राज्य कर रहे थे। यदि इटली से यवनों को निकालना ही पुण्य-संघ का पुनीत ध्येय था तब विदेशी स्पेनवासियों को नेपिल्स में स्थान ही कहां था ? किन्तु बात बिलकुल दूसरी ही थी। एक और सदस्य थे जर्मन-सम्राट्। जब इन सबने देखा कि चार्ल्स की विजय के कारण इन के स्वार्थ संकट में हैं तब वे सब मिल गये। मतलब सबके अलग २ थे, लेकिन एक ही शत्रु के सभी विरोधी थे, इस कारण उनके ध्येय में बाह्य एकता दीखती थी। इसके अतिरिक्त सब फ्लोरेंस के नवीन प्रजातन्त्र से द्वेष रखते थे। पुण्य-संघ के सदस्यों की देशभक्ति का उदाहरण इस घटना से मिल सकता है कि कुछ साल के बाद इन्हों ने वेनिस के विरुद्ध, जो कि एक इटालियन राज्य था, हथियार उठाये और यवनों की सहायता ली। अतएव उस समय की परिस्थिति व राजनीतिक मनोवृत्ति का विचार करते हुए यह कहना अनुचित होगा कि फ्लोरेंस ने देश-द्रोह की नीति से काम लिया। देश-प्रेम व देश-भक्ति की तो वहाँ बात ही नहीं थी, प्रश्न था अपने २ स्वार्थ का, फ्लोरेंस को अपनी स्वतंत्रता व प्रजासत्ता के हित के लिये फरासीसियों से

मित्र भाव रखना ही श्रेयस्कर जँचा और सावोनारोला की प्रेरणा से इसी नीति को उन्हों ने अपनाया। पुण्य-संघ का देश-प्रेम का ढोंग निरा पाखण्ड था। आने वाली घटनाओं ने इसका भण्डा-फोड़ कर दिया।

चार्ल्स के चले जाने के बाद फ्लोरेंस प्रजातन्त्र का नाश करने की इच्छा से वेनिस सरकार तथा पोप ने पाइरो मेडिसी को उसकाना शुरू किया। उन्होंने फ्लोरेंस पर चढ़ाई करने के लिये उसे मदद देने की प्रतिज्ञा की। लूडोविको की पाइरो से व्यक्तिगत शत्रुता थी। लेकिन वह भी प्रजातन्त्र का कट्टर दुश्मन था और अराबियाटी दल से मिल कर फ्लोरेंस पर अपना प्रभुत्व जमाना चाहता था। इतने सहायकों को देख कर पाइरो की हिम्मत बढ़ी। जैसे तैसे उसने एक फ़ौज इकट्ठी की। यह तय हुआ कि एक तरफ से पाइरो की फ़ौज फ्लोरेंस राज्य पर चढ़ाई करे और दूसरी ओर से वेनिस और मिलेन की सेनायें। पोप ने किस प्रकार अपनी ही नीति से फ्लोरेंस पर वार किया, यह हम अगले अध्याय में कहेंगे। पोप और सावोनारोला के सम्बन्ध की इस समय वाली घटनाओं का वर्णन वहीं किया गया है। फ्लोरेंस की नौका फिर डगमगाने लगी। किन्तु उसका कर्णधार सन्यासी सावोनारोला था। उसे अपने आप में, फ्लोरेंसवासियों में तथा ईश्वरीय अनुकम्पा में विश्वास था। उसे यह अटल विश्वास था कि जब तक फ्लोरेंसवासी सन्मार्ग पर चलेंगे, तब तक ईश्वर उनकी रक्षा करेगा।

सावोनारोला जानता था कि नगर ही में एक ऐसा दल है जो गुप्त रीति से बाहरी की सहायता कर रहा है और मौक़ा पाते ही विद्रोह का झंडा उठावेगा। सावोनारोला ने ही इन लोगों को क्षमा दिलवाई थी। उसी के उपदेश के कारण जनता ने न तो उनसे अत्याचारों का बदला लिया, न उन्हें लूटा और न उन्हें देश से निकाला था। किन्तु इस दयाशीलता का कितना भयंकर परिणाम हुआ! प्रजातन्त्र के मित्र होना तो दूर रहा, प्रत्युत ये लोग उसके गुप्त शत्रु बन गये। बाहरी शत्रु का सामना करना सहज है। जो खुले आम दुश्मनी रखता है वह कम से कम धोखा तो नहीं देता। किन्तु जो शत्रु कपटवेष से मकान ही में छिपा हो वह नितान्त भयानक होता है। यह जानना मुश्किल होता है कि वह कहां है, उसकी शक्ति कितनी है, वह कब प्रहार करेगा। ख़ास कर जब कोई बाहरी शत्रु आक्रमण कर रहा हो उस समय तो घरेलू शत्रु कहीं अधिक भयंकर हो जाता है। सावोनारोला ने बार २ उनसे मैत्री स्थापित करने की चेष्टा की थी, उन्हें प्रेम व क्षमा से जीतना चाहा था। किन्तु सब निष्फल हुआ। अतएव उसकी क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो उठी। चारों तरफ से विपत्ति के बादल घिरे हुए थे। वह शत्रुओं को रोकने व स्वतंत्रता को बचाने की तय्यारी में अविश्रान्त परिश्रम कर रहा था। किन्तु घर ही में छिपे हुए कृतघ्न तथा विश्वासघाती देश-द्रोहियों के प्रति वह अपने स्वाभाविक क्षमा-दान के भावों को स्थिर नहीं रख सका। उपदेश मंच पर खड़े हो, क्रूश हाथ में ले,

उसने गरज कर कहा कि जो लोग राज्य में दासता व निरंकुशता की स्थापना करना चाहते हैं उनके साथ समझौता असम्भव है। उसने कहा—"एक व्यक्ति का शासन शैतान का शासन है। महासभा के द्वारा ही तुम्हारी रक्षा होगी। यदि तुम शक्ति और एकता के साथ उसकी रक्षा करोगे तो तुम्हें किसी से डरने की जरूरत नहीं। यदि तुम महासभा को तोड़ोगे तो तुम्हारा सत्यानाश हो जावेगा। यदि तुम देखो कि कोई मनुष्य इस प्रजातन्त्र की बुराई कर रहा है तो उसे जनता का शत्रु समझो तथा ईसा से द्रोह करने वाला मानो। उसके साथ न्याय करो—उसका सिर काट डालो। चाहे वह किसी घराने का प्रधान ही क्यों न हो, उसका सिर काट डालो।"

ये अत्यन्त रोषपूर्ण शब्द हैं। इतिहास में बारम्बार देश सेवकों को स्वतन्त्रता की रक्षा में इसी नीति का समर्थन करना पड़ा है। संसार के साधारण मनुष्य इसकी आवश्यकता एवं औचित्य में कोई शंका नहीं करते। विकट परिस्थिति के वशीभूत हो उच्च विचार के लोगों ने भी बहुधा इसे अनिवार्य समझा है। जिस उद्देश्य को सामने रख कर व जिस संकटमय वातावरण में सावोनारोला को उपरोक्त वचन कहने पड़े, उसे हम समझ सकते हैं। तथापि जिस महान् आदर्श की सेवा के लिये उसका जीवन उत्सर्गीकृत था, जो पवित्र नैसर्गिक ज्योति उसके अन्तःकरण में थी, उसका ध्यान करते हुए यह कहना पड़ता है कि ऐसे कठोर एवं असहिष्णु शब्द उसके योग्य नहीं थे। यह उसके जीवन में

पहिला अवसर था कि उसके भाषण से हिंसा की ध्वनि निकली हो। तथापि यह सावोनारोला के लिये क्षणिक आवेश था। हिंसा की नीति कार्य रूप में परिणत नहीं की गई। फिर भी उसकी ध्वनि फ्लोरेंस के राजनीतिक वातावरण में तथा सावोनारोला के कुछ साथियों के हृदय में बहुत दिनों तक गूंजती रही।

राज्य की ओर से यह घोषणा कर दी गई कि पाइरो विद्रोही है, वह पोप तथा अन्य शासकों की मदद से फ्लोरेंस की आजादी छीनना चाहता है, इसलिये कोई भी उसका वध कर सकता है। पाइरो को रोकने के लिये फौज भी भेजी गई। पाइरो अपनी सेना के साथ आगे बढ़ा किन्तु मित्र-राज्यों की फौजें समय पर नहीं आई और अकेले अग्रसर होने की उसकी हिम्मत नहीं हुई। कुछ समय तक वह अस्थिर व अकर्मण्य भाव से फ्लोरेंस की सीमा के निकट मित्र राज्यों की मदद की राह देखता रहा। किन्तु पारस्परिक द्वेष-विद्वेष के कारण वह नहीं आ सकी। पाइरो कब तक प्रतीक्षा करता? उसके पास धन की कमी थी। वह अपने सैनिकों को नियमित रूप से वेतन देने में असमर्थ था। इसलिये उसके सैनिकों ने उसे छोड़ दिया। फ्लोरेंस में भी उसके साथियों ने विद्रोह का झंडा नहीं उठाया। लाचार होकर उसे फ्लोरेंस पर हमला करने का विचार स्थगित कर देना पड़ा। थोड़े से साथियों के साथ भाग कर उसने पोप के दरबार में शरण ली। फ्लोरेंस एक बार फिर बिना रक्तपात के संकट से बच गया। पीसा को जीतने के लिये दुगने उत्साह से प्रयत्न होने लगा।

सन् १४९५ ईस्वी के अन्त में सावोनारोला का यश और प्रभाव चरमसीमा तक पहुँच गया। फ्लोरेंस स्वतन्त्र था। प्रजा-सत्ता का संगठन हो चुका था। चार्ल्स का भय जाता रहा था। पाइरो पराजित होकर यहाँ वहाँ भटक रहा था। फ्लोरेंस में उच्चतर जीवन की ज्योति प्रकाशित हो रही थी। जो आदेश गिरजाघर के उपदेश मंच से सावोनारोला देता था, उसे शासन-समितियें व सभायें नतमस्तक होकर स्वीकार करती थीं। वह फ्लोरेंस का नवजीवन-विधाता था, वही उसकी आशा व शक्ति का आधार था। सब संकट टल चुके थे परन्तु सावोनारोला ने विश्राम नहीं लिया। वह डोमिनीशयन संप्रदाय के विस्तार तथा फ्लोरेंस के नैतिक सुधार में तन मन से लग गया। इसी समय उसपर एक नयी दिशा से वज्रप्रहार होता है और उस प्रलयंकर तूफान का प्रारंभ होता है जिसमें पड़कर उसे अन्त में आत्म-बलि देकर ही शान्ति मिलती है। यह नवीन शत्रु था-ईसाई-धर्म-संप्रदाय का सिरताज, ईसा का उत्तराधिकारी, पोप एलेक्जेंडर—लंपटता, कुटिलता व पाखण्ड की सजीव प्रतिमा रोड्रिगो बोर्जिया।

---

(१२)

सावोनारोला और पोप एलेक्जेंडर

यद्यपि सावोनारोला ने अपने भाषणों व लेखों में तत्कालीन पुरोहितों व पुजारियों की तीव्र निन्दा व कड़ी आलोचना की थी तथापि वह व्यक्तिगत आक्षेपों से दूर रहता था। यही कारण था कि पोप एलेक्जेंडर ने बहुत दिनों तक सावोनारोला की बातों पर कोई ध्यान नहीं दिया। किन्तु जब पोप ने पुण्य-संघ का संगठन किया और सावोनारोला के प्रभाव के कारण फ्लोरेंस उसमें सम्मिलित नहीं हुआ, तब उसका ध्यान सावोनारोला की ओर गया। चार्ल्स के प्रस्थान के बाद फ्लोरेंस के शत्रु सावोनारोला के विरुद्ध पोप को उभारने की कोशिशें करने लगे। लुडोविको तथा अराबियाटी-दल ने पोप की कोपाग्नि प्रज्वलित करने के लिये तरह २ के षड्यन्त्र करना प्रारम्भ किया। उसके पास इस आशय के पत्र भेजे जाने लगे कि सावोनारोला बड़ी धृष्टता से आप के चरित्र पर व्यक्तिगत आक्षेप कर रहा है। सावोनारोला के भाषणों के विकृत विवरण, जिनमें कि झूठी बातें जोड़ दी जातीं अथवा इधर उधर उलट-फेर कर उनका अर्थ ही बदल दिया जाता, पोप के पास भेजे जाने लगे। उससे कहा गया कि सावोनारोला दिव्यदृष्टि, भविष्यवाणी तथा ईश्वर से प्रत्यक्ष साक्षात्कार का दावा करता और लोगों को धोखा देकर अपना

आर्थिक एवं राजनीतिक प्रलोभन देकर उन्हें सावोनारोला का विरोधी बनाया। अस्तु।

उपरोक्त कूटनीति के अनुसार २१ जुलाई १४९५ को पोप ने सावोनारोला को एक पत्र लिखा जिसका आशय इस प्रकार था—"हमने तुम्हारी धर्म-निष्ठा व उत्साह की प्रशंसा सुनी है। इससे हमें हर्ष हुआ और हम परमात्मा को धन्यवाद देते हैं। हमने यह भी सुना है कि तुम भविष्य की बातें बतलाने का दावा करते हो और यह कहते हो कि यह सब तुम ईश्वर की ओर से कहते हो। इसलिये हम अपना कर्त्तव्य समझते हैं कि इस सम्बन्ध में तुम से बात-चीत करें और तुम्हारे द्वारा ईश्वर की इच्छा जान कर उसे और भी अच्छी तरह पूर्ण कर सकें। अत-एव आज्ञा पालन का जो व्रत तुमने लिया है उसके नाते हम कहते हैं कि बिना विलम्ब तुम हमारे सन्मुख उपस्थित होओ। हम प्रेम और सद्भाव से तुम्हारा स्वागत करेंगे।"

इस प्रकार मीठे शब्दों में लिखने का मतलब यही था कि सावोनारोला निःशंक भाव से रोम आकर पोप के हाथ में पड़ जावे। फ्लोरेंस में अराबियाटी दल के लोग दो बार उसके प्राण लेने की विफल चेष्टा कर चुके थे। रोम में उनका दबदबा था। पोप की धूर्तता सभी लोग जानते थे। अतएव लोग यह समझ गये कि यदि सावोनारोला ने रोम के लिये प्रस्थान किया तो या तो वह रास्ते में ही मार डाला जायगा या पोप उसे पकड़ कर सन्त एंजेलो के क़िले की किसी काल कोठरी में ए[illegible]ने के लिये

डाल देगा। सावोनारोला अभी बीमारी से उठा था और उसके चिकित्सकों की यह राय थी कि यदि उसने व्याख्यान व अध्ययन का परिश्रम वहन किया तो उसकी जान संकट में पड़ जायगी। अतएव सावोनारोला ने यह निश्चय किया कि मैं उपदेश देना स्थगित कर दूं और पत्र लिख कर पोप को समझा दूं कि किन२ कारणों से तत्क्षण रोम आना मेरे लिये असम्भव है। ता० २८ को डुआमो में जनता की एक महती सभा हुई। प्रजातन्त्र के बड़े २ अधिकारी और कर्मचारी भी वहां उपस्थित थे। कृश-शरीर म्लान-मुख सावोनारोला उपदेश-मंच पर आया। उसे श्रोताओं से विदा लेना थी। वह जानता था कि उस पर प्रहार कर उसके शत्रु वास्तव में फ्लोरेंस की स्वाधीनता पर ही प्रहार कर रहे हैं। उसकी यह धारणा थी कि अनाचार व अनैक्य ही निर्बलता की जड़ हैं और दुष्टात्मा ही स्वतन्त्रता के पक्के शत्रु हैं। अतएव इस अवसर पर उसने पापों और पापियों का उन्मूलन करने का सन्देश दिया। इसके अनन्तर उसने लोगों को ईश्वर का भय मानने, शान्त रहने तथा सार्वजनिक कल्याण का ध्यान रखने का उपदेश दिया। उसने कहा कि जब तक महासभा है तभी तक तुम्हारी स्वाधीनता भी सुरक्षित है। महासभा के सदस्यों को सदाचारी और कर्त्तव्य-निष्ठ होना चाहिये। मत-भेद, दलबन्दी, वैमनस्य को दूर करने की चेष्टा करो। फ्लोरेंस के शत्रु बहुत हैं, उनसे सचेत रहो, उन्हें निर्मूल करने का प्रयत्न करो। इसी समय पाइरो का आक्रमण होने वाला था जिसको

[illegible] अध्याय में की जा चुकी है। अंत में विदा लेते हुए [illegible] ने कहा—"मेरे स्थान पर अब सन्यासी डोमिनिको [illegible] करेंगे। यदि मैं जीवित रहा तो फिर उपदेश दूंगा। [illegible] कुछ भी हो, फ्लोरेंस के सार्वजनिक कल्याण पर [illegible] दिया जायगा। पापीगण कितनी ही कोशिश क्यों न [illegible] ईश्वर की यह इच्छा है कि यह बीज फलेगा। आज मैं तुम [illegible] कह दूं कि तुम्हारे ऊपर विपत्ति लाने वाले कौन हैं। [illegible] मैं किसी का नुक़सान नहीं करना चाहता। जब वे दण्ड के लिये लाये जावेंगे तब तुम उन्हें जान लोगे। मैंने तुम्हें इतनी बार [illegible] दिया है, इतना अधिक परिश्रम किया है कि मैं अत्यन्त [illegible] हो गया हूँ और मेरे जीवन के दिन कम हो गये हैं। हां, [illegible], इन सब का पुरस्कार तुम क्या चाहते हो ? मैं शहीद होना चाहता हूं, उसे सहन करने के लिये मैं उद्यत हूँ। इस नगर के प्रेम के लिये मैं आत्म-बलि दे सकूं, यह [illegible] । से [illegible] मेरी प्रार्थना है।"

छोड़ देना पड़ा है। किन्तु अब भी मेरे प्राण संकट में हैं। इसके अतिरिक्त एक कारण और है। ईश्वर की कृपा से मेरे द्वारा बिना रक्तपात के इस नगर का उद्धार हुआ है। यहां अच्छे २ नियम बनाये गये हैं। किन्तु नगर के भीतर और बाहर बहुत से शत्रु हैं जो उसे गुलाम बनाना चाहते हैं और इसीलिये मेरे प्राणों के ग्राहक बने हुए हैं। नवीन-शासन-योजना की जड़ भी अभी पक्की नहीं हुई है। नगरवासियों का यह कहना है कि मेरे चले जाने से नगर की बड़ी हानि होगी। मैं नहीं मान सकता कि आप इस नगर का सर्वनाश चाहते हैं अतएव उसके कल्याण के लिये मेरे वहां आने में जो विलम्ब होगा, उसे आप कृपा कर क्षमा करेंगे। इटली का दण्ड, चर्च का पुनरुत्थान आदि सम्बन्धी मेरी भविष्य-वाणी के सम्बन्ध में आप मुझ से बातचीत करना चाहते हैं। उनके बारे में मैंने एक पुस्तक लिखी है। वह प्रकाशित होगई है। इन बातों के प्रकाशित कराने का अभिप्राय यही है कि भविष्य-वाणी पूरी न हो तो संसार को यह मालूम हो जाय कि हैं झूठा भविष्यद्वक्ता हूँ।"

पोप इन दलीलों का क्या उत्तर देता? उसने सावोनारोला का निवेदन स्वीकार किया। किन्तु उसे अपने पंजे में न फंसा सकने के कारण वह मन ही मन कुढ़ता रहा।

सहसा आठवीं सितम्बर को पोप ने एक नयी आज्ञा निकाली। इसमें सावोनारोला के पिछले पत्र का उल्लेख तक नहीं किया। पोप के पहिले पत्र से घनिष्टता व बाह्य सदाशयता

चर्चा पिछले अध्याय में की जा चुकी है। अंत में विदा लेते हुए सावोनारोला ने कहा—"मेरे स्थान पर अब सन्यासी डोमिनिको उपदेश दिया करेंगे। यदि मैं जीवित रहा तो फिर उपदेश दूंगा। परन्तु, चाहे कुछ भी हो, फ्लोरेंस के सार्वजनिक कल्याण पर सदैव ध्यान दिया जायगा। पापीगण कितनी ही कोशिश क्यों न करें ईश्वर की यह इच्छा है कि यह बीज फलेगा। आज मैं तुम से यह कह दूं कि तुम्हारे ऊपर विपत्ति लाने वाले कौन हैं। लेकिन मैं किसी का नुकसान नहीं करना चाहता। जब वे दण्ड के लिये लाये जावेंगे तब तुम उन्हें जान लोगे। मैंने तुम्हें इतनी बार उपदेश दिया है, इतना अधिक परिश्रम किया है कि मैं अत्यन्त निर्बल हो गया हूँ और मेरे जीवन के दिन कम हो गये हैं। हां, भाई, इन सब का पुरस्कार तुम क्या चाहते हो ? मैं शहीद होना चाहता हूं, उसे सहन करने के लिये मैं उद्यत हूँ। इस नगर के प्रेम के लिये मैं आत्म-बलि दे सकूं, यही परमात्मा से प्रतिदिन मेरी प्रार्थना है।"

इसके बाद सावोनारोला ने पोप को पत्र लिखा और नम्रता, स्पष्टता तथा निर्भयता के साथ अपने रोम न आ सकने के कारणों को समझाया। उसका आशय यह था—

"मेरी उत्कट अभिलाषा थी कि रोम आकर सन्त पीटर तथा पाल के प्रसिद्ध गिरजाघरों के दर्शन करता और आप की आज्ञा का पालन करता। किन्तु मैं अभी तक एक दुःसाध्य रोग से पीड़ित रहा हूँ। उसके सबब से मुझे अध्ययन और उपदेश भी

छोड़ देना पड़ा है। किन्तु अब भी मेरे प्राण संकट में हैं। इसके अतिरिक्त एक कारण और है। ईश्वर की कृपा से मेरे द्वारा बिना रक्तपात के इस नगर का उद्धार हुआ है। यहां अच्छे २ नियम बनाये गये हैं। किन्तु नगर के भीतर और बाहर बहुत से शत्रु हैं जो उसे गुलाम बनाना चाहते हैं और इसीलिये मेरे प्राणों के ग्राहक बने हुए हैं। नवीन-शासन-योजना की जड़ भी अभी पक्की नहीं हुई है। नगरवासियों का यह कहना है कि मेरे चले जाने से नगर की बड़ी हानि होगी। मैं नहीं मान सकता कि आप इस नगर का सर्वनाश चाहते हैं अतएव उसके कल्याण के लिये मेरे यहां आने में जो विलम्ब होगा, उसे आप कृपा कर क्षमा करेंगे। इटली का दण्ड, चर्च का पुनरुत्थान आदि सम्बन्धी मेरी भविष्य-वाणी के सम्बन्ध में आप मुझ से बातचीत करना चाहते हैं। उनके बारे में मैंने एक पुस्तक लिखी है। वह प्रकाशित होगई है। इन बातों के प्रकाशित कराने का अभिप्राय यही है कि भविष्य-वाणी पूरी न हो तो संसार को यह मालूम हो जाय कि मैं झूठा भविष्यद्वक्ता हूँ।"

पोप इन दलीलों का क्या उत्तर देता ? उसने सावोनारोला का निवेदन स्वीकार किया। किन्तु उसे अपने पंजे में न फंसा सकने के कारण वह मन ही मन कुढ़ता रहा।

सहसा आठवीं सितम्बर को पोप ने एक नयी आज्ञा निकाली। इसमें सावोनारोला के पिछले पत्र का उल्लेख तक नहीं किया। पोप के पहिले पत्र से घनिष्टता व बाह्य सदाशयता

की ध्वनि निकलती थी परन्तु इस आज्ञा से तिरस्कार, प्रभुता व शुष्कता के भाव प्रगट होते थे। पोप ने घोषित किया कि "सावोनारोला नाम का एक सन्यासी" धर्म-विरुद्ध सिद्धान्तों का प्रचार कर रहा है और हमारे बहुत कुछ समझाने पर भी न अपनी हठ को छोड़ता और न पश्चात्ताप ही करता है। पोप ने संत मार्क के मठ को पुनः लॉबार्ड-परिषद् के आधीन कर दिया। सावोनारोला से कहा गया कि उक्त परिषद् के प्रधान की आज्ञा को बिना विलम्ब के मान कर, जहां वह कहें, चले जाओ। सावोनारोला को यह आज्ञा भी दी गई कि फ्लोरेंस में वह किसी प्रकार का उपदेश न दे। यदि वह इस आज्ञा को न मानेगा तो उसे धर्म बहिष्कार का दण्ड मिलेगा। इस प्रकार अचानक पोप ने सावोनारोला को उसके उच्च एवं स्वतन्त्र पद से गिराने तथा उसकी ओजमयी वाणी को बन्द करने के लिये आज्ञा घोषित की।

सावोनारोला को वास्तविक स्थिति समझते देर नहीं लगी। वह चाहता था कि प्रजातन्त्र की रक्षा भी हो और पोप की आज्ञा का उल्लघंन भी न करना पड़े। इस विचार से उसने पोप को एक लम्बा पत्र लिखा और उसे सब बातें अच्छी तरह से समझाते हुए अपनी निर्दोषिता प्रमाणित करने का प्रयत्न किया। इस पत्र से सावोनारोला के आत्म-विश्वास एवं स्वाभिमान के भावों के साथ २ उसकी चतुरता तथा नीतिमत्ता का भी स्पष्ट परिचय मिलता है। पोप ने कहा था कि धर्म-विरुद्ध सिद्धान्तों का प्रचार करता है। सावोनारोला ने उत्तर दिया कि भविष्यद्वाणी

न्यायाधीश बनाना है। प्रजातन्त्र फ्लोरेंस के शत्रुओं ने झूठे तथा द्वेषपूर्ण आक्षेपों द्वारा मेरे विरुद्ध आपके कान भर दिये हैं। मेरी प्रार्थना है कि मेरे इस निवेदन पर निष्पक्ष विचार किया जाय और मुझे क्षमा-दान कर उपरोक्त आज्ञा रद्द की जाय। रोमन चर्च मेरे लेखों की परीक्षा करे और यदि किसी प्रकार के धर्म-विरुद्ध साबित हों तो मैं उन में सुधार करने के लिये उद्यत हूँ। यह सावोनारोला के उत्तर का संक्षिप्त सार है।

पोप एलेक्जेंडर समझता था कि या तो सावोनारोला आज्ञा-उल्लङ्घन कर धर्म-विद्रोही बन जायगा, अन्यथा उसे स्वीकार कर अपने प्रभाव को नष्ट कर देगा। अर्थात् किसी भी तरह उसका कण्टक दूर हो जावेगा। किन्तु जिस स्थित-प्रज्ञता से सावोनारोला ने अपने बचाव में अकाट्य प्रमाण रखे और आज्ञा-पालन की इच्छा प्रगट की, उससे पोप की आशलता पर पानी फिर गया। कम से कम दिखावे के लिये तो उसे न्याय का स्वांग करना आवश्यक था। जब घुड़की से काम नहीं निकला तो उसने नरमी से अपना मतलब साधने को ठानी। वह चाहता था कि किसी प्रकार फ्लोरेंस से सावोनारोला का प्रभाव दूर हो जावे, जिस से पाइरो प्रजातन्त्र को सुभीते से उखाड़ सके। पोप ने सावोनारोला को जो प्रत्युत्तर दिया उसका सार यह है। "तुम्हारे उपदेशों के कारण ही फ्लोरेंस में भेद भाव और उत्पात बढ़ रहा है। तुम पाप के विरुद्ध अथवा एकता के पक्ष में न बोल कर भविष्यवाणी ही करते हो। इससे जनता में वैमनस्य फैलता

है। इसलिये हमने तुम्हें रोम आने के लिये कहा था। किन्तु अब हमें तुम्हारे पत्रों तथा अन्य लोगों के कहने से यह मालूम हुआ है कि तुमने भोलेपन के कारण ही गलतियाँ की हैं और हमारी आज्ञा को शिरोधार्य करने के लिये तैयार हो। अतएव हम तुम्हें आज्ञा देते हैं कि जब तक तुम हमारे सामने उपस्थित नहीं हो सकते अथवा जब तक हम तुम्हारे सम्बन्ध में दृढ़ निश्चय पर पहुँच कर किसी मनुष्य को इन सब बातों का निर्णय करने के लिये नियुक्त नहीं करते, तब तक तुम उपदेश देना बन्द कर दो। यदि तुम इस आज्ञा को मान कर चलोगे तो हम पिछली आज्ञाओं को वापिस ले लेंगे।"

जब यह लिखा-पढ़ी चल रही थी, उसी बीच में सावोनारोला को फ्लोरेंसवासियों को आत्म-रक्षा के लिये उत्साहित करने का अवकाश मिल गया था। पिछले अध्याय में हम देख चुके हैं कि किस प्रकार उसने प्रजातन्त्र के दुश्मनों का उन्मूलन करने का परामर्श दिया था। इस कठोर सम्मति का एक कारण यह भी था कि सावोनारोला को यह विदित था कि किसी भी समय उसका मुँह बन्द किया जा सकता व उसे फ्लोरेंस छोड़ने पर बाध्य भी किया जा सकता है। प्रजासत्ता की रक्षा की चिन्ता ने उसे उत्तेजित कर दिया था और वह क्षण भर के लिये निर्दय साधनों का समर्थक भी बन गया था। परन्तु जब पोप का तीसरा पत्र उसे मिला तब तक पाइरो का आक्रमण विफल हो चुका था। फ्लोरेंस की विपत्ति टल चुकी थी। सावोनारोला

पोप से निरर्थक कलह छेड़ना भी नहीं चाहता था। अतएव पोप की आज्ञा को मान कर उसने व्याख्यान देना बन्द कर दिया। फिर उसका स्थान डोमिनिको ने ग्रहण किया।

महीनों तक सावोनारोला मौन रहा। धीरे २ उसका स्वास्थ्य भी सुधरने लगा। सन् १४९६ की वसन्त ऋतु का आगमन हुआ। वार्षिक हर्षोत्सव, जो कि वसन्त के प्रारम्भ में मनाया जाता था, अब सन्निकट आने लगा। वह किस प्रकार मनाया जाय?

लारेन्जो के समय यह उत्सव किस प्रकार मनाया जाता था इस पर दो चार शब्द कह देना आवश्यक है। फ्लोरेंस के लोग इस प्रकार के उत्सवों को बहुत पसन्द करते थे। लारेन्जो ने इस उत्सव को उनके अधःपतन का एक साधन बनाया था। उत्सव के समय लोग सब काम-काज से छुट्टी ले लेते। नगर भर में सुरापान, नाच रंग, विषय भोग और लंपटता का नग्न प्रदर्शन होता। भोज होते, होलियां जलाई जातीं, स्त्री-पुरुष तथा बालक-बालिकायें लाज शर्म को तिलाञ्जलि दे कर अश्लील गीत गाते हुए उनके चारों तरफ़ नाचते। बालकों को तो इसमें विशेष आनन्द मिलता। वे लोगों का रास्ता रोक लेते और जब तक अपने खाने पीने के लिये उनसे धन वसूल नहीं कर लेते, तब तक उन्हें आगे बढ़ने ही नहीं देते थे। इसके बाद वे खूब खाते, मदिरा पीते और निर्लज्जता से नाचते गाते। फिर उन्मत्त हो कर एक दूसरे पर पत्थरों की वर्षा का खूनी खेल खेलते। इसका नतीजा यह होता कि हर साल बहुतों की जान चली जाती। इनकी

उच्छृङ्खलता को रोकना असम्भव सा हो गया था। स्वयं लारेन्जो ने इस उत्सव पर गाने के लिये अश्लील व कामोद्दीपक गीतों की रचना कर अपनी काव्य-प्रतिभा का परिचय दिया था। उन दिनों सतीत्व, संयम, शिष्टता व लज्जा को छुट्टी दे दी जाती, आसुरी वृत्तियों का नग्न नृत्य होता और स्त्री पुरुष अपनी काम-वासना को उत्तेजित और तृप्त करते।

कहा जा चुका है कि अराबियाटी दल सावोनारोला का कट्टर शत्रु था। उस दल के लोग कुलीन व धनी परिवार के थे। लारेन्जो के समय में इन्हें विषय-वासना की शिक्षा-दीक्षा मिली थी। किंतु सावोनारोला के कारण इन्हें सब प्रकार से मुंह की खानी पड़ी थी। वे चाहते थे कि मेडिसियों के पतन के बाद कुलीनों की सत्ता क़ायम हो—सावोनारोला ने जनसत्ता स्थापित की। वे विषय-भोग के गुलाम थे—सावोनारोला ने सदाचार व सुधार की आवाज बुलन्द की। इस कारण बहुत समय से वे अपनी भोग-लालसा को शान्त नहीं कर सके थे। परन्तु अब सावोनारोला का मुंह बन्द था। इससे इन लोगों को मौक़ा मिला। इनकी स्पर्धा बढ़ी। इन्होंने इरादा किया कि पुराने ढंग से ही १४९६ का हर्षोत्सव मनाया जाय जिससे उनकी उच्छृंखलता स्वच्छन्द क्रीड़ा कर सके। पर सावोनारोला ने संकल्प किया कि ऐसा नहीं होने दूंगा।

इस उत्सव को मनाने की प्रथा इतने दिनों से चली आती थी और फ्लोरेंस निवासी उसके इतने आदी हो गये थे कि उसे

एक दम बन्द करना असम्भव था। अतएव सावोनारोला ने उस में परिवर्तन कर उसे धार्मिक उत्सव का रूप देना चाहा। इस कार्य के लिये उसने बालकों को ही चुना और उनके सुधार द्वारा हर्षोत्सव को धार्मिकता में दीक्षित किया। सन्यासी डोमिनिको को बालकों के संगठन का कार्य सौंपा गया। इनका नाम रखा गया देवदूतों का दल। पाप के विरुद्ध संग्राम करने के लिये यह ईश्वर की सेना थी। बालक कई विभागों में बांट दिये गये। उन्होंने अपने सेनापति भी चुने। नियमों का विधान भी किया गया। इस सेना में बालक भी थे और बालिकायें भी। पहिले जिस स्थान पर जमा होकर तथा स्त्री-पुरुषों का रास्ता रोक कर वे जबरदस्ती अपने खाने पीने मौज उड़ाने के लिये रुपया इकट्ठा करते थे, वहां अब छोटी २ सुन्दर वेदियां बनवाई गईं। अब यहां खड़े होकर दीन-ग़रीबों की सहायता के लिये बालक-गण भिक्षा मांगते थे। सावोनारोला ने उनसे कहा कि जितना तुम्हारे मन में आवे गाओ, किन्तु गन्दे गीत नहीं, धार्मिक गीत गाओ और पवित्र मन्त्रों का उच्चार करो। स्वयं सावोनारोला ने उनके लिये कितने ही भजन बना दिये। पत्थरों का घातक खेल बन्द हो गया। मांसाहार व मदिरापान वाले भोज भी बन्द हो गये। बालकों ने दीन-ग़रीबों के लिये ३०० मुद्रायें इकट्ठी कीं। उत्सव के आख़िरी दिन एक जुलूस निकाला गया। स्वच्छ, श्वेत वस्त्र धारण कर, हाथ में क्रूश लिये, बालकगण क़तार बांध कर निकले और धार्मिक भजन गाते हुए नगर के प्रधान २ मार्गों में घूमे।

नवीनता से आकर्षित हो नगरवासी भी जुलूस में शामिल होगये।

पहिले हर्षोत्सव में होली जलाई जाती थी। अब भी वैसा ही हुआ किन्तु उसका रूप भिन्न था। यह होली थी भोग-विलास वाह्याडम्बर अथवा कामोद्दीपन की सामग्री की। राजभवन के चौक में बालकों ने इसको एकत्रित किया था। वारीकर व महीन वस्त्र, जिनके द्वारा लज्जा-संवरण का सावधानता के साथ विफल प्रयत्न कर निर्लज्जता को और भी अधिक मोहक रूप दिया जाता है, गन्दे चित्र, अश्लील पुस्तकें, कामोद्दीपन तथा शृंगारपूर्ण मूर्तियां, जिनके द्वारा कला अपने पवित्र ध्येय से च्युत हो विलासिता की मोहिनी दासी बन जाती है, जुआ खेलने के पांसे व तख्ते, छद्म वेष तथा स्वांग रचने की सामग्री, कृत्रिम केश, उबटन का सामान—इत्यादि का ऊंचा ढेर लगा हुआ था। सब के ऊपर पुराने हर्षोत्सव के अधिनायक का विकृत चित्र लगा हुआ था। यह सब नूतन होली का ईंधन था। होली प्रज्वलित हुई, बालक वृद्ध, नर-नारी, साधु-पुरोहित सब लोग भजन गाते हुए सानन्द उसकी परिक्रमा करने लगे।

बालकों का संगठन केवल हर्षोत्सव के पवित्रीकरण के लिये ही नहीं किया गया था। यह संगठन स्थायी था। इसका ध्येय था सार्वजनिक नैतिक सुधार, सरल पवित्र, त्यागमय जीवन का प्रचार, विलासिता व पापाचार के विरुद्ध अनवरत प्रयास। ये स्वयंसेवक लोगों से कहते फिरते कि जुआ खेलना व शराब पीना बन्द कर दो, दिखाऊ कपड़े मत पहिनो, उपासना मन्दिर में निय-

मित रूप से जाया करो। नगर में जो लोग पापकर्म तथा क़ानून-विरुद्ध आचरण करते उसकी खबर वे लोग अधिकारियों तक पहुँचाते। वे घोषित करते फिरते कि "प्रभु ईसा ही फ्लोरेंस के शासक हैं।"

लोग सावोनारोला का वचनामृत पान करने के लिये अधीर हो रहे थे। उन्हें परामर्श व सहायता की जरूरत भी थी। पीसा से जो युद्ध चल रहा था उसमें फ्लोरेंस को कोई सफलता नहीं मिल रही थी। चार्ल्स के अफसरों ने उसकी प्रतिज्ञा के विरुद्ध काम किया था। उन्होंने पीसा का वह दुर्ग, जिस को फ्लोरेंस निवासियों ने अपने खर्च से बनवाया था, पीसा वालों को बेचकर अपनी मुट्ठी गरम की। सरजाना का क़िला उन्होंने जेनेवा को बेच दिया। सावोनारोला ने फ़रासीसियों की मित्रता से जो आशायें दिलवाई थीं वे पूरी नहीं हुईं। लोगों ने सोचा सम्भव है कि सन्यासी की मुंहबन्दी के कारण ही हम पर ये विपत्तियां आई हों। यदि उसके द्वारा हम पुनः ईश्वर का आदेश सुनने लगें तो सम्भव है कि भाग्य पलटा खा जाय। फ्लोरेंस सरकार भी पोप से इस सम्बन्ध में लिखा पढ़ी कर रही थी कि सावोनारोला को उपदेश देने की अनुमति दी जाय। फ्लोरेंस के राजदूत तथा सावोनारोला के अन्य मित्र इसके लिये चेष्टा कर रहे थे। पोप ने एक विद्वान् धर्माचार्य से सावोनारोला के लेखों तथा वक्तृताओं की परीक्षा करवाई और पूछा कि सावोनारोला के विरुद्ध अभियोग लगाने की सामग्री इनमें है अथवा नहीं। विद्वान्

परीक्षक ने उनका सावधानी से अनुशीलन किया और कहा कि इनमें ईसाई धर्म के सिद्धान्तों के विरुद्ध एक भी बात नहीं है। उसने कहा यह व्यक्ति तो बड़ा धर्मात्मा एवं विद्वान है, इसका सम्मान कर इसे अपना मित्र बना लेना चाहिए। फ्लोरेंस के राजदूत ने पोप को यह विश्वस दिलाया कि भविष्य में सावोनारोला रोम के विरुद्ध भाषण नहीं देगा। अतएव पोप ने बाधा अनुमति तो दे दी किन्तु निषेधाज्ञा वापिस नहीं ली। इसके अतिरिक्त उसने एक सन्यासी को सावोनारोला के पास यह सन्देश लेकर भेजा कि यदि वह भविष्य में रोम, पोप तथा पादरियों की निन्दा न करने की प्रतिज्ञा करे तो उसे पोप अपनी धर्म-सभा का सभ्य (कार्डिनल) बनाने के लिये तैयार है। यह एक स्पष्ट प्रमाण था कि पोप धार्मिक पदों का रिश्वत व घूस के लिये दुरुपयोग करता है। सावोनारोला का क्रोध भड़क उठा। उसने इस सम्माननीय उच्च पद को ठुकरा दिया।

पोप ने सावोनारोला को उपदेश मंच पर आने की अनुमति

आया। बहुत दिनों तक पोप ने इस पर कोई आपत्ति नहीं की। इससे यही सिद्ध होता है कि उसने किसी न किसी रूप में अनुमति अवश्य दे दी थी।

डुओमो के सभाभवन में दुःख, क्रोध तथा विषाद के साथ सावोनारोला लोगों के सामने आया। उसके शत्रुओं की संख्या बढ़ रही थी। वे उसकी जान लेने पर तुले हुए थे और कई बार इसका प्रयत्न भी कर चुके थे। राज्य की ओर से सावोनारोला की शरीररक्षा का प्रबन्ध किया गया था। भवन में लोग ठसाठस भरे हुए थे। तिल रखने को जगह नहीं थी। सब की आंखें उसी पर केन्द्रित थीं। सर्वत्र निस्तब्धता थी। सावोनारोला की आंखों में मानो भट्टी जल रही थी। जिस प्रवाह को पामर एलेक्जेंडर ने धमकी व प्रलोभन के द्वारा संयत करने की चाल चली थी, वह आज द्विगुणित वेग के साथ उमड़ पड़ा। आज उसे फ्लोरेंस को यह समझना था कि वह पोप को, ईसाई संसार के अधिपति को, किस दृष्टि से देखता है। उसने कहा कि जहां धार्मिक सिद्धांतों का प्रश्न है वहां मैं रोमन चर्च की आज्ञा मानने को तय्यार हूं। किन्तु यदि पोप रोमन चर्च के सिद्धान्तों तथा धर्म-ग्रन्थों के प्रतिकूल आज्ञा दे तो वह पोप नहीं रह जाता और ऐसी स्थिति में उसकी आज्ञा भंग की जा सकती है। इसी आधार पर वह कहता है कि कोई भी सांसारिक शक्ति मुझे फ्लोरेंस छोड़ने को बाध्य नहीं कर सकती। "जब मैं यह देख रहा हूँ कि मेरे चले जाने से इस नगर का भौतिक व आध्यात्मिक सत्यानाश हो

परीक्षक ने उनका सावधानी से अनुशीलन किया और कहा कि इनमें ईसाई धर्म के सिद्धान्तों के विरुद्ध एक भी बात नहीं है। उसने कहा यह व्यक्ति तो बड़ा धर्मात्मा एवं विद्वान है, इसका सम्मान कर इसे अपना मित्र बना लेना चाहिए। फ्लोरेंस के राजदूत ने पोप को यह विश्वस दिलाया कि भविष्य में सावोनारोला रोम के विरुद्ध भाषण नहीं देगा। अतएव पोप ने बाचा अनुमति तो दे दी किन्तु निषेधाज्ञा वापिस नहीं ली। इसके अतिरिक्त उसने एक सन्यासी को सावोनारोला के पास यह सन्देश लेकर भेजा कि यदि वह भविष्य में रोम, पोप तथा पादरियों की निन्दा न करने की प्रतिज्ञा करे तो उसे पोप अपनी धर्म-सभा का सभ्य (कार्डिनल) बनाने के लिये तैयार है। यह एक स्पष्ट प्रमाण था कि पोप धार्मिक पदों का रिश्वत व घूस के लिये दुरुपयोग करता है। सावोनारोला का क्रोध भड़क उठा। उसने इस सम्मानीय उच्च पद को ठुकरा दिया।

पोप ने सावोनारोला को उपदेश मंच पर आने की अनुमति दी अथवा नहीं, इस पर इतिहासकारों में मतभेद है। यह प्रगट है कि नियमित रूप से निषेधाज्ञा रद्द नहीं की गई। परन्तु बहुत से समकालीन इतिहासकार व लेखकों का यह मत है कि साधारण बातचीत में पोप ने यह कह दिया था कि यदि सावोनारोला अन्यान्य उपदेशकों के समान ही भाषण दे तो उसे अनुमति दी जा सकती है। कुछ भी हो, १७ फरवरी १४९६ को सावोनारोला सिंन्योरी के निमन्त्रण को स्वीकार कर, उपदेश मंच पर

आया। बहुत दिनों तक पोप ने इस पर कोई आपत्ति नहीं की। इससे यही सिद्ध होता है कि उसने किसी न किसी रूप में अनुमति अवश्य दे दी थी।

डुओमो के सभाभवन में दुःख, क्रोध तथा विषाद के साथ सावोनारोला लोगों के सामने आया। उसके शत्रुओं की संख्या बढ़ रही थी। वे उसकी जान लेने पर तुले हुए थे और कई बार इसका प्रयत्न भी कर चुके थे। राज्य की ओर से सावोनारोला की शरीररक्षा का प्रबन्ध किया गया था। भवन में लोग ठसाठस भरे हुए थे। तिल रखने को जगह नहीं थी। सब की आंखें उसी पर केन्द्रित थीं। सर्वत्र निस्तब्धता थी। सावोनारोला की आंखों में मानो भट्टी जल रही थी। जिस प्रवाह को पामर एलेक्जेंडर ने धमकी व प्रलोभन के द्वारा संयत करने की चाल चली थी, वह आज द्विगुणित वेग के साथ उमड़ पड़ा। आज उसे फ्लोरेंस को यह समझना था कि वह पोप को, ईसाई संसार के अधिपति को, किस दृष्टि से देखता है। उसने कहा कि जहां धार्मिक सिद्धांतों का प्रश्न है वहां मैं रोमन चर्च की आज्ञा मानने को तय्यार हूं। किन्तु यदि पोप रोमन चर्च के सिद्धान्तों तथा धर्म-ग्रन्थों के प्रतिकूल आज्ञा दे तो वह पोप नहीं रह जाता और ऐसी स्थिति में उसकी आज्ञा भंग की जा सकती है। इसी आधार पर वह कहता है कि कोई भी सांसारिक शक्ति मुझे फ्लोरेंस छोड़ने को बाध्य नहीं कर सकती। "जब मैं यह देख रहा हूँ कि मेरे चले जाने से इस नगर का भौतिक व आध्यात्मिक सत्यानाश हो

जावेगा, तब चाहे कोई भी मनुष्य मुझे यहां से चले जाने के लिये कहे, मैं उसकी आज्ञा कदापि न मानूंगा क्यों कि ऐसा करने से ईश्वर की आज्ञा का उल्लंघन होगा।"

सावोनारोला की यह धारणा थी कि भविष्यद् वाणी करना ईसाई-धर्म के विरुद्ध नहीं है। इसके सिवाय कोई भी शक्ति उसे पाप व पतन की निन्दा करने से नहीं रोक सकती थी। यदि वह स्वार्थ-सेवी होता, यदि सांसारिक यश व उच्च पद की चाह उसे होती, तो वह अपनी स्वातन्त्रता बेच कर पोप से मेल कर लेता और चुप बैठ जाता। किन्तु वह तो उस आध्यात्मिक स्वातन्त्र्य का पुजारी था जिसे दबाना संसार के लिये असम्भव है। इसी-लिये भयभीत होना व चुप रहना तो दूर रहा, वह अपने व्याख्यानों में और भी अधिक प्रचण्डता एवं तीव्रता के साथ रोम, चर्च व इटली के पापों की निन्दा करने लगा। वह कहता है—"हे रोम! तैयार हो जाओ क्यों कि तुम्हें भीषण दण्ड मिलने वाला है। तुम्हारा स्वास्थ्य नष्ट हो गया है, तुम ईश्वर से विमुख हो गये हो, पापों और कष्टों ने तुम्हें ग्रस लिया है। यदि तुम इस रोग से मुक्त होना चाहते हो तो भोज को तिलांजलि दे दो, घमण्ड, अधिकार-लालसा, कामुकता तथा लोभ को त्याग दो। यही तुम्हारे रोग के कारण हैं। इन्हीं से तुम्हारी मृत्यु होगी।"

जिस निर्भीकता से सावोनारोला ने परिस्थिति का सामना किया उसके सन्मुख यह प्रश्न अनावश्यक हो जाता है कि पोप ने उसे अनुमति दी थी व नहीं। सावोनारोला के विचारों को

दबाना असम्भव है। जो पथ उसने अपने लिये निर्धारित कर लिया है उसे वह ईश्वर-निर्दिष्ट समझता है, अतएव कोई भी सांसारिक शक्ति-पोप तक-उसे उससे विमुख नहीं कर सकती। वह पाखण्ड और पाप का शत्रु है। धर्म सदाचार और स्वतन्त्रता का मित्र है। उसका विश्वास है कि ईश्वर उसके साथ है! वह संसार में निर्भय है क्यों कि उसे ईश्वर का भय है। वह ईश्वर के आगे नतमस्तक है अतएव अपनी आत्मा के विरुद्ध संसार की किसी भी सत्ता के सामने सिर नहीं झुका सकता। पोप उस पर प्रहार करने को उद्यत हैं, फ्लोरेंस के शत्रु बढ़ रहे हैं, फ्रांस निष्क्रिय है, अराबियाटी दल के लोग उसके रक्त के प्यासे हैं—उपदेश मंच पर, मठ में, रास्ते में, चाहे छुरी से, चाहे विष द्वारा, कहीं भी, किसी प्रकार, उसके प्राण लेने का सौदा ढूंढ रहे हैं,-तथापि वह उसी आत्म-स्वातन्त्र्य व निर्भयता के साथ अपने ईश्वर-निर्धारित पथ का अनुसरण कर रहा है। वह जानता है कि यह मार्ग कहां समाप्त होगा। इस समय दिये गये भाषणों में एक स्थल पर वह अपने आप से पूछता है-"मेरे सम्बन्ध में इस युद्ध का परिणाम क्या होगा?" और स्वयं उत्तर देता है—"आत्म बलिदान, मृत्यु।"

राजनीतिक दलबन्दी से वह कितनी दूर था यह उसके भाषण के इस उद्धरण से स्पष्ट है—"मैंने सुना है कि कोई कोई लोग ऐसे हैं जो कहते हैं कि अमुक व्यक्ति को वोट दो क्योंकि यह सन्यासी के दल का है। क्या मैंने तुम्हें यही सिखलाया है? सिवाय ईसा और धर्मात्मा लोगों के मेरा कोई भी मित्र नहीं है।

इसलिये ऐसा मत कहते फिरो। मेरा इन बातों से कोई सम्बन्ध नहीं। ऐसा करने से मत-भेद बढ़ेगा। उन्हीं को वोट दो जिन्हें कि तुम्हारी विविक-बुद्धि साधु एवं बुद्धिमान समझती हो।"

दलबन्दी के भाव, अनुदारता, अधिकार-लालसा, आदि इस दृष्टिकोण से कितनी दूर व कितने तुच्छ दीख पड़ते हैं।

सिग्योरी की प्रार्थना पर राजभवन में—व्याख्यान देते हुए उसने कहा—

"मैंने पाप की निन्दा की है तथापि किसी पर व्यक्तिगत आक्षेप नहीं किया। वे लोग मेरे साथ भारी अन्याय करते हैं जो यह कहते फिरते हैं कि मैं राजकीय मामलों में हस्तक्षेप करता हूं। मैंने कभी तुम्हारे मामलों में हस्तक्षेप नहीं किया। अकेले में व सब लोगों के सामने मैं हमेशा यही कहता रहा हूं और आज भी उसे दुहराये देता हूँ कि यह मेरा काम नहीं है; और यदि मैं कोई हस्तक्षेप करने की कोशिश करूँ भी, तो किसी को मेरी बात सुनना ही नहीं चाहिये। हां, मैंने सर्वसाधारण के कल्याण व स्वातन्त्र्य के लिये समुचित क़ानून बनाने की सलाह अवश्य दी है। हां, मैंने वैमनस्य को अवश्य रोका है और जनता को शान्त रखा है। किन्तु यह सब बात तो ईश्वर की महिमा के लिये ही है। परन्तु लोग इस सत्कार्य के लिये भी मुझे दण्ड देना चाहते हैं। वे कहते फिरते हैं—सन्यासी धन चाहता है, उसके गुप्तचर हैं, वह शासक बनना चाहता है, वह कार्डिनल बनना चाहता है। मैं तुमसे कहता हूं कि यदि मेरी इन सब चीजों को पाने की

इच्छा होती तो इस वक्त मैं तुम्हारे सामने फटे कपड़े पहिने हुए खड़ा नहीं रहता। हे ईश्वर! मैं केवल आप ही की प्रतिष्ठा चाहता हूं। न मुझे कार्डिनल के टोप की जरूरत है, न विशप के ताज की। मैं तो केवल यही वरदान चाहता हूं जो कि आपने अपने भक्त साधु-सन्तों को दिया है। यह है —मृत्यु, रक्त-रंजित मुकुट। इसी को पाने की मेरी मनोकामना है।"

वह भी एक समय था जब कि फ्लोरेंस सावोनारोला के वचनों पर नाचता था। वह सन्यासी के उदार पुनीत एकाधिपत्य का जमाना था।।जब कि स्वतन्त्रता की प्राप्ति हुई, प्रजातन्त्र शासन विधान की स्थापना हुई, नगर में पवित्र नवजीवन का आविर्भाव हुआ—वह जमाना था सन्यासी की विजय और सफलता का। जिस आदर्श की कर्ममय उपासना में उसने यह सब किया था, उसी की साधना में आज उसे एक सोते हुए सिंह को जगाना पड़ा है;—पोप का आदेश, उसकी धमकी तथा प्रलोभन को लात मार उसकी भीषण क्रोधाग्नि को प्रज्वलित करना पड़ा है। क्या फ्लोरेंस वासियों में वह कृतज्ञता, वह साहस वह तेज एवं वह संस्कार है कि वे सन्यासी का साथ दें और पोप के अस्त्र-शस्त्रों का वार अपनी छाती पर झेलें? सन्यासी पर विपत्तियां आ रहीं हैं, फ्लोरेंस पर भी विपत्तियां आ रही हैं। सन्यासी फ्लोरेंस की सेवा कर अपने को मिटाता रहेगा। क्या फ्लोरेंस भी, कम से कम कृतज्ञता के रूप में, उसके लिये कुछ साहस कर सकेगा? अगले अध्यायों में हमें इसका उत्तर मिलेगा।

(१३)
विपत्तियाँ

पिछले तीन चार वर्षों में फ्लोरेंस को जिन २ कठिनाइयों का सामना करना पड़ा उससे उसके उद्योग व्यापार को भारी धक्का पहुंचा था और उसे खर्च भी बहुत उठाना पड़ा था। चार्ल्स को रुपया देना पड़ा, वर्षों तक लगातार पीसा से लड़ाई होती रही, इसमें भी रुपया लगा, वहां व्यापार को धक्का पहुँचने से आमदनी कम हो गई। सिन्योरी नये २ कर लगाती, नयी नयी मांगे महासभा के सामने पेश करती। किसी तरह लोग उन्हें पूरा करते। किन्तु एक समय आया जब कियह भी कठिन हो गया। इसी के साथ २ राज्य में भीषण अकाल पड़ा। देहाती लोग भूख के मारे नगर में आने लगे। सावोनारोला के अनुयायी उन्हें अपने घरों में ठहराते और यथाशक्ति उनकी सहायता करते। प्लेग भी शुरू हुई। पीसा को वेनिस और मिलेन की मदद मिल रही थी। धन की कमी के कारण फ्लोरेंस ठीक तरह युद्ध नहीं चला पाता था। ऐसी संकटपूर्ण परिस्थिति में बहादुर पायरो कोपिनी को युद्ध में लड़ते २ मृत्यु हुई। इसी के साहस, लगन व वीरता के कारण अनेक कठिनाइयों के रहते हुए भी पीसा से युद्ध जारी रहा था। कोपिनी की मृत्यु ने लोगों को और भी हतोत्साह कर दिया। इतना ही नहीं, 'पुण्य-संघ' वाले भी अब फ्लोरेंस पर

हमला करने की तैयारी कर रहे थे। आराबियाटी दल उनके साथ था।

बहुत दिनों से खबर थी कि चार्ल्स फिर इटली पर आक्रमण करेगा। यही फ्लोरेंस की आशा का सहारा था। परन्तु यह खबर खबर ही रही। 'पुण्य-संघ' ने मौक़ा देखकर जर्मन सम्राट् मैक्सिमिलिन को फ्लोरेंस तथा नेपिल्स पर चढ़ाई करने के लिये बुलाया। फ्लोरेंस राज्य के सारे बन्दरगाह शत्रु के हाथ में पड़ गये। केवल लेघोर्न बचा था। मैक्सिमिलन ने अन्त में इसे भी घेर लिया। इसी समय समाचार आया कि चार्ल्स के पुत्र का देहान्त हो गया है और उसने इटली पर चढ़ाई करने का इरादा छोड़ दिया है।

भय व भूख से लोग व्याकुल हो रहे थे। प्लेग बढ़ रही थी, अस्पताल रोगियों से भर गई थीं। ग्रामीण लोग इतने दुर्बल हो गये थे कि भूख के मारे सड़कों पर गिर कर मर जाते थे। धन की कमी थी, अकाल था, व्यापार मर रहा था, किन्तु शत्रुओं की संख्या बढ़ रही थी। अन्न व बाहरी सहायता आने का मार्ग रुक गया था। पोप का गुप्त अभिप्राय अपने किसी पुत्र को फ्लोरेंस का शासक नियुक्त करने का था। पीसा, वेनिस, मिलेन आदि की शक्तियां फ्लोरेंस के नाश के लिये लगी थीं। जर्मन सम्राट् उनके एकमात्र बचे हुए बन्दरगाह को अपने क़ब्जे में लाने की चेष्टा कर रहा था। यह सब देखकर अराबियाटी दल को हर्ष होता था। वे कहते फिरते थे कि "अब सब लोग देख ल

कि सन्यासी ने हमें किस तरह धोखा दिया है, फ्लोरेंस के लिये इसी सुख की भविष्यद्वाणी उसने की थी।" पिछले अध्याय में हम बतला चुके हैं कि इन दिनों सावोनारोला ने उपदेश देना स्थगित कर दिया था। फ्रांस में रहनेवाले फ्लोरेंसवासी व्यापारियों ने धन एकत्रित कर सैनिक, रसद व जहाजों का बेड़ा अपने राज्य की सहायता के लिये भेजा। किन्तु तूफान के कारण जहाजें समुद्र में इधर उधर भटक गईं और यह कहना असंभव हो गया कि वे फ्लोरेंस तक पहुँच सकेंगी अथवा नहीं।

सङ्कटमय परिस्थिति में फ्लोरेंस के नागरिकों ने सच्ची वीरता एवं कष्ट-सहिष्णुता का परिचय दिया। यथा सम्भव सैनिक भर्ती किये गये, रसद का प्रबन्ध किया गया। लेघोर्न की रक्षा के लिये भरसक प्रयत्न किया गया। सावोनारोला के साथियों ने अपूर्व स्वार्थत्याग व दानशीलता दिखलाई। इतना सब होते हुए भी आशा के लक्षण नहीं दिखे तब हार कर सिन्योरी ने सावोनारोला की शरण ली। कहा जा चुका है कि पोप की द्वेषाग्नि को शान्त करने के लिये सावोनारोला ने सार्वजनिक उपदेश बन्द कर दिये थे। लोगों को यह विचित्र शङ्का हो रही थी कि सन्यासी का मुंह बन्द होना ही उनकी दुर्दशा का कारण है। अस्तु। जब सिन्योरी ने सावोनारोला से अपील की तब नगर की करुण दशा देख कर वह चुप नहीं बैठ सका। उसने सिन्योरी के निमन्त्रण को स्वीकार किया और अक्टूबर १४९६ में उपदेश-मञ्च पर आया। उसका

सन्देश नवीन आशा और सान्त्वना का सन्देश था। उसने कहा त्याग करो, पश्चात्ताप करो, परमात्मा पर विश्वास रक्खो, सङ्गठित रहो, शत्रु तुम्हारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकेंगे।" उसने लोगों को सलाह दी कि माता मरियम की मूर्त्ति का जुलूस सारे नगर में निकालो। अराबियाटी दल ने उसकी हँसी उड़ाई। भूखे, भयाकुल, कृश-शरीर नागरिकों ने उसके आदेश को माना। आशा करने का साहस किसे हो सकता था? तथापि भक्ति के साथ जुलूस निकाला गया। जुलूस में माता मरियम की मूर्त्ति नगर में घुमाई जा रही थी कि लेघोर्न से समाचार आया कि फ्रांस से भेजी गई जहाजें—जिनमें कि सैनिक व रसद का समान था—किसी प्रकार जर्मन जहाजों के घेरे को तोड़ कर, बन्दर स्थान पहुँच गई हैं। ऐसे सुसंवाद की आशा किसी को नहीं थी। लोगों को विश्वास हो गया कि सन्यासी के कारण ही ईश्वर ने यह अनुग्रह दिखलाया है। समुद्र में वेनिस की जहाजों ने उन्हें रोकने का प्रयत्न किया था। परन्तु तूफ़ान उठा और वे कुछ नहीं कर सकीं। सब लोग आश्चर्य-चकित होगये। नगर में आनन्द छा गया। गिरजाघर में सभायें हुई—परमात्मा को धन्यवाद दिये गये। इस बार अराबियाटी दल को भी विस्मय हुआ। नगर भर में एक ही आवाज सुनाई पड़ती—सन्यासी ने फिर हमारा उद्धार किया है। सावोनारोला का यश और प्रभाव दस गुना बढ़ गया। किन्तु हर्षावेश में उसने उन्हें असावधान न होने दिया। उसने कहा—"इस तरह दुःख व हर्ष से अभिभूत

हो जाना उचित नहीं। मनुष्य-सुलभ साधनों को मत भूल जाओ। युद्ध के लिये पहिले से भी अधिक उत्साह के साथ तैयारियां करो।" नागरिकों को देश के लिये मर मिटने की शिक्षा देते हुए उसने कहा—"मेरे भाई, हमारे संसार में जीने का उद्देश्य ही यही है कि हम अच्छी मौत मरना सीखें।" इन शिक्षाओं से प्रेरित हो फ्लोरेंस वालों ने द्विगुणित उत्साह और वेग से शत्रु पर आक्रमण किया। दैवी शक्तियां भी उनकी सहायता के लिये आगे आईं। समुद्र में ऐसे जोर का तूफान उठा कि वेनिस तथा जर्मन-सम्राट् की जहाजों को घेरा जारी रखना असम्भव हो गया। कई जहाजें आपस में अथवा चट्टानों से टकरा कर टूट गईं। फ्लोरेंस के सैनिकों ने शत्रु-दल के कितने ही सैनिकों को क़ैद कर लिया। उन्हें लूट का माल भी बहुत मिला। हताश हो कर मेक्सिमिलियन ने घेरा उठा दिया और यह कहते हुए स्वदेश को लौट गया कि 'मैं ईश्वर और मनुष्य की संयुक्त शक्तियों से लड़ते २ थक गया हूं।' सावोनारोला ने २८ अक्टूबर को पूर्ण नैराश्य के वातावरण में उपदेश देना प्रारम्भ किया था। १७ नम्बर को मेक्सिमिलियन इटली छोड़ कर चला गया। इसी बीच ता० ७ को पोप ने सावोनारोला पर फिर वार किया।

(१४)

धर्म-बहिष्कार

जब फ्लोरेंस को विपत्ति के बादल घेरे हुए थे उसी समय मौका देख कर पोप ने सावोनारोला के विरुद्ध अपनी आज्ञा निकाली। ता० ७ नवम्बर को उसने घोषित किया कि टस्कनी तथा रोम प्रान्तों के मठ एक संयुक्त परिषद् के आधीन रहेंगे। इस संयुक्त परिषद् का प्रधान कार्डिनल कराफा नियुक्त किया गया और उसके आधीनस्थ मठों में सन्तमार्क भी सम्मिलित कर दिया गया। अभी तक टस्कनी के मठों का अपना स्वतन्त्र परिषद् था, संतमार्क उसका केन्द्र था और सावोनारोला प्रधान। किन्तु इस आज्ञा से टस्कनी का परिषद् तोड़ दिया गया, सावोनारोला की सत्ता व स्वाधीनता कम हो गई और सन्तमार्क का केन्द्रीय पद व प्रतिष्ठा जाती रही। अब टस्कनी तथा रोम के संयुक्त परिषद् के आधीन सैकड़ों मठाधीश थे—उनमें एक सावोनारोला था।

पोप समझता था कि फ्लोरेंस की दशा इतनी संकटापन्न है कि उसकी आज्ञा का कोई विरोध नहीं करेगा। किन्तु, जैसा कि पिछले अध्याय में बतलाया जा चुका है, ये सब संकट अकस्मात दूर हो गये। अतएव सावोनारोला ने उपरोक्त आज्ञा के विरुद्ध एक प्रार्थना-पत्र लिखा। सन्तमार्क के सभी भिक्षुओं ने उसका समर्थन किया। इस प्रार्थना-पत्र में सावोनारोला ने यह बतलाया

कि इस आज्ञा के पालन करने से संतमार्क की बड़ी हानि होगी और जो धार्मिक उन्नति वहां के भिक्षु कर रहे हैं उसमें बड़ी बाधा पहुँचेगी। उसने कहा कि धर्माधिकारियों को ऐसी आज्ञा नहीं निकालनी चाहिये जो कि सम्प्रदाय के हित के विपरीत व उसके सदस्यों के लिये हानिकर हो। "अतएव हम समझते हैं कि हमारे गुरुजनों ने हमारे शत्रुओं के झूठे आक्षेपों से बहक कर ही यह आज्ञा निकाली है। हम इस धर्म-न्याय-विरुद्ध आज्ञा का विरोध करेंगे। धर्म-बहिष्कार व अन्य धमकियों के भय से हम नहीं दबेंगे। हम मृत्यु का सामना करेंगे परन्तु जो प्रस्ताव हमारी आत्मा के लिये विष व अभिशाप के समान है उसे कदापि नहीं मानेंगे। यदि अधिकारियों की किसी आज्ञा के विरुद्ध हमारी अन्तरात्मा विद्रोह करती है तब हमें नम्रता के साथ उसका विरोध करना उचित है। यह हमने किया है। परन्तु यदि इससे भी बात न सुधरे तो हमें सन्तपाल के उदाहरण का अनुसरण करना चाहिये।"

यह तो युद्ध का ऐलान था। जब सावोनारोला ने *आत्म-*स्वातन्त्र्य के आधार पर पैर जमाये, तब पोप से किसी प्रकार का समझौता व मैत्री असम्भव हो गयी। वह दबता नहीं, विरोध करता है—आत्मा के कल्याण के नाम पर। वह दया की याचना नहीं करता, न्याय चाहता है। पोप ईसाई-संसार का अधीश्वर अवश्य है, किन्तु व हभी धर्म व सदाचार-नीति के प्रतिकूल आज्ञा नहीं दे सकता। उसकी प्रतिष्ठा का आधार ही यही है कि वह धार्मिक

जीवन के प्रचार में सहायक हो। यदि वह ऐसी आज्ञा दे जिसे कि हमारी अन्तरात्मा अपने कल्याण के लिये घातक समझे तो उसे न मानना ही हमारा धर्म है। अन्याय सदा अन्याय ही रहेगा, चाहे अन्याय करने वाले का पद कितना ही उच्च क्यों न हो। यह था सावोनारोला का दृष्टिकोण।

पोप ने इसका उत्तर नहीं दिया। फ्लोरेंस के संकट भी इसी बीच में दूर हो गये थे। अतएव वह मौन हो रहा, और दूसरे अस्त्र-शस्त्रों के प्रहार करने के लिये सुअवसर की प्रतीक्षा करने लगा।

सावोनारोला के उपदेश भी जारी रहे। १४९७ का वास्तविक हर्षोत्सव आया। पापाचार का ताण्डव-नृत्य चाहने वाले फिर निराश हुए। सावोनारोला की प्रेरणा से अब सरकार ने उसे रोकने के लिये नियम भी बना दिये थे। अतएव १४९६ के समान इस साल भी पवित्र धार्मिक भाव से यह उत्सव मनाया गया। इस बार भी ईश्वर को सेना, देवदूत-संघ, अर्थात् बालक-बालिकाओं के संगठित दल ने फिर वही उत्साह दिखलाया। अपने नेताओं के नेतृत्व में, धार्मिक गीत गाते हुए, गरीबों के लिये भिक्षा मांगते तथा भोग-विलास व कामोद्दीपन की सामग्री इकट्ठी करते हुए, वे घर २ घूमे। अन्तिम दिन प्रातःकाल नगर के बालक, नर, नारी सभी धर्मोपासना में सम्मिलित हुए। सावोनारोला ने प्रार्थना-मन्त्र पढ़े। सब ने उसके हाथ से प्रसाद पाया। फिर घर लौट कर सब ने मिताहार किया। सायंकाल एक विशाल

जुलूस निकाला गया। बीच में ईसा की एक सुन्दर मूर्ति थी जिसका एक हाथ अपने कांटों के रक्त-रंजित मुकुट की ओर संकेत कर रहा था और दूसरा आशीर्वाद देने के लिये उठा था। उसके पीछे सफेद वस्त्र धारण किये हुए बालकों की मण्डली थी, जो कि ईश्वर का गुणगान करती जाती थी। कोई-कोई भिक्षा पात्र लिये हुए दान मांग रहे थे। जुलूस राजभवन के सामने चौक में रुका। वहाँ भोग विलास की सामग्री का ऊंचा ढेर लगा हुआ था। चारों दिशाओं से चार बालक मशालें लिये हुए आगे बढ़े और ढेर में आग लगा दी। अग्नि प्रज्वलित हो उठी, बाजे बजने लगे, लोगों ने जयजयकार किया। इस प्रकार उत्सव समाप्त हुआ।

बतला चुके हैं कि फ्लोरेंस में तीन दल थे। पहिला–पियग्नोनी दल, जिसमें कि सावोनारोला के अनुयायी थे। दूसरा–बिगी दल, जिसमें कि मेडिसियों के साथी थे। तीसरा—अराबियाटी दल, जिसमें कि कुलीन और धनवान लोग थे। इनका परस्पर वैमनस्य बढ़ता जाता था। पियग्नोनी तथा अराबियाटी दल के बीच घोर शत्रुता थी। एक प्रजातन्त्र तथा नैतिक सुधार का पक्षपाती था, दूसरा कुलीन सत्ता तथा विलासिता का। बिगीदल सुसंगठित था और धीरे २ गुप्त रीति से अपनी ताक़त बढ़ा रहा था। वह अपना मतलब निकालने के लिये कभी पियग्नोनी से मिल जाता, कभी अराबियाटी से। फरवरी १४९७ में उनका एक नेता बरनार्डो डेल नीरो न्याय-प्रधान चुना गया। वह बड़ा प्रभावशाली एवं नीतिमान् नेता था। यद्यपि यह निर्वाचन राजनीतिक दाव-

पेचों का एक अस्थायी फल था, तथापि जनसाधारण का दल सुसंगठित था और लोगों की सहानुभूति प्रजातन्त्र के प्रति दृढ़ थी। यद्यपि आगे चल कर अनेक बार सावोनारोला के अनुयायियों का निर्वाचन हुआ, तथापि बरनार्डो के निर्वाचन का यह अस्पष्ट संकेत अवश्य था कि सावोनारोला का प्रभाव कुछ कम हो रहा है। ऐसा क्यों हो रहा था, इसकी विवेचना अब की जायगी।

कहा जा चुका है कि सावोनारोला के लिये राजनीतिक ध्येय धार्मिक आदर्श का एक अंग मात्र था। वह धर्म-राज्य स्थापित करना चाहता था, अतएव पहिले उसने प्रजासत्ता स्थापित करना अनिवार्य समझा। वह चाहता था कि ईसा मसीह इस राज्य के शासक हों— स्वयं सावोनारोला अपने को ईसा का प्रमुख सेवक समझता था—इसलिये उसे शासन-विधान तथा अन्य क़ानूनों की रचना में भाग लेना पड़ा। इसी भावना से प्रेरित होकर उसने कितने ही नैतिक सुधार किये। उसका विश्वास था कि पापियों को दण्ड मिलेगा, उनकी स्वतन्त्रता छीन ली जायगी और उन्हें तरह २ के कष्ट सहने पड़ेंगे। किन्तु जो लोग प्रायश्चित करेंगे और पाप-मुक्त होकर पुण्याचरण करेंगे, उन्हें स्वतन्त्रता मिलेगी, उनका सच्चा अभ्युदय होगा, ईश्वर उनकी रक्षा करेंगे। वह समझता था कि ईश्वर ने यही सन्देश लेकर उसे फ्लोरेंस भेजा है। फ्लारेंस ईश्वर का निर्वाचित नगर है क्योंकि वहां उसने अपने दूत को भेजा है। सारांश यह कि फ्लोरेंस में सावोनारोला का कार्य द्विधा था, धार्मिक तथा राजनीतिक। परन्तु वह इसे एक

ही कार्य समझता था। क्योंकि धर्म को राजनीति से, अथवा राजनीति से धर्म को विलग करना उसके लिये असम्भव था।

अब देखना यह है कि फ्लोरेंस वासियों ने उसके राजनीतिक कार्य का क्यों और किस सीमा तक वास्तविक अभिनन्दन किया। उनकी राजनीति के प्रति रुचि थी। प्राचीन प्रजातन्त्र की याद उन्हें नहीं भूली थी। शासन-कार्य में भाग लेना, अथवा कम-से-कम उसके योग्य समझे जाना, वे प्रत्येक नागरिक का जन्म-सिद्ध अधिकार मानते थे। मेडिसियों ने निरंकुश शासन स्थापित करने के बाद भी लोकमत को बहलाने के लिये प्रजातन्त्र के बाह्य रूप को जैसे-का-तैसा रहने दिया था। इसका एक परिणाम यह हुआ कि फ्लोरेंस वासियों को प्रजासत्ता की याद बनी रही। धार्मिक दृष्टि से फ्लोरेंस पुनर्जागृति के बुद्धिवाद, संशयवाद अथवा विलासिता का केन्द्र था। किन्तु जब सन्यासी सावोनारोला ने धर्म व पुण्याचरण का सन्देश सुनाया, और कहा कि इनके द्वारा स्वातंत्र्य की प्राप्ति और रक्षा होगी, तब वे उत्साह और आशा से उसकी ओर दौड़े और उसे अपना नेता मान लिया। स्वतन्त्रता की प्राप्ति हुई, प्रजासत्ता का संगठन हुआ, और सन्यासी फ्लोरेंस का सर्वेसर्वा बना। किन्तु वह तो धर्म को राजनीति की प्रेरक-शक्ति बनाना चाहता था। वहां फ्लोरेंस के लोग धर्म को राजनीति के आधीन रखना चाहते थे। जब सावोनारोला धर्म को किसी राजनीतिक हित से सम्बद्ध कर देता तब वे उसे सुनते, उसकी बात को मानते। इसीलिये उसने ईसा को प्रजातन्त्र का शासक

घोषित किया, और बार २ यह चेतावनी दी कि बिना पुण्याचरण के स्वाधीनता की रक्षा असम्भव है। इस प्रकार राजनीतिक ध्येय को फ्लोरेंस वासियों के सामने रखकर उसने उन्हें धार्मिक तथा सदाचारी बनाने का प्रयत्न किया। एक हद तक उसे सफलता भी मिली। बहुतों की कायापलट हुई। कितने ही लोग नवीनता के राग से आकर्षित हुए। कितनों ने विलासिता व पाखण्ड से थकित हो उसकी शरण में शान्ति पाई। कितनों को उसके द्वारा आध्यात्मिक नवजीवन की दीक्षा मिली और उनमें स्थायी परिवर्तन हुआ। बहुत दिनों तक फ्लोरेन्स में धर्म और सदाचार का राज्य रहा। किन्तु संशयवाद तो फ्लोरेन्स वासियों की नस-नस में भर गया था, अतएव सावोनारोला को उपरोक्त नीति में स्थायी सफलता मिलना कठिन थी। वह फ्लोरेन्स वासियों के तथा उस युग के संस्कारों को न मिटा सका।

हां, जो राजनीतिक कार्य उसने किया उसका प्रभाव स्थायी रहा, क्योंकि उसका फ्लोरेंस वासियों के स्वभाव व संस्कार के साथ सामञ्जस्य था। यहां उन्होंने उसका हार्दिक सहयोग किया स्वातन्त्र्य-पुनर्जीवन के वातावरण में मकियावेली, गुइसियार्डिनी गियानोटी के समान लेखक पले और उन्होंने राजनीतिक व ऐतिहासिक साहित्य को अपनी रचनाओं से सम्पन्न किया। इस स्वातंत्र्य पर बार २ हमले हुए, कई बार फ्लोरेन्स को पराजित भी होना पड़ा, किन्तु फ्लोरेन्स वासियों ने उसकी प्रेम व लगन को कदापि नहीं छोड़ा। यह सावोनारोला की सफलता का एक

पहलू था। परन्तु जहां केवल धार्मिक बात ही होती, वहां वे उदासीन बन जाते, रुचि व अभ्यास से वे लाचार से थे। सावोनारोला के प्रभाव व प्रेरणा ने इस प्रवृत्ति को बहुत दिनों तक दबाये रखा, बहुतों के व्यक्तिगत जीवन में उसने स्थायी परिवर्तन भी कर दिया, किन्तु वह इसका पूर्ण निराकरण नहीं कर सका।

जहां बहुत से बुद्धिवादी व स्वातंत्र्य-सेवी उसकी राजनीतिक उपयोगिता व महत्ता से आकर्षित होते, वहां जनसाधारण की उसके प्रति जो श्रद्धा थी उसका आधार अन्ध-विश्वास था। उसकी भविष्यद्वाणी तथा दिव्य-दृष्टि में अन्ध-विश्वास ! जब तक सावोनारोला के कारण नगर की संकटों से रक्षा होती रही, वे अपूर्व सफलता मिलती रही, तब तक वे उसके भक्त बने रहे, उन का परंपरागत संशयवाद अन्ध-विश्वास में बदला रहा। परन्तु ज्यों ही घटना-संयोग से सफलता की गति धीमी पड़ गयी, या रुक गयी, त्योंही प्रतिक्रिया प्रारम्भ हुई, और जितना ही गहरा वह अन्ध-विश्वास था उतना ही भीषण रूप इस प्रतिक्रिया ने धारण किया। सावोनारोला की दिव्यदृष्टि तथा भविष्यद्वाणी संबंधी बातों की विवेचना हम किसी अगले अध्याय में करेंगे। यहां सार्वजनिक मनोवृत्ति पर उसके असर की संक्षिप्त चर्चा की गई है।

सावोनारोला ने विश्वास दिलाया था कि चार्ल्स से मित्रता बनाये रखने से पीसा वापिस मिल जायगा। उसकी आशा निराधार नहीं थी; परन्तु चार्ल्स के अफसरों ने चार्ल्स की आज्ञा

को टाल कर फ्लोरेंस से विश्वासघात किया। इससे उन लोगों को बुरा लगा जो कि निरी राजनीतिक लाभ-हानि के विचार से ही सावोनारोला का सम्मान करते थे। पीसा के वापिस न मिलने से जनसाधारण के अन्ध-विश्वास को भी धक्का लगा। सावोनारोला के शत्रुओं ने तो इससे खूब ही लाभ उठाने की कोशिश की। जनता की स्मरण-शक्ति कमजोर हुआ करती है। सावोनारोला का आदेश मानने से उनका जो उपकार हुआ था, उनके जो २ संकट टले थे, इसका ध्यान तो उन्हें रहा नहीं; जो एक बात नहीं हो पाई, वही उनको आंखों के सामने नाचने लगी। पीसा से युद्ध जारी था और यदि पुण्य-संघ के सदस्य उसे मदद न देते तो फ्लोरेंस का उस पर अधिकार निस्सन्देह हो गया होता।

पक्षपात-हीन इतिहासकार के लिये पीसा वालों से सहानुभूति न करना असम्भव है। तत्कालीन इटली की राजनीतिक स्थिति में नगर स्वातन्त्र्य की भावना आदरणीय मानी जाती थी। पीसा वाले इसी के लिये लड़ रहे थे। सावोनारोला चाहता था कि पीसा ईश्वर-निर्वाचित फ्लोरेंस के राज्य में रहे। फ्लोरेंस वासी समझते थे कि उसे अपने आधीन रखने से उनकी कीर्ति व समृद्धि को धक्का नहीं पहुँचेगा। यह सब ठीक है परन्तु फ्लोरेंस के समान पीसा को भी स्वाधीन रहने का अधिकार क्यों नहीं था?

पोप की शत्रुता ने भी सावोनारोला के प्रभाव को भारी धक्का पहुँचाया। उसका वास्तविक उद्देश्य कुछ भी रहा हो; किन्तु

सावोनारोला पर उसका प्रहार व्यक्तिगत था। पोप इस बात से सतर्क रहता था कि वह ऐसी जगह तथा ऐसी स्थिति में वार न करे जहां पर कि सावोनारोला तथा फ्लोरेंस के हित एक-ही हों। पोप का जीवन कितना ही निकृष्ट रहा हो, किन्तु जिस अस्त्र से वह प्रहार करता था, वह धर्मास्त्र था; जिस पद पर से वह वार करता था, वह संसार की आँखों में पूजनीय-पद था। यदि फ्लोरेंस सावोनारोला का साथ दे, तो पोप का अस्त्र उस पर भी आघात कर सकता था। फ्लोरेंस के सामने प्रश्न यह था कि क्या वह सावोनारोला के लिये स्वार्थ-त्याग व कष्ट-सहन करने के लिये उद्यत हो कर, पोप से लड़ाई मोल लेगा? सावोनारोला ने जो सेवा फ्लोरेंस की की थी उसका विचार करते हुए यही आशा होती थी कि वह उसकी सहायता के लिये विपत्तियों के सामने सीना खोलने का साहस करेगा। किन्तु राजनीतिक स्वार्थ-बुद्धि ने ही उनकी नीति को निर्धारित किया। प्रजातन्त्र के उद्धारक के रूप में ही वे सावोनारोला को पूजते थे। जब तक सावोनारोला के द्वारा उनके राजनीतिक हितों की सिद्धि व रक्षा हो सकेगी, तब तक वे उसका साथ देंगे। यदि उसका बलिदान कर देने से उनकी स्वार्थ-सिद्धि होगी, तो वे ऐसा भी कर सकेंगे। पोप ने इस बात को अच्छी तरह समझ कर ही सावोनारोला के प्रश्न को धार्मिक व व्यक्तिगत रूप दे रखा था। संशयवाद तथा राजनीतिक बुद्धिवाद में उस धार्मिक आदर्श के पुजारियों के लिये कृतज्ञता कहां! उनके लिये त्याग करने की भावना कहां!!

सावोनारोला के सामने रास्ता सीधा था। वह अपने ईश्वर-निर्धारित आदर्श की सेवा करेगा—धार्मिक व नैतिक सुधार एवं फ्लोरेंस की स्वतन्त्रता। इसके लिये लोकप्रियता से हाथ धोना पड़े, उसे चिन्ता नहीं। प्राणों का बलिदान देना पड़े, उसे भय नहीं। आदर्श-सेवा में प्राणोत्सर्ग, यही उसके जीवन का अमूल्य पुरस्कार होगा, यह उसने जान लिया था; इसकी याचना भी परमात्मा से उसने बारम्बार की थी। यदि पोप के राजनीतिक पथ में सावोनारोला कण्टक है तो सावोनारोला के नैतिक व आध्यात्मिक सुधार के मार्ग में—जिसका प्रचार फ्लोरेंस के द्वारा सारे इटली में करना सावोनारोला का स्वप्न था—पोप भी कठिन बाधा है। फिर इनमें समझौता कैसे हो ? यदि सारा फ्लोरेंस भी उसका साथ छोड़ दे और शत्रु बन जावे तब भी सावोनारोला पथ-भ्रष्ट नहीं होगा। संसार की कोई भी शक्ति उसकी आत्मा को नहीं कुचल सकती। अन्त तक अपने आदर्श में अदम्य, अजेय, श्रद्धा बनी रहे, यही आदर्शवादी की कर्मक्षेत्र में परम विजय है। सांसारिक लाभ की चिन्ता उसे होती ही नहीं। आत्म-बलि को जिसने विजय-तिलक मान लिया हो, उसे कौन झुका सकता है ? कौन हरा सकता है ? यह था सावोनारोला का दृष्टि कोण !

उपरोक्त प्रवृत्तियां फ्लोरेंस में काम कर रहीं थी। हमने उनकी चर्चा यहां इसलिये की है जिससे कि आनेवाली घटनाओं को हम सुचारु रूप से समझ सकें। ये प्रवृत्तियां कहीं उत्पन्न हो रही थीं, कहीं गुप्त व कहीं प्रगट रूप से प्रबल हो रहीं थी।

सावोनारोला के अनुयायी भी सबल व सुसंगठित थे। बरनार्डो डेल नीरो के प्रधान चुने जाने का अर्थ यह नहीं था कि उसकी सत्ता का लोप हो गया। निर्वाचन के समय कितने ही भीतरी व बाहरी दाव पेंच चला करते हैं और समय २ पर परिस्थिति के अनुसार बदलते भी रहते हैं। अतएव जो दल आज सफल हुआ हो, उसका दो महीने बाद चुनाव, में पराजित हो जाना स्वाभाविक हो सकता है। बरनार्डो का चुनाव ऊपर के प्रकरणों में कही गयी प्रवृत्तियों का परिणाम स्वरूप नहीं, केवल लक्षण स्वरूप ही था। अस्तु।

बरनार्डो डेल नीरो के प्रधान बनते ही मेडिसी दल की आशायें फिर जाग उठीं। उन्होंने सावोनारोला के विरुद्ध धर्मोपदेश देने के लिये उसके पुराने प्रतिद्वन्द्वी सन्यासी को बुलवाया। मरियानो मेडिसियों का आदमी था और बहुत दिनों तक रोम में रह चुका था। सावोनारोला के प्रति पोप के जो अन्तरंग विचार थे उनसे मरियानो परिचित था, अथवा यों कहिये कि पोप की रोषाग्नि को भड़काने में उसका बड़ा हाथ था। मरियानो ने एक बार फिर सावोनारोला के सार्वजनिक प्रभाव को नष्ट करने की चेष्टा की। उसने फ्लोरेंस वासियों को समझाया कि सावोनारोला उन्हें धोखा दे रहा है, वह ईसाईयों के धर्माधिपति से विद्रोह कर रहा है, अतः उसका साथ देने से नगर की भारी हानि होगी। सावोनारोला ने अपने भाषणों में इसका उचित उत्तर दिया और पोप तथा पुरोहितों की तीव्र निन्दा की।

अपनी पिछली पराजय के बाद से पाइरो रोम में ही तरह तरह के ऐश-आराम में अपने दिन बिता रहा था। बरनार्डो के चुनाव के कारण जब बिगी दल के हाथ में सत्ता आई,तब उन्होंने उसे पुनः आक्रमण करने की सलाह दी और कहा कि नागरिक तुम्हारी मदद करेंगे। पाइरो तैयारी करने लगा था। यहाँ फ्लोरेंस में अकाल और प्लेग का भीषण प्रकोप था और सावोनारोला के साथी लोगों की सेवा शुश्रूसा में फंसे थे। कहा जा चुका है कि फ्लोरेंस में मन्त्रिमण्डल का चुनाव हर दूसरे महीने होता था। पाइरो के आक्रमण के पहिले ही बरनार्डो की अवधि समाप्त हो गई और नये मन्त्रि-मण्डल में बिगी दल की प्रधानता नहीं रही। तथापि कुछ नागरिकों के पत्रों से उत्साहित होकर पाइरो ने चढ़ाई कर ही दी। खबर पाते ही फ्लोरेंस के लोग नगर की रक्षा के लिये कटिबद्ध होगये। नगर की चहारदीवारी के द्वार बन्द कर दिये गये। नागरिकों ने हथियार सम्भाले। मन्त्रि मण्डल के एक सदस्य ने पाइरो के आक्रमण का समाचार लेकर सावोनारोला के पास दूत भेजा। उसे देखते ही सावोनारोला ने कहा "जाओ, सिन्योरी से कह दो कि पाइरो दरवाजे तक आयेगा और बिना सफलता पाये लौट जायेगा।" हुआ भी ऐसा ही। १३०० सुसज्जित सैनिकों को लेकर पाइरो ने फ्लोरेंस में प्रवेश करना चाहा। नगर का द्वार बन्द था। उसे आशा थी कि नगरवासी उसकी सहायता के लिये हथियार उठावेंगे। ऐसा नहीं हुआ। उसे यह भी भय हो गया कि कहीं पीसा के युद्ध में

लगी हुई फ्लोरेंस की सेना उस पर पीछे से धावा न बोल दे। नगर में जबरदस्ती घुसने को उसको हिम्मत नहीं पड़ी। अतः वह निराश होकर भाग गया।

फ्लोरेंस के नये मन्त्रि-मण्डल ने एक जांच समिति नियुक्त की कि इस बात का पता लगावे कि पाइरो को आमन्त्रित करने के षड्यन्त्र में किन लोगों का हाथ था।

पाइरोके लौट जाने के कुछ दिन बाद अराबियाटी दल ने मन्त्रि-मण्डलमें प्रधानता पाई। वे पाइरो के शत्रु तो थे ही, पर उनका मुख्य उद्देश्य सावोनारोला को उखाड़ना ही था। अब उन्हें मौका मिला।

अराबियाटी दल में गर्म दिमाग़वाले नवयुवकों का एक गुट्ट था। इसका नाम था कम्पग्नाकी। ये बड़े सज-धज कर रहते थे। जो कुछ सावोनारोला चाहता उसके प्रतिकूल आचरण करने में ही ये अपनी शान समझते। सावोनारोला कहता धर्म-निष्ठ बनो, सरल सात्विक जीवन व्यतीत करो, ये लोग धर्म की हँसी उड़ाते, तामसिक एवं आडम्बरपूर्ण जीवन में लिप्त रहते। सावोनारोला के विरुद्ध हिंसात्मक प्रतिक्रिया की ये सजीव मूर्तियाँ थीं। डोल्फोस्पिनी इस गुट्ट का नेता था। जब तक मन्त्रि-मण्डल में इनके साथियों का प्रभुत्व नहीं था, तब तक तो इनकी उच्छृंखलता मर्यादा के भीतर रहती थी किन्तु अराबियाटी दल की सत्ता होते ही इनको निरंकुशता को खुला मैदान मिल गया।

प्रभु ईसा की स्वार्गारोहण की जयन्ती का दिन समीप आ रहा था। इस दिन भी, सदा की भांति, सावोनारोला सार्वजनिक

उपदेश देने की तैयारी कर रहा था। अराबियाटी दल ने निश्चय किया कि हम व्याख्यान नहीं होने देंगे। पियग्नोनी दल ने कहा कि व्याख्यान होकर ही रहेगा। कम्पग्नाकी एक डग और आगे बढ़े। उन्होंने यह षड्यन्त्र रचा कि इस अवसर पर दंगा-उत्पात मचाया जाय और मौका पाकर सावोनारोला का वध भी किया जाय। उन्होंने उपदेश-मंच पर भिष्टा डलवा दिया और गधहे का सड़ा हुआ चमड़ा बिछवा दिया। वक्तृता देते हुए आवेश में आकर जिस पट्टी पर सावोनारोला हाथ पटकता था, उस पर इन्होंने कीलें लगवा दीं। नगर में अफवाह उड़ रही थी, कि उपदेश-मंच पर सावोनारोला की हत्या की जायगी। सावोनारोला के भक्त उसके पास गये और प्रार्थना करने लगे कि स्वर्गारोहण दिवस को आप उपदेश न दें,और अपने प्राणों पर संकट न आने दें। किन्तु उसने दृढ़ता से उत्तर दिया कि कोई भी भय मुझे कर्त्तव्य-पथ से नहीं रोक सकता। कोई चारा न देख कर, उसके अनुयायियों ने भी हथियार सम्भाले।

प्रातःकाल होते ही भक्तों ने आकर मंच की सफाई की। सावोनारोला आया, मित्र और भक्त उसे घेरे हुए थे। कंपग्नाकी गुट्ट के लोग भी तेल फुलेल लगा कर, कीमती कपड़े पहिन, अस्त्र-शस्त्रों के साथ छैल-छबीले बांके-वीर बने हुए डुओमो में पहुँचे। सावोनारोला ने भाषण में कहा—"संसार का कोई भी मनुष्य यह कहने का घमण्ड नहीं कर सकता कि उसने मुझे कर्त्तव्य-मार्ग से हटाया है। मैं तो कर्त्तव्य के लिये प्राण-विसर्जन करने के लिये

तैयार हूं। हे परमात्मन्! मेरा उन लोगों से उद्धार करो जो कि मुझे दूसरों को कुमार्ग पर ले जानेवाला कहते हैं। उनसे मेरी आत्मा की रक्षा करो क्यों कि इस पार्थिव शरीरके लिये मुझे कोई भय व चिन्ता नहीं है।" अपने अनुयायियों को यह चेतावनी देते हुए कि तुम्हारी कठिन परीक्षा का समय आ रहा है, उसने कहा--"तुम बहुत जल्दी धैर्य खो बैठते हो। जब तुम्हें प्रसन्न होना चाहिये, तुम उदास हो जाते हो। अब तुम्हारे दुःख के दिन सन्निकट हैं, तुम पर तलवार तथा धर्म-बहिष्कार के अस्त्रों का वार होगा, तुम्हें आत्म-बलि देना पड़ेगी;—परीक्षा के दिन अब आगये। ईश्वर करे कि पहिले मैं ही इसे वहन करूं।" नगर के वैमनस्यके बारे में उसने कहा-"तुम कहते हो 'सन्यासी, तुम्हीं हमारे पारस्परिक भेद-भाव की जड़ हो।' मैं कहता हूं तुम्हारा पापी जीवन ही इसका कारण है। × × × साधुता से रहो, नगर में शान्ति होगी।"

सावोनारोला का भाषण हो ही रहा था, कि कंपग्नाकी गुट्ट के एक व्यक्ति ने भिक्षा-पेटी को छीन कर जोर से धरती पर पटक दिया। चारों तरफ कोलाहल मच गया। लोग घबड़ा गये, पर यह न समझ सके कि बात क्या है। कोई चिल्लाने लगा, कोई भागने। नगर की रक्षा-समिति के दो सदस्य जो कि कंपग्ना-की गुट्ट के थे, इस गड़बड़ में सावोनारोला पर वार करने के लिये आगे बढ़े, परन्तु इसी बीच में सावोनारोला के भक्तों ने उसे घेर लिया था। उन्होंने उपरोक्त आक्रमणकारियों के वार को काट दिया। दंगा मचने को ही था। सावोनारोला

ने भाषण जारी रखने की कोशिश की किन्तु जन-समुदाय में इतना हल्ला हो रहा था कि उसकी आवाज़ सुनाई ही नहीं देती थी। वह घुटने टेक कर ईश्वर-स्तुति में लग गया। जब कुछ शांति हुई तो वह अपने साथियों को लेकर संतमार्क को लौट गया। यदि वह ऐसा न करता, अपने अनुयायियों को घटनास्थल से दूर नहीं ले जाता, तो अवश्य ही नगर में भीषण दंगा व रक्तपात होता क्योंकि उसके शत्रु इसके लिये उतावले हो रहे थे।

सरकार ने दंगा मचानेवालों के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की। वे साफ़ बच गये। जिस रक्षा-समिति का कर्त्तव्य नगर में शान्ति बनाये रखना था उसी के दो सदस्यों ने सावोनारोला पर हथियार चलाये थे। दंगे का बहाना दिखला कर सिन्योरी ने सब मठों में यह आज्ञा घोषित करवा दी कि किसी भी सम्प्रदाय का कोई भी सन्यासी सार्वजनिक उपदेश व व्याख्यान नहीं दे। सावोनारोला ने इस आज्ञा को शिरोधार्य किया। अब वह लेखों द्वारा अपने उपदेशों का प्रचार करने लगा। छः महीने तक उसने सार्वजनिक व्याख्यान नहीं दिया। तथापि, सिन्योरी ने उसकी पीठ पर छुरी चलाई। उन्होंने प्रधान २ नागरिकों की एक सभा बुलवाई और यह प्रस्ताव किया कि सावोनारोला को नगर से निर्वासित कर देना चाहिये। लोगों को यह विदित था कि सब उपद्रव की जड़ कंपग्नाकी गुट्ट है और सिन्योरी द्वेष के कारण ही ऐसा प्रस्ताव कर रही है। अतः प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ और सिन्योरी की युक्ति काम न आई।

सन्यासी मरियानो रोम लौट गया था और फिर पोप के कान भरने लगा था। स्वर्गारोहण जयन्ती के दिन जो दंगा हुआ तथा सिन्योरी ने जो प्रतिकूल कार्यवाही की, उससे पोप को यह विश्वास हो गया कि सावोनारोला की स्थिति डांवाडोल हो रही है। सावोनारोला पर आघात करने का उसने यही मौका ठीक समझा। अराबियाटी दल ने भी उसे लिखा कि प्रहार का समय अब आगया है। फलतः ता० १३ मई १४९७ को पोप ने आज्ञा निकाली और सावोनारोला के धार्मिक बहिष्कार की घोषणा की। इसकी एक एक प्रति सभी मठों और गिरजाघरों में भेजी गयी।

आज्ञा पत्र में लिखा था—

हमने विश्वासपात्र व्यक्तियों से सुना है कि गिरोलमा सावोनारोला नामक एक सन्यासी, जिसे कि लोग संतमार्क का मठाध्यक्ष बतलाते हैं, ऐसे अनिष्टकारी सिद्धान्तों का प्रचार करता रहा है जिनसे कि सरल आत्मा वाले मनुष्यों का बड़ा अपमान हुआ और उन्हें बहुत दुःख भी भोगने पड़े हैं। हमने उसे आज्ञा दी थी कि वह उपदेश देना बन्द कर दे और हमारे सामने उपस्थित होकर अपने अपराधोंके लिये क्षमा मांगे। किन्तु उसने ऐसा नहीं किया, और न आ सकने के लिये कई बहाने किये। हमने दयापूर्वक इन्हें मान लिया क्योंकि हम अपनी क्षमा-शीलता से उसकी पाप-निवृत्ति की आशा करते थे। परन्तु ऐसा होना तो दूर रहा, उसने अपनी हठ नहीं छोड़ी। इसलिये ७ नवम्बर

१४९६ को हमने एक दूसरा आदेश-पत्र निकाला और उसे आज्ञा दी कि संतमार्क के मठ को टस्कनी तथा रोम के संयुक्त परिषद् के आधीन करदे नहीं तो उसे धर्म-बहिष्कार का दण्ड दिया जायेगा। इस पर भी उसने अपनी हठ नहीं छोड़ी। इसलिये यह हमारे अभिशाप का भागी बना। अतएव हम सब लोगों को अनुशासन देते हैं कि सब उत्सवों पर, सब लोगों के सामने, यह घोषित करो कि उक्त सन्यासी गिरोलमा धर्म से बहिष्कृत कर दिया गया है; सब लोग उसे ऐसा ही मानें क्यों कि उसने ईश्वर के प्रतिनिधि की हैसियत से दी गई हमारी आज्ञाओं और चेतावनियों का निरादर किया है। और सब लोगों को यह आज्ञा दी जाती है कि उसे किसी प्रकार की सहायता न दें, उससे कोई सरोकार न रखें और न वचन और कर्म से उसे अपनावें। अन्यथा उन्हें भी यही दण्ड मिलेगा, क्योंकि वह बहिष्कृत है और उसके ऊपर धर्म द्रोह का सन्देह है।

धर्म-बहिष्कार का अर्थ था कि उसे कोई ईसाई न माने, उसके साथ संसर्ग न करे तथा धर्म-क्षेत्र में उसे कोई स्थान व आश्रय नहीं दिया जावे। ऊपर जो वाक्य उद्धृत किये गये हैं उनसे यह सिद्ध होता है कि इस कठिन आज्ञा को निकालने के दो कारण थे—पोप की आज्ञा का उल्लंघन, एव धर्म द्रोह का संदेह—संदेहमात्र! आज्ञा-भंग के सम्बन्ध में पोप एक बार सावोनारोला का निवेदन स्वीकार कर चुका था और दूसरी बार सावोनारोला के पत्र का उसने कोई उत्तर ही नहीं दिया था।

इसके सिवाय सावोनारोला उसे अपनी दिव्यदर्शन संग्रह नामक पुस्तक भेज चुका था। इसमें उसने अपने धार्मिक सिद्धांतों की विवेचना की थी। विद्वानों से उनकी परीक्षा करवा लेने पर भी, पोप उनमें कोई दोष नहीं पा सका था। इसके अतिरिक्त दण्ड तो न्याय रूप से तभी दिया जा सकता है जब कि अपराध प्रमाणित हो जावे। परन्तु पोप तो वास्तविक धार्मिक भावों से प्रेरित था नहीं, यह तो उसकी राजनीतिक कपट-नीति थी! इस लिये धर्म-द्रोह के सन्देह की आड़ लेकर उसने सावोनारोला पर आघात किया।

फ्लोरेंस में सावोनारोला के धार्मिक बहिष्कार की घोषणा हुई। किन्तु सन्तमार्क के भिक्षुओं ने उसका साथ दिया। अन्य सम्प्रदायों के भिक्षुगण पोप के भय अथवा सावोनारोला के शिष्यों की प्रतिद्वन्दिता के कारण उनसे अलग हो गये। यहाँ कम्पग्नासी गुट्ट का नगर में बोलबाला होगया। अराबियाटी की खुशी का ठिकाना नहीं रहा। कठोर सदाचरण के विरुद्ध प्रति-क्रिया आरम्भ होगई क्योंकि अब सावोनारोला तथा उसके शिष्यों का मुंह बन्द था। वे धर्म-क्षेत्र से निर्वासित कर दिये गये थे। चारों तरफ़ से सावोनारोला पर झूठे व गन्दे आक्षेप होने लगे। नगर में अश्लील गीत गाये जाने लगे। मद्य की दुकानों पर फिर भीड़ होने लगी। स्त्रियों ने फिर निर्लज्जता से शृङ्गार करना प्रारम्भ किया। रसिक नवयुवक सुन्दरियों के द्वार पर चक्कर काटने लगे। उपासना मन्दिर सूने हो गये। सात्विकता ने धर्म-

बहिष्कृतों का दामन पकड़ कर ही अपना अस्तित्व बचाये रखा। धर्माधिपति की "धर्मरक्षणार्थ" धर्माज्ञा का यह परिणाम हुआ!

सावोनारोला जानता था कि पोप की आज्ञा पाखण्डपूर्ण है, धर्म व न्याय के विरुद्ध है। यदि वह इसे मानता है तो उसके जीवन की सारी साधना नष्ट होती है, यदि टालता है तो उसके तथा उसके सहायकों के प्राण संकट में पड़ते हैं। क्योंकि ऐसी दशा में पोप से पार पाना असम्भव था। सावोनारोला के सामने जीवन-मरण का प्रश्न उपस्थित था। उसने आदर्श की सेवा करते २ प्राणोत्सर्ग करना उचित समझा। संसार की दृष्टि से अब उसके पतन व पराजय का प्रारम्भ होता है और अध्यात्मिक दृष्टि से उसकी कठिन परीक्षा का। अन्त के लक्षण स्पष्टतया दीख रहे थे, किन्तु अभी उसका समय नहीं आया था।

सौभाग्य से जुलाई-अगस्त के लिये जिस मन्त्रि-मण्डल का चुनाव हुआ उसमें सावोनारोला के अनुयायियों की संख्या अधिक थी। इससे कुछ काल के लिये परिस्थिति बदल गई।

---

(१५)
षड्यन्त्र का भण्डाफोड़

पाइरो को फ्लोरेंस पर चढ़ाई करने के लिये बुलाने के षड्यन्त्र में कौन २ नागरिक शामिल थे, इसकी जांच बहुत दिनों से वलोरी और तोशिंघी कर रहे थे। अगस्त १४९७ में उन्होंने लम्बर्टो अन्टेला नामक एक निर्वासित व्यक्ति को गिरफ्तार किया। लम्बर्टो गुप्त रूप से यात्रा कर रहा था और उसके पास एक महत्वपूर्ण पत्र था। लम्बर्टो पाइरो का एक पुराना और ईमानदार सहायक था और उसकी गुप्त मन्त्रणा में भी शामिल रहता था। किन्तु पाइरो के दुष्ट व्यवहार को सहते २ वह थक गया था और उससे बदला लेने की बात सोच रहा था। इसलिये गिरफ्तार होने पर उसे कोई दुःख नहीं हुआ क्योंकि वह षड्यन्त्र का सारा रहस्य प्रकट करना चाहता था। उसे यह भी आशा थी कि ऐसा करने से उसे क्षमा-दान मिल सकेगा।

लम्बर्टो सिन्योरी के सामने लाया गया। उसके पास जो पत्र था उससे षड्यन्त्र की बहुत सी गुप्त बातें मालूम हुईं। साथ ही यह भी पता लगा कि उसमें नगर के अनेक प्रतिष्ठित नागरिक भी शामिल थे। और रहस्य जानने के लिये यहां तो लम्बर्टो को तरह-तरह की यन्त्रणायें दीं, वहां उसे क्षमा-दान का प्रलोभन दिखलाया। इसका नतीजा यह हुआ कि उसने एक लम्बा-चौड़ा

बयान लिख कर सिन्योरी को दिया। पाइरो की क्या चालें थी, किस प्रकार षड्यन्त्र रचा गया, यह सब उसने विस्तारपूर्वक बतलाया तथा फ्लोरेंस के जो-जो नागरिक गुप्त-रूप से उसके सहायक थे उनका भी नाम दिया। उसने यह भी कहा कि १५ अगस्त के लिये एक और षड्यन्त्र रचा गया है, कि पाइरो को चुपचाप फ्लोरेंस में लाया जाय। उस समय प्लेग और अकाल का प्रकोप था। बहुत से लोग नगर छोड़कर चले गये थे। अतएव षड्यन्त्रकारियों की यह मनोकामना और आशा थी, कि ऐसे मौके पर पाइरो भूखे नागरिकों में अन्न और धन वितरण कर उन्हें मिला लेगा और उनकी सहायता से फ्लोरेंस पर कब्जा करके सहज में प्रजातन्त्र को उखाड़ सकेगा।

अभियुक्तों में बरनार्डो डेल नीरो प्रधान था। वह जीवन भर मेडिसियों का पृष्ट-पोषक रहा था। उसकी अवस्था अब ७५ वर्ष की थी। नीतिमत्ता, सच्चरित्रता तथा वैभव के कारण उसका नगर में बहुत दबदबा था। उसके विरुद्ध अभियोग यही था कि उसे षड्यन्त्र का पता था परन्तु, प्रजातन्त्र के प्रधान-पद पर आसीन होते हुए भी, न उसने उसे प्रगट किया और न उसके दमन की कोई चेष्टा ही की। उसके अतिरिक्त चार प्रभावशाली नागरिक और थे। सब पर राजद्रोह का, प्रजातन्त्र के विरुद्ध षड्यन्त्र करने का, दोषारोपण किया गया।

ऐसे महत्वपूर्ण मामले की सुनवाई, विचार तथा फैसला करने का दायित्व लेने का साहस न्याय-समिति तथा सिन्योरी

को नहीं हुआ। इसलिये उन्होंने परामर्श के लिये २० प्रमुख नागरिकों को अपनी बैठकों में सम्मिलित किया। षड्यन्त्र का हाल सुनते ही, जनसाधारण का क्रोध भड़क उठा और वे चिल्लाने लगे कि अभियुक्तों को प्राण-दण्ड दिया जावे। मामले की सुनवाई खतम हुई, फैसला करने का प्रश्न सिन्योरी के सामने आया। किन्तु उनकी हिम्मत नहीं हुई। उन्होंने प्रस्ताव किया कि निर्णय के लिये मामला महासभा के सामने पेश किया जावे। अभियुक्तों को प्राण-रक्षा की एक ही आशा थी—नये मन्त्रि-मण्डल का चुनाव, यदि उनमें उनके साथियों की काफ़ी संख्या हो सके। अतएव विलम्ब करने में ही उनका हित था। वर्तमान मन्त्री-मण्डल में आठ में से उनके दल के तीन सदस्य थे और निर्णय के लिये ६ मतों का होना जरूरी था। इसलिये अभियुक्तों के वकील ने किंकर्तव्यविमूढ़ सिन्योरी के उपरोक्त प्रस्ताव का विरोध किया। उन्होंने कहा कि इस मामले का निर्णय सिन्योरी ही करे, न कि महासभा, जो कि अपील का अन्तिम साधन थी।

लाचार होकर सिन्योरी को ही स्वयं निर्णय करना पड़ा। परामर्श देने के लिये उन्होंने प्राटिका सभा को एकत्रित किया। इसमें प्रजातन्त्र के सभी उच्चाधिकारियों को बुलाया। नगर के १६ विभागपति, युद्ध-समिति के १० सदस्य, रक्षा-समिति के ८ सभ्य, तथा मन्त्रणा-सभा के ८० सभ्यों के सिवाय कई प्रभाव-शाली नागरिक भी उपस्थित थे। दोनों पक्षों के वक्तव्य सुनाये गये। सिन्योरी ने उपरोक्त समितियों को आज्ञा दी कि प्रत्येक

समिति आपस में स्वतन्त्र रूप से विचार करके अपना मत निर्धारित करे। सब ने एक स्वर से यही तय पाया कि अभियुक्तों ने राजद्रोह का अपराध किया है, उन्हें प्राण-दण्ड दिया जाय और उनकी जायदाद जब्त कर ली जाय। अभियुक्तों के वकील ने तरह २ के एतराज किये और, जिस प्रकार हो सका, विलम्ब करने की कोशिश की। किन्तु उसकी एक न चली। न्याय-समिति के, जिसे रक्षा-समिति भी कहते थे, ६ मत अभियुक्तों के विरुद्ध और दो उनके पक्ष में थे। फलतः सिन्योरी को प्राण-दण्ड की आज्ञा सुनाना पड़ी।

सावोनारोला की प्रेरणा से अपील का क़ानून बना था। अतएव अभियुक्तों के वकील ने सिन्योरी के निर्णय के विरुद्ध महासभा के सामने अपील करने का निश्चय प्रगट किया। किन्तु अब प्रश्न यह उठा कि इस मामले की विशेष परिस्थितियों का ख़्याल रखते हुए, उन्हें अपील करने की अनुमति व अधिकार दिया जाय अथवा नहीं। साधारणतः तो यह अधिकार सभी को मिल जाता था। परन्तु इस मामले में कई विचारणीय बातें थीं। पहिले जब सिन्योरी ने इस मामले को महासभा के हाथ में देना चाहा था, उस समय अभियुक्तों की ओर से इसका विरोध हुआ था। दूसरी बात यह थी, कि यह निर्णय केवल सिन्योरी व न्याय-समिति का ही नहीं था। उन्होंने २०० से अधिक उच्च पदाधिकारियों तथा प्रमुख नागरिकों के परामर्श से ही फ़ैसला किया था। क्या ऐसी असाधारण न्याय-सभा के विरुद्ध भी अपील स्वीकार

की जाय ? यह बात तो सब को विदित थी कि अभियुक्तों के वकील ने समय बर्बाद करने के लिये तरह तरह की चालें चली थीं। क्या ऐसी दशा में भी अपील होने दी जाय ?

सिन्योरी में इस प्रश्न पर वाद-विवाद हुआ। उन्होंने फिर प्राटिका सभा को बुलाया। सिन्योरी के चार सदस्य अपील के पक्ष में थे किन्तु प्राटिका सभा में इतना मतभेद हुआ और इतनी गड़बड़ मची, कि वे कुछ भी निश्चय न कर सके। चार दिन के लिये उनकी बैठक स्थगित की गई। अभियुक्तों को कुछ समय तो मिला।

ता० २१ अगस्त को फिर सिन्योरी तथा प्राटिका की बैठक हुई। अगस्त के बाद ही नया चुनाव होने वाला था—जिससे अभियुक्तों को कुछ आशा थी। यहां खबर पर खबर आ रही थी कि पाइरो सेना-संग्रह कर रहा है और शीघ्र ही फ्लोरेंस पर धावा करेगा। जनसाधारण उत्तेजित होने लगे।

जब सिन्योरी तथा प्राटिका की बैठक हो रही थी उसी समय विविध राज्यों में रहने वाले फ्लोरेंस के राजदूतों के पत्र आये। उन्हें पढ़ने से मालूम हुआ कि वास्तव में प्रजातन्त्र की अवस्था बहुत संकट ग्रस्त है—पोप और लुडोविको उसका सत्यानाश करने पर तुले हुए हैं तथा फ्लोरेंस के कितने ही नागरिक उनको गुप्त रीति से सहायता कर रहे हैं। ये पत्र उपस्थित सभ्यों को सुना दिये गये। अपील पर सिन्योरी का मत विभाजित था। विभाग-पतियों की ओर से

कहा गया कि हम में से कुछ लोग अपील के पक्ष में है। युद्ध-समिति ने, जिसे कि परराष्ट्र समिति भी कह सकते हैं, कहा—"इटली के राजा लोग हमारे विरुद्ध षड्यन्त्र में शामिल हैं। इस मामले को लेकर जो उपद्रव और उत्तेजना फैल रही है, उससे उनके कार्य को सहायता ही मिल रही है। अपील चाहने वालों का उद्देश्य न्याय-प्राप्ति की इच्छा नहीं, क्योंकि जन-साधारण का मत तो सभी जानते हैं। उनकी इच्छा केवल विलम्ब करना ही है। विलम्ब से भीतर और बाहर विघ्न और विपत्तियों की वृद्धि ही होगी। यदि अपील का अधिकार दिया ही जाय तो हमें नगर की रक्षा के लिये सारी सेना को भी तैयार रखना चाहिये।" क़ानून-पण्डितों ने कहा—"वर्त्तमान सङ्कटापन्न परिस्थिति में अपील को अस्वीकार करना ही न्याय-संगत होगा।" न्याय-समिति ने, जो कि साधारणतः राजनीतिक मामलों का निर्णय किया करती थी, कहा कि 'अपील' अस्वीकार की जावे।' प्रधान नागरिक १२ समितियों में विभाजित थे। उन सब ने एक स्वर से कहा "जो निर्णय हो चुका है वह बिना विलम्ब कार्य रूप में परिणत किया जाय।" परन्तु यह सब सलाह मात्र थी—निर्णय तो सिन्योरी के हाथ में ही था।

परन्तु सिन्योरी की हिम्मत ही नहीं पड़ती थी कि किसी भी तरफ निर्णय कर सके। रात्रि के १० बज चुके थे। वे बैठक स्थगित करना चाहते थे। इस पर फ्रेन्सिसको वलोरी, जो कि सावोनारोला का बड़ा भक्त था और पियग्नोनी दल का

एक प्रमुख नेता माना जाता था, अपने क्रोध को नहीं सम्भाल सका। उसने निर्वाचन-पत्रों की पेटी को सिन्योरी की टेबिल पर जोर से पटक कर धमकी देते हुए कहा—"न्याय करो, नहीं तो विप्लव मच जायगा।" सभापति डर गया। उसने वोट ली। पाँच मत अभियुक्तों के विरुद्ध और चार उनके पक्ष में आये। किन्तु निर्णय के लिये तो छः मतों की जरूरत थी। अब वलोरी मारे क्रोध के भद्रता व शिष्टाचार को भूल गया। उसने गर्ज कर कहा—"तब फिर आप लोगों ने इन सब नागरिकों को क्यों बुलाया ? क्या उन्होंने एक स्वर से हमारी स्वाधीनता का नाश करनेवाले इन अभियुक्तों के विरुद्ध अपना मत नहीं दिया ? क्या आप सार्वजनिक कुशलता चाहने वाले लोकमत की पुकार नहीं सुनते ? क्या आपकी समझ में यह नहीं आता कि हम कितने घोर संकट में हैं ? आप महानुभावों को याद रखना चाहिये कि फ्लोरेंस के नागरिकों ने आप को इस पद पर इसीलिये नियुक्त किया है कि आप नगर की स्वतंत्रता की रक्षा करें। यदि आप इन देशद्रोहियों पर दया दिखलाने के लिये अपने कर्त्तव्य से च्युत होंगे, तो आप यह भी अच्छी तरह समझ लीजिये कि स्वतन्त्रता के न्याय्य एवं पवित्र उद्देश्य की रक्षा के लिये सैकड़ों लोग आगे आवेंगे और जो उसके विरुद्ध हैं उनका सर्वनाश करेंगे।" यह कह कर उसने वोट की पेटी को फिर सभापति की ओर बढ़ा दिया। सभापति ने यह मन्तव्य विचारार्थ रखा—"यह देखते हुए कि क़ानून-पण्डित, मजिस्ट्रेट, मन्त्रणा-सभा

तथा अन्यान्य नागरिक सभी प्राण-दण्ड के पक्ष में हैं, यह जान कर कि विलम्ब करने से आपत्ति एवं उपद्रव की आशंका है, यह आज्ञा दी जाती है, कि आज ही रात्रि को आठ सदस्यों की समिति उन पांचों अभियुक्तों को प्राण-दण्ड दे जिनके विरुद्ध वह इस सभा में पहिले ही अपना निर्णय सुना चुकी है।" वलोरी की रुद्र मुद्रा ने सभी को भयभीत कर दिया था। सिन्योरी के वे सदस्य, जो कि अभियुक्तों से सहानुभूति रखते थे, डर गये और अपने मत पर स्थिर नहीं रह सके,फल यह हुआ कि सर्वसम्मति से अपील अस्वीकृत की गई, दण्डाज्ञा-पत्र अष्ट सदस्यों के पास भेजा गया,और वे अभियुक्तों के शिरच्छेद करने की तैयारी करने लगे।

अभियुक्त कारावास ले जाये गये। उन्हें समय दिया गया कि अपने पुरोहितों से भेंट कर पाप-स्वीकार तथा पाप-मोचन आदि धार्मिक कृत्यों से निवृत्त होकर मृत्यु के लिये तैयार होजावें। बात उड़ रही थी कि अभियुक्तों को मुक्त करने के लिये उनके साथी और सम्बन्धी तैयारियां कर रहे हैं। इसलिये सारे नगर में सैनिकों का कड़ा पहरा था। वध-स्थल पर भी सेना उपस्थित थी। वध- का दृश्य देखने के लिये जन-समूह भी एकत्रित हुआ था। एक-एक करके अभियुक्त वध-स्थान पर लाये गये। हर एक के साथ एक पुरोहित और एक मजिस्ट्रेट था। बन्दी शान्त और संयत थे। अभियुक्त यूपकाष्ट पर मस्तक रखता, कुठार का आघात होता, शीश कट कर अलग गिर पड़ता। इस प्रकार एक-एक करके फ्लोरेंस के इन पांच कुलीन, बख्यात एवं प्रभावशाली नागरिकों का शिर-

च्छेद हुआ। मुख़बिर लम्बर्टो डेला अन्टेला को क्षमा-दान मिला एवं उसके निर्वासन की आज्ञा रद्द कर दी गई।

यह मानना पड़ेगा कि इस मामले में प्रचलित क़ानून और नियमों के अनुसार कार्यवाही नहीं हुई। जहां जीवन-मरण का प्रश्न होता है, वहां यदि निष्पक्ष भाव के साथ क़ानून का अक्षरशः पालन नहीं किया जाता, तो उसे हम अन्याय कह सकते हैं। और ऐसी हालत में अभियुक्तों के साथ सहानुभूति न करना असम्भव हो जाता है। यह दूसरी बात है, कि क़ानून का क्रम पूरा कर लेने के बाद भी परिणाम यही निकलता जो कि उसके अधूरे रहने से हुआ। राजनीतिक आवश्यकताओं के कारण इस मामले में जल्दी की गई और राजनीतिक कारणों ही से अभियुक्तों के पक्षपाती विलम्ब चाहते थे। यह निर्विवाद है कि, क़ानून के विधानके अनुसार, अभियुक्तोंको अपील का उचितअधिकार नहीं दिया गया और ऐसा करने में सावोनारोला के एक भक्त वलोरी का भारी हिस्सा था। सच है, कि जनसाधारण की यही इच्छा थी और बहुत से लोग नगर को संकट से बचाने का यही उपाय समझते थे। अतएव निष्पक्ष समालोचक को यह कहना पड़ेगा कि राजनीतिक बातों का विचार करके इस मामले में क़ानून के एक आवश्यक नियम का पालन नहीं किया गया। इसे आप कुछ भी कहें, देशभक्ति से प्रेरित सावधानी व बुद्धिमानी तक भी कह दें, परन्तु न्याय कदापि नहीं कह सा[illegible] शासन समितियों, प्रधान [illegible] है।

जब जनसाधारण ने विद्रोहियों के प्रति किसी प्रकार की सहानुभूति प्रदर्शित नहीं की, प्रत्युत चिल्ला चिल्ला कर उनके वध का ही अनुरोध किया, तो एक प्रकार से महासभा का मत प्रगट हो ही चुका। हां, साथ-ही साथ, यदि क़ानून की रीति भी पूरी कर दी जाती, तो न्याय को पवित्रता बनी रहती, समालोचकों का मुंह बन्द हो जाता, और परिणाम में भी कोई अन्तर नहीं आता।

सावोनारोला के शत्रुओं ने यह दोष उसके सिर मढ़ने की कोशिश की है। वे कहते हैं कि सावोनारोला ही अपील के क़ानून का विधाता था, अतएव उसका यह कर्त्तव्य था कि वह इस मामले में उसका व्यतिक्रम न होने देता, और वलोरी को रोक कर अभियुक्तों का पक्ष-समर्थन करता। वलोरी का जो बर्त्ताव इस मामले में रहा उसमें तीव्र द्वेष की झलक अवश्य दीखती है। किन्तु इसके लिये सावोनारोला को दोषी ठहराना उसके साथ घोर अन्याय व अत्याचार करना है। अपील के सिद्धान्त में उसकी प्रेरणा अवश्य थी, किन्तु यदि हम उसकी गहराई में जावें तो यह सहज में ही मालूम हो जायगा कि जिस रूप में वह क़ानून पास हुआ वह सावोनारोला के बतलाये हुए रूप से भिन्न था। सावोनारोला चाहता था कि अपील का फैसला ८० सदस्यों की सभा करे। पास यह हुआ था कि यह कार्य महासभा के हाथ में रहे। इस मामले में ८० सदस्यों की सभा ने अपना निर्णय अभियुक्तों के विरुद्ध ही दिया था। अत-

एव जहां तक सावोनारोला के व्यक्तिगत विचारों का सम्बन्ध है, वहां तक तो कार्य हो ही गया था। दूसरी बात यह है कि राजकीय बातों में, सावोनारोला कभी हस्तक्षेप नहीं करता था। मामला सुनना, फैसला करना, जिनका काम है, वे करें, उसे इससे क्या मतलब! यह सच है, कि स्वातन्त्र्य-प्राप्ति के शान्तिमय संग्राम में, तथा प्रजातन्त्र के शासन-विधान में उसकी प्रबल प्ररणा थी, परन्तु यह सब उसने राजकर्मचारी की हैसियत से नहीं किया था। यह सब उसने उपदेश-मंच से, ईश्वर के संदेशवाहक के नाते से ही, किया था। उसने मन्त्र फूंका, लोगों को सिद्धान्त समझाये, राजकीय सभाओं ने उन्हें क्रियात्मक रूप दिया। किन्तु अब तो वह धर्म-बहिष्कृत था, उसका मुंह बन्द था, वह उपदेश देता ही नहीं था। जिस वाणी के बल से वह जनता के विचारों को बदल सकता था, वह पोप की कृपा से आज मूक थी। यह शंका हो सकती है, कि उसके कहने से ही फ्रेन्सिसको वलोरी ने दुस्साहस दिखलाया था। किन्तु सावोनारोला का कट्टर से कट्टर दुश्मन भी उस पर यह दोषारोपण नहीं करता। वे यही कहते हैं कि वह सदा की भांति चुप क्यों रहा, उसे इस बार हस्तक्षेप करना चाहिये था। जब उसने स्वयं अपने ही प्रस्ताव के समर्थन के लिये हस्तक्षेप नहीं किया, तब वह इस अवसर पर प्रजातन्त्र के दुश्मनों के लिये ऐसा क्यों करता? वह चाहता भी, तो करता कैसे? उसका तो मुंह बन्द था। वह इन दिनों सन्तमार्क से बाहर तक नहीं निकलता था। वहीं शान्त

एकान्त में पुस्तकें लिखता हुआ अपने दिन काटता था। और मनोरी भी कुछ मोम का पुतला नहीं था। वह आवेश में आकर कभी २ विवेक की सीमा को लांघ जाता। सावोनारोला के प्रति भक्ति रखते हुए भी वह उसकी सभी बातों को नहीं मान लेता था। जब वह प्रजातन्त्र का प्रधान था, उस समय उसने कितनी ही बातें ऐसी कीं जिनसे कि सावोनारोला को मतभेद था। बाद में सावोनारोला ने कहा भी था कि "बरनार्डो डेल नीरो की मृत्यु से मुझे कोई प्रसन्नता नहीं हुई, मैं हर्षित होता यदि उसे निर्वासन दण्ड दे दिया जाता।" दूसरे एक अभियुक्त टोर्नाबूनी के विषय में उसने कहा—"उस पर दया दर्शाने के लिये मैंने वलोरी से तनिक सिफ़ारिश की थी।" इस से यह स्पष्ट है कि इन अपराधियों का वध उसकी इच्छा के विरुद्ध ही हुआ था। प्रायः सावोनारोला, अपनी अभ्यस्त नीति के अनुसार, राजद्रोहियों के इस मामले से भी तटस्थ रहा; यदि वह इस स्थान से एक पग हटा भी, तो उनकी प्राण-रक्षा के लिये। किन्तु उसके शत्रुओं को तो उसे नीचा दिखलाने का कोई बहाना खोजना था। वह उन्हें मिल गया, सत्य तथा प्रमाणों से उन्हें कोई मतलब नहीं था!

---

(१६)

वैर-शान्ति का विफल प्रयास

सावोनारोला के धर्म-बहिष्कार की आज्ञा पोप ने मई १४९७ में निकाली थी। जून में यह फ्लोरेंस पहुँची, और वहां घोषित की गई। अरावियाटी दल इस परिस्थिति से लाभ उठा कर सावोनारोला पर आघात करना चाहता था, किन्तु ऐसा नहीं हो सका, क्योंकि जुलाई और अगस्त के लिये जिस मन्त्रि-मण्डल का चुनाव हुआ, उसमें सावोनारोला के साथियों का बहुमत था। इसलिये सावोनारोला अपने शत्रुओं के आक्रमणों और अत्याचारों से केवल बचा ही नहीं रहा, प्रत्युत पोप की उक्त आज्ञा को रद्द कराने का प्रयत्न भी किया गया।

स्वयं सावोनारोला ने अपने दृष्टि-कोण का स्पष्टीकरण करते हुए पोप को एक पत्र लिखा। उसने कहा, मेरे शत्रुओं के झूठे अभियोगों के आधार पर ही यह आज्ञा निकाली गई है। "मेरे शत्रु मेरे विरुद्ध अभियोग लाये, क्या इतने-ही से मैं दोषी साबित हो गया? मेरे प्रभु अपने इस सेवक से प्रश्न क्यों नहीं करते, और उन अभियोगों पर विश्वास करने से पहिले उसके उत्तर को क्यों नहीं सुनते?" सावोनारोला ने कहा कि मैं मानता हूं कि पोप संसार में ईश्वर का प्रतिनिधि है और मैं अपने सिद्धान्तों में सुधार करने के लिये सदैव प्रस्तुत हूं, परन्तु निर्णय

से पूष मुझे जो कुछ अपने पक्ष-समर्थन में कहना है, उसके लिये अवसर तो दिया जाना चाहिये। साबोनारोला न्याय की अपील करता है, दया की नहीं!

इसके अतिरिक्त साबोनारोला ने सब ईसाइयों के नाम एक खुली चिट्ठी प्रकाशित की। इसमें उसने समझाया कि क्यों उसने पोप की आज्ञा को शिरोधार्य नहीं किया। वह कहता है—

"धर्म-बहिष्कार की यह आज्ञा, ईश्वर और मनुष्य दोनों की दृष्टि में न्याय-विरुद्ध है। क्योंकि, हमारे शत्रुओं के झूठे आक्षेप और तर्क ही, इसके आधार हैं। मैं सदैव चर्च की प्रभुता को मानता रहा हूं और अब भी मानता हूं, तथा भविष्य में भी कभी उसकी आज्ञा का तिरस्कार नहीं करूंगा। तथापि, जो आज्ञा ईश्वर के नियम तथा साधुता के प्रतिकूल हो उसे मानने के लिये कोई भी बाध्य नहीं, क्योंकि ऐसी धर्म-विरुद्ध आज्ञा देते समय हमारे अधिकारी ईश्वर के प्रतिनिधि नहीं रह जाते।"

पोप ने आज्ञा दी थी कि सन्तमार्क को रोम तथा टस्कनी के संयुक्त-परिषद् के आधीन कर दो। इसके उत्तर में साबोनारोला कहता है कि इस आज्ञा का पालन करना असम्भव है; वह चाहे, तब भी ऐसा नहीं कर सकता। इसके उसने दो कारण बतलाये। पहिला, सन्तमार्क के सभी भिक्षु एक स्वर से इस आज्ञा के विरुद्ध हैं। दूसरा, ऐसा करने से उनके धार्मिक नियमों तथा उपासनाओं में शिथिलता आजावेगी। दूसरी खुली चिट्ठी में उसने गरसन, अन्टोनियस आदि धर्म-शास्त्रियों के प्रमाण देते हुए कहा

कि यदि हमारी अन्तरात्माका यह दृढ़ विश्वास हो कि अधिकारी की अमुक आज्ञा अन्याय-पूर्ण व धर्म-विरुद्ध है, तो हमें उसका पालन नहीं करना चाहिये। न्याय-विरुद्ध आज्ञा हिंसा का एक रूप है, और उससे बचने के लिये दूसरी शक्तियों की सहायता लेना भी अनुचित नहीं है। पोप की आज्ञा के विरुद्ध ईसाई-संसार की धर्म-महासभा में अपील करने का अधिकार भी प्रत्येक ईसाई को है।

पोप ने सावोनारोला को रोम बुलाया था। उत्तर में सावोनारोला ने एक पत्र लिखा और कहा कि यदि मुझे अभयदान मिले, यदि मुझे यह वचन दिया जाय कि मैं कुशलता पूर्वक वहां जाकर लौट आ सकूंगा, तो मैं आने के लिये तैयार हूं।

सन्त मार्क के सन्यासियों ने भी पोप को एक प्रार्थना-पत्र लिखा। उन्होंने कहा कि हम प्रतिक्षण सावोनारोला के संसर्ग में आते हैं। उसका जीवन कितना पवित्र है, उसके सिद्धान्त कितने सच्चे हैं, उसकी प्रेरणा ने कितनों की काया-पलट की है, इसके हम साक्षी हैं। हम लोग तो ईश्वर-सेवा के लिये संसार से विरक्त हो चुके हैं। यदि हमारा ज्ञान और अनुभव यह बतलाता कि सावोनारोला धर्म-द्रोही तथा पाखण्डी है, तो उसका हम कदापि समर्थन नहीं करते, विशेष कर इस हालत में, जब कि वह एक विदेशी है। किन्तु बात ऐसी नहीं है। पोप ने झूठे आक्षेपों पर-ही विश्वास कर लिया है। २५० से अधिक सन्यासियों तथा ३५० से अधिक नागरिकों ने इस प्रार्थना-पत्र पर हस्ताक्षर किये और यह विनय की, कि धर्म-बहिष्कार की आज्ञा उठा ली जाय।

सिन्योरी ने भी सावोनारोला का पक्ष लिया। उन्होंने प्राटिच
सभा बुलवाई। सब ने कहा कि नगर के हित के लिये ह
सन्यासी को बचाना चाहिये। अतएव ८ जुलाई को सिन्यो
ने पोप को एक पत्र लिखा। उन्होंने कहा—

"हम सावोनारोला को साधु व धर्मात्मा पुरुष समझते हैं
वह ईसाई धर्म का मर्मज्ञ है। वह बहुत दिनों से जनसाधार
के कल्याण के लिये परिश्रम कर रहा है, और उसके जीवन त
सिद्धान्तों में कभी कोई दोष नहीं पाया गया। परन्तु पुण्य क
ईर्ष्या-द्वेष के आक्रमण से मुक्त नहीं रहता; और हमारे नग
में ही ऐसे कई लोग हैं, जो कि सच को झूठ बनाते हु
साधुओं पर प्रहार करके सत्ताशाली बनना चाहते हैं। अतए
हम बड़ी भक्ति के साथ आप से विनती करते हैं कि आप अपन
पितृ-तुल्य तथा ईश्वरीय दया से स्वयं ही इस पर विचार क
और अपना अभिशाप न केवल, धर्म-पिता सावोनारोला पर
वरन् उन लोगों पर से भी उठा लें, जो कि उसके भागी बने हों
इस प्रजातन्त्र के लिये इससे अधिक उपकार की बात और को
नहीं हो सकती, विशेष कर प्लेग के इन दिनों में जब कि नि
धाद्मायें मनुष्य की आत्मा के लिये अत्यन्त भयावह हुअ
करती हैं।"

इस तरह लिखा-पढ़ी चलती रही। किन्तु पोप का हृद
द्रवीभूत नहीं हुआ। सावोनारोला की सच्चरित्रता से उसे को
मतलब ही नहीं था, वह तो उसे कुचलना चाहता था, प्रजातन

को निर्मूल करने के लिये उसका बलिदान चाहता था! यहां सिन्योरी प्रजातन्त्र का नाम लेकर ही उसे बचाने की प्रार्थना कर रही थी। दोनों के प्रयोजनों में जमीन-आसमान का अन्तर था। सावोनारोला पोप के धार्मिक प्रभुत्व को स्वीकार तो कर रहा था, किन्तु उसे अपनी आत्मा बेचने के लिये तैयार नहीं था। उसके पत्रों में हमें विनयशीलता के साथ २ आत्म-स्वातन्त्र्य का अद्भुत आभास दीखता है। पोप का प्रयोजन तभी सिद्ध होता जब सावोनारोला अपने को मिटा देता। अतएव पोप का क्रोध शान्त नहीं हुआ। अराबियाटी दल भी विष वमन कर रहा था।

तथापि, बहुत समय तक पोप ने सावोनारोला के विरुद्ध कार्यवाही नहीं की, कोई नया प्रहार नहीं किया। इसके अनेक कारण थे। धर्म-बहिष्कार की आज्ञा प्रकाशित होने के बाद, उस साल जितने मन्त्रि-मण्डल निर्वाचित हुए, वे सब सावोनारोला के हितचिन्तक थे। यदि पोप प्रहार करता, तो वे उसे बचाते, उसका साथ देते। पोप एलेक्जेंडर पर भी इस समय एक वज्रपात हुआ—उसके ज्येष्ठ पुत्र गियोवनी की हत्या हो गई। हत्यारा पोप का दूसरा पुत्र सीजर बोर्जिया था। कहते हैं कि अपनी बहिन लूक्रेजिया को लेकर इन दोनों भाइयों में अप्राकृतिक प्रतिद्वन्दिता थी; लूक्रेजिया का अनुग्रह गियोवनी पर अधिक था, इसीलिये द्वेष के कारण सीजर ने अपने बड़े भाई को मरवा डाला, और उसके शव को नदी में फिकवा दिया। पोप के पुत्र तो कई थे परन्तु वह गियोवनी को सब से अधिक प्यार करता

था। अतएव इस रोमांचकारी दुर्घटना से उसका हृदय शोक से विह्वल हो गया। तीन दिन और तीन रात उसने न कुछ खाया और न उसे नींद आयी। इस प्रबल शोक ने जीवन में पहिली बार उसकी दृष्टि को अन्तरात्मा की ओर फेरा। उसने समस्त जीवन हृदय-हीन पाप एवं इन्द्रिय-सेवा में बिताया था। अब सहसा उसके हृदय में अनुताप के भावों का संचार हुआ। उसने अपनी धर्म-सभा के ६ सदस्यों की एक समिति बनायी और चर्च-सुधार का कार्य उसे सौंप दिया। सावोनारोला का मामला भी इसी समिति के विचाराधीन किया गया। सावोनारोला ने पोप को एक आश्वासन-पत्र भी लिखा। उसने कहा—

"ईश्वर के प्रति श्रद्धा—वह श्रद्धा, जो कि चमत्कार करती है, सब उदार कार्यों को प्रेरित करती है, जिस पर कि शहीदों के खून की छाप होती है—केवल वही श्रद्धा, मनुष्य के हृदय को सच्ची शान्ति और सान्त्वना दे सकती है। × × मैंने जिन बातों की घोषणा की है उन पर मेरा आन्तरिक विश्वास है, और उनके लिये मैं सब प्रकार के कष्ट और दमन सहने को तैयार हूँ। किन्तु ईश्वर-श्रद्धा से प्रेरित मेरे इस कार्य पर आप कृपा-दृष्टि रखें और पापियों की बातों पर ध्यान न दें। तब परमात्मा आप को शोक के स्थान पर आनन्द प्रदान करेंगे क्योंकि जो २ भविष्यद्वाणी मैंने की हैं, वे सब सत्य हैं, और ईश्वर का विरोध कर किसे शान्ति मिल सकती है! × × दयानिधि-परमात्मा इस दुःख में आप को सान्त्वना दें।"

सावोनारोला के इस पत्र से यह ध्वनि निकलती है कि पोप पर जो वज्रपात हुआ था, उसका कारण उसका पाप-पूर्ण एवं कुत्सित जीवन ही था। वह अपने प्रति किये गये पोप के व्यवहार को इसी का एक अङ्ग मानता था।

पोप का शोक, पश्चात्ताप, तथा सुधार-सम्बन्धी विचार अधिक दिन नहीं टिके। उसने द्विगुणित उत्साह के साथ फिर अपनी पापमय जीवन-चर्या को प्रारम्भ किया। वास्तव में पंचमकारों में ही उसे शान्ति मिलती थी। चर्च के सुधार की बात उड़ गई। सावोनारोला के आश्वासन में पोप को व्यंग की झलक दिखी और इससे उसने अपने को अपमानित समझा। सावोनारोला से न्याय करने की इच्छा ने पुनः तीव्र-द्वेष और शत्रुता का रूप धारण कर लिया।

यह देखकर कि सिन्योरी सावोनारोला का-पक्ष समर्थन कर रही है और फ्लोरेंस की जनता भी उसी के साथ है, पोप ने प्रलोभन द्वारा सिन्योरी तथा फ्लोरेंस को अपनी तरफ कर, सावोनारोला को निःसहाय व एकाकी बना कर, उसे कुचलने की ठानी। फ्लोरेन्स पीसा पाने के लिये अतीव लालायित था। पोप ने प्रतिज्ञा की, कि यदि फ्लोरेन्स पुण्य-संघ में सम्मिलित होजाये और उसकी अन्य शर्तें मान ले तो वह पीसा वापिस दिलवा देगा। ये शर्तें थीं—फ्लोरेन्स सरकार पोप व सावोनारोला के बीच में कोई हस्तक्षेप न करे, फ्रांस से सम्बन्ध-विच्छेद कर ले, और पाइरो की सत्ता का पुनःस्थापन हो। सारांश यह था कि पीसा पाने

के लिये, फ्लोरेंस सावोनारोला की आहुति देकर पहिले पोप की क्रोधाग्नि को शान्त करे और फिर प्रजातन्त्र का बलिदान करदे। सिन्योरी ने इन शर्तों को अस्वीकार किया फलतः पोप पुनः प्रहार करने का अवसर खोजने लगा। यहां पोप तथा सिन्योरी से लिखा पढ़ी चल रही थी, वहां शांत एकान्त में सावोनारोला अपनी "क्रूश की विजय" नामक प्रसिद्ध पुस्तक लिख रहा था। इसी समय यह प्रकाशित हुई।

फ्लोरेंस में इस समय प्लेग का भीषण प्रकोप था। ५०, ६० मनुष्य रोज मरते थे। फ्लोरेंस की बस्ती घनी थी। नगरवासी घबड़ाहट के मारे नगर छोड़ २ कर भाग रहे थे। कुछ धनी नागरिकों ने सावोनारोला से निवेदन किया कि आप भी नगर छोड़ दीजिये और देहात में हमारी कोठियां हैं, वहां शिष्य-मंडली सहित जाकर रहिये। सावोनारोला ने ऐसा करना उचित नहीं समझा। नव-दीक्षित भिक्षुओं को तो उसने मित्रों के यहां रहने के लिये देहात में भेज दिया और स्वयं दूसरे भिक्षुओं को लेकर असीम उत्साह एवं निर्भयता के साथ बीमारों की सेवा-शुश्रूषा में लग गया। प्लेग से बचने के लिये संतमार्क के भिक्षु कड़े नियमों व प्रतिबन्धों का पालन करते। परन्तु उनमें से भी कई उस व्याधि के शिकार बनने लगे। इससे एक बार उनका हृदय भी विचलित होगया और वे भी नगर छोड़ने की बात सोचने लगे। परंतु सावोनारोला ने उन्हें धैर्य एवं प्रोत्साहन दिया, और कर्तव्य-पथ पर दृढ रहने की प्रेरणा का संचार किया। भिक्षुगण क्षणिक

निर्बलता के अनन्तर अपने मठाध्यक्ष की प्रेरणा व उदाहरण के कारण सेवा-कार्य के लिये कटिबद्ध हो गये। इस समय लिखे गये एक पत्र में सावोनारोला कहता है—"यहां सन्यासी इस प्रकार मृत्यु को गले लगाते हैं मानो किसी निमंत्रणमें जा रहे हों।" अपने भाई को वह लिखता है—"यहां ५०,६० लोग रोज मरते हैं, कोई २ तो कहते हैं कि संख्या १०० तक भी पहुँच जाती है,सिवाय मुर्दों और क्रूशों के और कुछ भी दृष्टिगत नहीं होता। ईश्वर की कृपा से मैं कुशल से हूं। मैं मठ ही में हूं यद्यपि ७० से अधिक भाइयों को मैंने बाहर भेज दिया है। अपने लिये मुझे कोई भय नहीं। मेरी मनोकामना यही है कि व्याधि-ग्रस्तों व पीड़ितों को सान्त्वना दूं।" पोप की निषेधाज्ञा के कारण वह सार्वजनिक उपदेश दे ही नहीं सकता था। तथापि वह लोगों के पास जाता और व्यक्तिगत रूप से उन्हें प्लेग से बचने के उपाय समझाता। उसने एक पुस्तिका भी लिख कर वितरण कराई जिसमें कि प्लेग निवारण के लिये धार्मिक व शारीरिक नियमों का विवरण किया गया था। इसके अतिरिक्त स्वयं सावोनारोला तथा उसके साथी रोगियों की सेवा-चिकित्सा करते, अन्तकाल समीप आने पर उनकी आत्मा को शान्ति व सान्त्वना देते, और मरने पर उनका विधिवत संस्कार करते। सावोनारोला एक पत्र में लिखता है—"जो मरते हैं, उनके मुखमण्डल पर हर्ष की ऐसी आभा दीखती है कि आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता। साधारण नागरिक, सन्यासी, स्त्री पुरुष, सभी परमात्मा का गुणगान करते हुए

प्राण-त्याग करते हैं।" अपने भक्तों से सावोनारोला ने कहा—"बीमारों की सहायता करो, सब प्रकार से उनकी सेवा-शुश्रूषा करो, चाहे वे तुम्हारे दुश्मन ही क्यों न हों।" यह उसका व्यवहार था उन लोगों के प्रति जो कि उसके प्राणों के ग्राहक थे!

निषेधाज्ञा के कारण सावोनारोला की अन्तरात्मा अकर्मण्यता से ऊब रही थी। दूसरों के लिये बिना प्रयास किये उसकी आत्मा को शान्ति मिलती ही नहीं थी। उद्दीपन व्यक्तित्व के लिये कर्महीन विश्राम एक प्रकार की यन्त्रणा है। प्लेग ने सावोनारोला को इससे कुछ काल के लिये मुक्त-सा कर दिया। धीरे २ प्लेग में कमी पड़ी, अन्त में उसका लोप हो गया। नागरिक घर लौट आये। कारबार सदा की भांति फिर चलने लगा। संकट से मुक्ति के उपलक्ष में परमात्मा को धन्यवाद देने के लिये उत्सव मनाये गये। किन्तु 'ईश्वर के प्रतिनिधि' पोप ने, सावोनारोला को अपने धार्मिक अभिशाप से मुक्त करना धर्म-संगत नहीं समझा। संसार की विचित्र गति है। जो महापुरुष प्राणों की बाजी लगा कर ईश्वर की संतान, मनुष्य, की शारीरिक सेवा तथा आध्यात्मिक सान्त्वना की अविश्रान्त चेष्टा करता है और अपने अनुयायियों में भी इसी भावना का संचार करता है, वह धर्म-क्षेत्र से बहिष्कृत ही रहता है। पोप की द्वेषाग्नि शान्त नहीं हुई। वह कुछ समय तक दबी अवश्य रही किन्तु इससे उसकी ज्वाला भीषणतर ही होती गयी। इस प्रकार सन् १४९७ का वर्ष बीता। आगामी वर्ष सावोनारोला के जीवन का अन्तिम वर्ष था।

रण-आवाहन

पोप से समझौता करने के प्रयत्न निष्फल हुए। सावोनारोला ने अपने पक्ष का समर्थन तर्क व प्रमाणों द्वारा किया था। उसने चर्च की प्रभुता के सन्मुख नतमस्तक होने की प्रतिज्ञा की थी, वह केवल निष्पक्ष विचार एवं न्याय का प्रार्थी था—किन्तु पोप ने उसे कोई उत्तर ही नहीं दिया। सन्तमार्क के भिक्षुओं तथा फ्लोरेंस के नागरिकों ने सावोनारोला के धार्मिक सिद्धान्तों तथा पुण्य-शीलता की भूरि २ प्रशंसा की थी, जो धार्मिक व नैतिक सुधार उसने किये थे, जो उच्च आध्यात्मिक प्रेरणा उसके जीवन में थी, उन सब की उन्होंने साक्षी दी थी—किन्तु पोप ने उनकी एक न सुनी। सिन्योरी ने लगातार ६ मास तक बार २ पोप को यह समझाया था कि सन्यासी नगर का सुधारक व मुक्तिदाता है, नागरिक उसके आभारी हैं, तथा उस पर किये गये आक्षेप निराधार एवं द्वेषपूर्ण हैं—परन्तु पोप पर इसका कोई असर नहीं हुआ। होता भी कैसे? यदि निष्पक्ष-न्याय करना ही पोप का अभीष्ट होता तो यह मामला कब का तय हो गया होता! यदि यथार्थ में प्रश्न धार्मिक होता तो या तो वह उठता ही नहीं, और यदि उठता भी, तो उसका निपटारा सहज ही में हो जाता और सावोनारोला तथा पोप में पारस्परिक सद्इच्छा की उत्पत्ति

हो जाती। वास्तविक प्रश्न था राजनीतिक। पोप उसे गुप्त रखता था। सावोनारोला पोप की स्वार्थ-सिद्धि में बाधक था। यदि ऐसा नहीं होता तो जिस समय पोप के द्वारा नियुक्त कार्डिनलों की समिति ने यह निर्णय किया था कि सावोनारोला के सिद्धान्त धर्म-संगत हैं, उसी क्षण पोप को बहिष्कार की आज्ञा उठा लेना चाहिए थी।

बड़ी उत्सुकता से सावोनारोला पोप के उत्तर की प्रतीक्षा महीनों तक करता रहा। किन्तु उसे निराश होना पड़ा। फ्लोरेंस में दिन २ पापाचार की वृद्धि हो रही थी। उपदेश मंच सावोनारोला को पुकार रहा था। विलम्ब उसे असह्य हो उठा। उसने पोप की आज्ञा को तोड़ने का निश्चय किया। सिन्योरी ने कोई आपत्ति नहीं की। घोषणा कर दी गई कि ११ फरवरी को डुओमो के सभा-भवन में सावोनारोला का उपदेश होगा।

न्याय-याचना की प्रार्थना के विफल हो जाने पर सावोनारोला के लिये केवल दो मार्ग शेष बचे थे—आत्म-समर्पण अथवा विद्रोह। आत्म-समर्पण का अर्थ होता—भयभीत होकर अन्यायी के सामने अपने सिद्धान्त एवं आत्म-स्वातंत्र्य की आहुति। विद्रोह का अर्थ था—सत्य व न्याय के लिये धर्म के आवरण में छिपी हुई पाखण्ड-महाशक्ति की अवहेलना, वह सांसारिक पराजय जिसके द्वारा आत्मा जय घोष करती है, निरन्तर कष्ट सहन तथा दमन का वह आवाहन जिसके द्वारा मनुष्य की आदर्श-भक्ति की कठोर परीक्षा होती है, वह मृत्यु जिसके द्वारा आत्मा अमरत्व का

सन्देश सुनाती है। एक पथ जा रहा था पोप की ओर, दूसरा ईश्वर की ओर। यदि वह पोप की आज्ञा मानता है तो उसे ईश्वर की आज्ञा का तिरस्कार करना पड़ता है। वह पोप-द्रोही बने, या आत्म-द्रोही, ईश्वर-द्रोही! सावोनारोला को निर्णय करने में कोई असमंजस व कठिनाई नहीं हुई। पोप की चाल काम कर गई। विलम्ब-नीति व मौन-नीति से उसने सावोनारोला के धैर्य का बांध तोड़ दिया। सावोनारोला उसके विरुद्ध मैदान में कूद पड़ा। संसार ने देखा कि वह पोप-द्रोही है। वे समझे कि इसी कारण वह ईश्वर-द्रोही भी होगा। उस युग की आध्यात्मिक विवेक-बुद्धि तथा सूक्ष्म-दृष्टि अभी इतनी तीक्ष्ण नहीं हो पाई थी, लोगों में उस नैतिक साहस तथा त्याग की कमी थी, कि वह यह जान सकते और उच्च स्वर में घोषित कर सकते कि यह पोप-द्रोही ईश्वर-सेवी है—ईश्वर-भक्ति ही इसके पोप-द्रोह की जननी है। इस आध्यात्मिक विवेक तथा नैतिक-शक्ति के बीजारोपण एवं विकास के लिये मनुष्य की बुद्धि को शहीदों के रक्त से सींचने की जरूरत पड़ा करती है। इसीलिये बहुधा प्रथम पथ-प्रदर्शक अथवा प्रथम क्रान्तिकारी को शहीद होना पड़ता है। यही नियति थी सावोनारोला की भी।

जब तक सावोनारोला को पोप से समझौते की आशा थी, तब तक वह पोप तथा चर्च की टीका व आलोचना बड़े संयत-भाव से करता था। किन्तु अब इसकी जरूरत नहीं थी। अब तो वह विद्रोही था, संसार के सामने निर्भीकता एवं स्पष्टता से अपना

पक्ष समर्थन करने में ही उसकी बची-खुची आशा थी। पोप के चरित्र, उसकी निषेधाज्ञा तथा वास्तविक उद्देश्य को साफ २ कहने में अब उसने कोई संकोच नहीं किया। इस समय दिये गये सावोनारोला के भाषणों के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

"उन लोगों का अभिप्राय क्या था जिन्होंने कि झूठीर खबरें देकर, इस निषेधाज्ञा को जारी कराया है? सब लोग जानते हैं कि वे पुण्य-जीवन तथा धर्म-शासन को दूर हटा कर, सब प्रकार के पापों के लिये द्वार खोल देना चाहते हैं। इसीलिये निषेधाज्ञा के घोषित होते ही वे मद्यपान, कामुकता और लम्पटता में व्यस्त हो गये, और साधुता पर प्रहार हुआ। अतएव मैं कहता हूं कि यदि यह निषेधाज्ञा मुझे इस संसार में अभिशप्त करेगी तो अवश्य ही स्वर्ग में मैं उसके कारण धन्य बनूंगा। × × ×"

"समस्त धर्म-शास्त्र, सब धार्मिक प्रथायें, पौरोहित विधान तक राज-व्यवस्था के सभी नियम और क़ानून, पुण्य के आदर्श को सामने रख कर ही बनाये गये हैं। पुण्यहेतु ही परमात्मा ने संसार की सृष्टि की है। अतः जो व्यक्ति पुण्य के विरुद्ध आज्ञा देता है, वही अभिशप्त है, क्योंकि पुण्य में ही हमारे नियमों और विधानों की पूर्णता है। यदि देवदूत, माता मरियम तथा संतगण ऐसी आज्ञा निकालें, तो वे भी शाप के भागी बनेंगे। × × × यदि कोई पोप ऐसा करे तो उसी के धर्म-बहिष्कार की घोषणा होनी चाहिये।"

"इसे मैं अकाट्य समझता हूं कि कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं

है जो ग़लती न करता हो। यदि तुम कहो कि पोप ग़लती नहीं कर सकते तो यह तुम्हारा पागलपन है। तुम कहोगे कि पोप मनुष्य की हैसियत से ग़लती कर सकते हैं, परन्तु पोप की हैसियत से नहीं। मैं कहता हूं कि पोप, पोप की हैसियत से भी, न्याय-विचार से ग़लती करते हैं। जाओ, देखो कि एक पोप की दी हुई कितनी ही आज्ञाओं को दूसरे पोप ने रद्द कर दिया है, कितने ही पोपों के विचार दूसरे पोपों से भिन्न रहे हैं।"

"वे रोम में मेरे विरुद्ध क्यों गर्ज रहे हैं? क्या तुम समझते हो कि धर्म के हित के लिये? नहीं, बिलकुल नहीं। वे चाहते हैं हमारे शासन-विधान का नाश करना, वे चाहते हैं हम पर निरंकुश राज्य करना। इससे साधु-जीवन का सत्यानाश हो जावेगा, इसकी उन्हें कोई परवाह ही नहीं है;यह सब कार्य हमारे उपदेशों के कारण ही सिद्ध हुआ है, और उसके लिये हम मर मिटेंगे।"

"क़ानूनों के गुण-दोष तो उनके फल से प्रगट होते हैं। जहां साधु-जीवन है, वहीं अच्छे क़ानून हैं; जहां पापी-जीवन है, वहां उनका अभाव है। हे धर्म-पिता,कहो, यदि अखिल जगत तुम्हारा शत्रु बन जाय तब तुम क्या करोगे? तब भी मैं अविचल खड़ा रहूंगा क्योंकि मेरा उपदेश साधुता का उपदेश है,अतएव परमात्मा ही उसके उद्गम हैं। धर्म-बहिष्कार की यह आज्ञा साधुता के लिये घातक है, इसलिये शैतान से उसकी उत्पत्ति है।"

इन वचनों से एक ही ध्वनि निकलती है—धर्म का सर्वश्रेष्ट नियम पुण्य है। कोई भी सत्ता इसका निराकरण नहीं कर सकती।

पुण्य-पथ ईश्वर-पथ है। जो उसमें बाधा उपस्थित करता है उसका विरोध करना धार्मिक कर्तव्य हो जाता है।

ऐसी परिस्थिति में, ऐसे विजृंभित एवं दुस्तर भेद-भाव में, समझौता अचिन्त्य था, मध्यस्थता तक असम्भव थी। जो पोप के साथ नहीं थे, वे उसके शत्रु थे। जब विषम परिस्थिति सामने आ जाती है, और एक ही दांव में सब कुछ स्वाहा होना दिखलाई देता है, तब उदासीन व तटस्थ लोग भी शत्रु समझे जाते हैं। या तो पोप का पक्ष लो, या सावोनारोला का। इसके सिवाय अन्य गति है ही नहीं। किसका पक्ष प्रबल था? प्रश्न था धार्मिक। सदियों से ईसाई पोप ही को धार्मिक प्रश्नों का अन्तिम निर्णायक मानते आते थे। परम्परा और संस्कार का प्रभाव ऐसा था कि वे पोप के आचरण की आलोचना करना भी अनावश्यक समझते थे। पोप की ओर ईसाई सम्प्रदाय की सुसंगठित धार्मिक सत्ता थी, सावोनारोला के पास केवल उसका व्यक्तिगत प्रभाव था। फ्लोरेंस ही उसकी शक्ति का सीमित केन्द्र था। यह बराबर की शक्तियों का संग्राम नहीं था। रण-आवाहन के दिवस से ही सावोनारोला की पराजय का प्रारम्भ हुआ। उसने आत्म-समर्पण नहीं किया, युद्ध जारी रहा, अन्त में उसे प्राणोत्सर्ग करना पड़ा। यहां पोप का मनोरथ सिद्ध हुआ। वहां सावोनारोला ने महात्मा ईसा के पथ का अनुसरण कर, आत्म-बलि द्वारा आदर्श की कठोर-परीक्षा में उत्तीर्ण होकर आध्यात्मिक विजय पाई। यह संग्राम विचित्र था। इसमें दोनों पक्षों को विजय मिली,

दोनों को वांछनीय फल मिला। पोप को सांसारिक ऐश्वर्य, सावोनारोला को शहीद का ताज। संसार किसे बधाई का पात्र समझेगा?

उपदेश देने की निषेधाज्ञा के भंग किये जाने की खबर पाते ही पोप ने सावोनारोला पर वार किया। २६ फरवरी १४९८ को उसने फ्लोरेंस सरकार को एक पत्र लिखा। उसने कहा—

"हमने सुना है कि यह सन्यासी चर्च के प्रभुत्व का तिरस्कार कर उपदेश दे रहा है, और कहता है कि धर्म-बहिष्कार की आज्ञा अन्यायपूर्ण है। अतएव हम तुम्हें आज्ञा देते हैं कि इस सन्यासी को पकड़ कर कड़े पहरे के साथ हमारे पास भेज दो। यदि वह पश्चात्ताप करेगा तो हम वात्सल्य के साथ उसका स्वागत करेंगे क्योंकि हमें पापी की मृत्यु इष्ट नहीं, हम केवल उसका मानसिक परिवर्तन ही चाहते हैं। कम-से-कम उसे अधम मनुष्य मान कर दूसरों से अलग कर दो, और उसे इस प्रकार कैद कर कड़े पहरे में रखो कि वह किसी से बातचीत न कर सके। यदि आप लोग इस आज्ञा को नहीं मानेंगे, तो हमें चर्च के धर्माध्यक्ष की प्रतिष्ठा और प्रभुता को बलपूर्वक प्रतिपादन करने के लिये लाचार होना पड़ेगा, और हमें सारे फ्लोरेन्स को धर्म-द्रोही घोषित कर तथा अन्यान्य अमोघ उपायों द्वारा आप लोगों को क़ाबू में लाना पड़ेगा।"

पोप की आज्ञा का सारांश यही था कि या तो सावोनारोला को गिरफ़्तार कर हमारे पास भेज दो, नहीं तो फ्लोरेन्स में ही

उसे कारावास में बन्द कर दो। इसके सिवाय पोप ने धमकी दी थी कि यदि ऐसा नहीं करोगे तो अब की बार सारे नगर पर धर्मास्त्र का वार होगा। कृपानिधि पोप ने यह भी कहा था कि यदि सावोनारोला आत्म-समर्पण कर उसका दास बन जायगा तो उसे प्राण-भिक्षा दे दी जायगी।

दुर्भाग्य से अब फ्लोरेंस की सिन्योरी में सावोनारोलाके अनुयायियों व हितचिंतकोंका बहुमत नहीं था। पोपके विरुद्ध सिन्योरी सावोनारोला का साथ देने को अब तैयार नहीं थी। इस कारण पोप की उपरोक्त आज्ञा मिलने पर उन्होंने प्राटिका सभा बुलवाई। बहुत वाद-विवादके अनन्तर यह निश्चय किया गया कि "सन्यासी सावोनारोला से अनुरोध किया जाय कि वह धर्मोपदेश देना बन्द कर दे, जिससे कि पोप को सन्तोष मिले, पोप की अन्यान्य शर्तों को स्वीकार करना हम प्रजातन्त्र की प्रतिष्ठाके विरुद्ध समझते हैं।"

सावोनारोला का मुँह बन्द करना ही उसके लिये सबसे भीषण दण्ड था—विशेषकर फ्लोरेंस सरकार के द्वारा। किन्तु अब उसके विरोधियों के हाथ में राज्य-सत्ता थी। तथापि उसने पोप को स्पष्ट शब्दों में रण-निमन्त्रण देते हुए कहा "आपने मेरे प्रमाण-पूर्ण निवेदन पर कोई ध्यान नहीं दिया। मैं अब आपसे कोई आशा नहीं रखता। परमात्मा पर ही मेरा अनन्य भरोसा है। मैं इस संसार का ऐश्वर्य नहीं चाहता। मैं मृत्यु की खोज कर रहा हूँ, वही मेरी मनोकामना है। श्रीमानके लिये श्रेयस्कर होगा कि अब कोई देर न करें और अपनी मुक्ति के लिये साधन जुटावें"।

सावोनारोला किंकर्त्तव्यविमूढ़ नहीं था। वह विचार कर रहा था कि यूरोप के राजाओं से अपील की जाय कि पोप को सिंहासन से उतारने के लिये धर्म-महासभा बुलाई जावे। जब फ्लोरेंस की सरकार ने उसका साथ छोड़ दिया तो न्याय-प्राप्ति का यही एकान्त साधन उसके लिये बच रहा था।

१० मार्च १४९८ को सिन्योरी की आज्ञा सावोनारोला को मिली कि उपदेश देना बंद कर दो। उपदेश-मंच ही सावोनारोला की शक्ति का प्रधान दुर्ग था। तथापि, उसने सिन्योरी की आज्ञा को स्वीकार किया। किन्तु उसने कहा कि मैं अन्तिम उपदेश देकर लोगों से बिदा ले लूं। अतएव १८ मार्च को उसका अन्तिम भाषण हुआ। कौन सी प्रेरणा उसे धर्मोपदेश देने के लिये बरबस प्रोत्साहित करती रही है, इसकी हृदयस्पर्शी गद्य-काव्यमयी विवेचना इस भाषण के अन्तिम अंश में है। वह कहता है:—

"बार २ मैंने यह सोचा है और कहा है कि अब मैं इन बातों का प्रचार नहीं करूँगा, अब मैं विश्राम करूँगा और सब कुछ परमात्मा पर छोड़ दूँगा। तथापि इस उपदेश-मंच पर आते ही मैं अपने आप को रोकने में अशक्य रहा हूं और इन बातों को छोड़कर अन्य किसी बात का उपदेश देने में असमर्थ रहा हूँ। ईश्वर का संदेश मेरे हृदय और मेरी हड्डियों में अग्नि के समान प्रज्वलित होता रहा है और मैं उसे सहन नहीं कर सका हूँ। अतएव परवश होकर मुझे भाषण देना पड़े हैं। क्योंकि मुझे ऐसा अनुभव हुआ है कि ईश्वर की प्रेरणा सब कुछ सन्तप्त और दग्ध

कर रही है। फिर इस उपदेश-मंच से उतर कर मैं अपने आपसे कहता—अब मैं इन बातों की चर्चा नहीं करूँगा। मैं चिल्ला २ कर कहता—हे प्रभु, हे परमात्मा, आप इस विश्व में किसी से नहीं डरते, आप किसी की परवाह नहीं करते, आप सभी के सम्मुख सत्य की घोषणा करते हैं। हे जगदात्मा, आप अपने ही विरुद्ध दमन एवं विपत्तियों को उत्तेजित करते हैं, आप वायुवेग के समान समुद्र की लहरों को क्षुब्ध करते हैं, तूफ़ान उठाते हैं। मैं विनती करता हूँ कि शांत हो, ठहरो। किन्तु परमात्मा उत्तर देते हैं—इसका रुकना असम्भव है। अतएव हम सब कुछ ईश्वर पर ही छोड़ दें। वे ही कर्त्ता-धर्त्ता हैं। वे ही मनुष्य को अपने उद्देश्य-प्राप्ति का साधन बनाते और जब उसकी जरूरत नहीं रह जाती, तब उसे दूर फेंक देते हैं। ऐसा ही उन्होंने जरमिया के साथ किया था—लोगों ने पत्थर मार २ कर उसका वध कर डाला। ऐसी ही गति मेरी होगी जबकि हम उनके उद्देश्य की सेवा पूरी कर चुकेंगे। हां, हम संतुष्ट हैं। ईश्वर की इच्छा पूरी हो। क्योंकि जितना ही अधिक दुःख और कष्ट हमें इहलोक में सहन करना पड़ेगा उतना ही महान् एवं गौरवमय मुकुट हमें स्वर्गलोक में प्राप्त होगा।"

इस प्रकार आठ वर्षों के धर्मोपदेश के अनन्तर सावोनारोला की वाणी को चिरन्तन विश्राम मिला। जिन फ्लोरेंसवासियों के धार्मिक, राजनीतिक तथा नैतिक कल्याण के लिये उसने सतत परिश्रम किया था, जिनकी सेवा में उसकी शक्ति का व्यय

हुआ, उन्हीं ने आज आज्ञा देकर उसके उपदेश को बंद करा दिया। वह समझ गया था कि पोप के विरोध में अब फ्लोरेंस उसका साथ नहीं देगा। यदि वह सिन्योरी की आज्ञा को अस्वीकार करता तो गृह-युद्ध छिड़ जाता, रक्तपात होता, प्रजातंत्र की हानि होती, फ्लोरेंस के शत्रुओं का लाभ होता। नागरिक की हैसियत से इस आज्ञा को मानना ही उसका कर्त्तव्य था। पोप की आज्ञा को वह धर्म-विरुद्ध मान कर, उसकी क्रोधाग्निमें अपनी आहुति देने को तैयार था, किन्तु वह चाहता था कि फ्लोरेंस के हितों को उसके द्वारा कोई क्षति न पहुँचे। तथापि फ्लोरेंसवासियों की नैतिक दुर्बलता तथा कृतघ्नता पर उसे अवश्य ही दुःख हुआ होगा। यदि धर्म-सुधार तथा आत्म-स्वातंत्र्य का झंडा उठा कर, फ्लोरेंस सावोनारोला के साथ रणघोष कर देता तो वह उस महान् क्रान्ति का क्षेत्र बन जाता जिसकी कि उस युग को आवश्यकता थी। किन्तु बुद्धिवाद में पले हुए फ्लोरेंस ने अपनी सांसारिक हानि-लाभ ही की गणना की और उसी के अनुसार अपनी नीति को स्थिर किया।

इस विषम धर्म-संकट में उदासीन रहना असम्भव था। पोप के विरुद्ध हथियार रख देने की इच्छा से सावोनारोला ने फ्लोरेंस सरकार की उपरोक्त आज्ञा को शिरोधार्य नहीं किया था। वह एक नवीन एवं तीव्रतर अस्त्र का आयोजन कर रहा था। वह अस्त्र था ईसाइयों की सार्वदेशीय धर्मसभा का अधिवेशन कर, उसके सामने पोप के विरुद्ध अपील करना। वह चाहता था कि

इस महासभा के सामने पोप के कुत्सित-जीवन तथा उसके वीभत्स एवं घृणित अपराधों का भण्डाफोड़ करे, और यह साबित कर दिखावे कि यह रिश्वत के बल से पोप चुना गया है, यह धर्म-द्रोही है, और उसका जीवन ईसाई-जीवन के बिलकुल प्रतिकूल है। उस की आशा थी कि यह महासभा एलेक्जेंडर को पोप-पद से निकाल कर धार्मिक तथा नैतिक सुधारका महान् कार्य अपने हाथमें लेगी।

यह महासभा कोई स्थायी संस्था नहीं थी। कोन्सटेन्स में जो सार्वदेशीय महासभा हुई थी, उसने यह प्रस्ताव पास किया था कि दस वर्ष में एक बार पोप इसका अधिवेशन किया करें। यदि वह ऐसा न करे, तो ईसाई राजाओं को यह अधिकार दिया गया था कि वे ही इस सार्वदेशीय धर्मसभा की बैठक करें। यह महासभा पोप के धार्मिक आधिपत्य के मार्ग में कण्टक स्वरूप थी—अतएव वे इसके विरोधी थे। बहुत दिनों से किसी ने इसका अधिवेशन करने की जरूरत नहीं समझी थी। कार्डिनल डेला रोविर को हराकर एलेक्जेण्डर पोप चुना गया था। यह कार्डिनल पोप एलेक्जेण्डर का कट्टर दुश्मन तथा चार्ल्स का अन्तरंग सलाहकार था, और बहुत दिनों से धर्म-महासभा को निमंत्रित करने का परामर्श चार्ल्स को दे रहा था। चार्ल्स की इच्छा भी ऐसी ही थी, किन्तु वह इतना आलसी एवं अस्थिर-चित्त था कि इस प्रस्ताव को कार्यरूप में परिणत नहीं कर सका। अब सावोनारोला ने उत्साहपूर्वक इसमें हाथ लगाया। पहिले उसने यूरोप के राजाओं के नाम पत्र लिखे। फ्रांस, इङ्गलैण्ड, स्पेन, जर्मनी, हंगरी

आदि के नरपतियों के पास पत्र भेजने का प्रयन्ध किया गया। इन पत्रों में उसने लिखा कि चर्च अधःपतन की पराकाष्ठा तक पहुँच चुका है। आप लोग इस पर कोई ध्यान नहीं देते। अब समय आगया है उसके सुधार करने का। एलेक्ज़ेंडर पोप-पद के योग्य नहीं। वह नीच उपायों से पोप बना है। उसके पापों को सब लोग जानते हैं। वह धर्म को बेचता है। वह न ईसाई है, और न ईश्वर को ही मानता है। वह धर्म-द्रोही है। उसे सिंहासन से उतारना चाहिये। अतएव यथासम्भव शीघ्रता से किसी उपयुक्त स्थान पर धर्म-महासभा के अधिवेशन का आयोजन किया जाय। मैं तर्कों तथा दिव्य संकेतों और चमत्कारों के द्वारा अपने उपरोक्त वचनों को सिद्ध करूंगा। मार्च के अन्त तक दूतों के हाथ इन पत्रों को रवाना करने की तैयारी हो चुकी थी।

किन्तु ये पत्र निर्दिष्ट स्थान तक नहीं पहुँच सके। सावोनारोला को सब से अधिक आशा थी फ्रांस के नरेश से। जो दूत उसका पत्र लेकर फ्रांस जा रहा था, उसे मिलेन में डाकुओं ने पकड़ लिया। पत्र लूडोविको के हाथ में पड़ गया। उसने उसे पोपके पास भेज दिया। अब पोप को विदित हुआ कि सावोनारोला भी उसे उखाड़ देने के प्रयत्न में कटिबद्ध है। इसका अकाट्य प्रमाण भी उसे मिल गया। जो कलह साधारण-सी जान पड़ती थी वह ऐसा उग्ररूप धारण कर लेगी, यह पोप ने कभी नहीं सोचा था। वह समझता था कि इस सन्यासी को कुचलना एक मामूली बात होगी। किन्तु अब उसे पता लगा कि

यह सन्यासी भी उसका सत्यानाश करने पर उतारू है। अब सावोनारोला का संहार करना केवल इसलिये वांछनीय नहीं रहा कि इससे पोप की व्यक्तिगत व राजनीतिक मनोकामना पूरी होगी। अब प्रश्न था पोप के सामने आत्म-रक्षा एवं अस्तित्व का, चर्च के गौरव और प्रतिष्ठा का, अपने जीवन-मरण का। सावोनारोला का प्रहार मर्म स्थल पर था। पूर्व इसके कि सावोनारोला कुछ कर सके, अथवा उसकी अपील पर यूरोप के राजालोग कोई कार्यवाही कर सकें, यह पोप के लिये आवश्यक हो गया कि वह अपनी सारी शक्ति लगा कर शीघ्रातिशीघ्र सावोनारोलाको कुचल डाले, उसे भस्म करदे, अन्यथा उसका बोया हुआ बीज समय पाते ही भीम रूप धारण कर पोप को नेस्तनाबूद कर सकता है।

पोप भीषण प्रहार करने ही को था। वह फ्लोरेंस को धार्मिक अभिशाप देकर, इटली तथा यूरोप के राजाओं को यह आदेश देने वाला था कि धर्म-बहिष्कृत सावोनारोला का साथ देने वाले इन धर्म-द्रोही फ्लोरेंसवासियों का सत्यानाश कर दो। इससे फ्लोरेंसको अकेले ही सारे यूरोप का सामना करना पड़ता। विदेशों में रहने वाले फ्लोरेंसवासियों की संपत्ति जब्त कर ली जाती। उनका व्यापार चौपट हो जाता। फ्लोरेंस पर विपत्ति के बादल उमड़ रहे थे। फ्लोरेंस-सरकार सावोनारोला की शत्रु थी। इसी समय फ्लोरेंस में ऐसी विचित्र घटनायें घटीं जिनके कारण फ्लोरेंस के लोग भी सावोनारोला के प्राणों के ग्राहक बन गये और पोप को सावोनारोला के विरुद्ध फ्लोरेंस का पूर्ण सहयोग मिला।

(१८)

अग्नि-परीक्षा

पाइरो के विफल आक्रमण तथा बरनार्डो डेल नीरो आदि के प्राण-दण्ड के बाद विगोदल कुछ कमजोर हो गया, किन्तु सावोनारोला के प्रति उनकी शत्रुता उतनी ही भीषण बनी रही जितनी कि पहिले थी। पियग्नोनी दल में सावोनारोला के अनुयायी थे। सार्वजनिक सहानुभूति इन्हीं के साथ थी। इस दलको हम दो भागों में बांट सकते हैं। पहिला—वे लोग जो कि सावोनारोला को प्रजातन्त्र का उद्धारक मान कर उसका आदर करते थे। उनकी आंखों में सावोनारोला का महत्व राजनीतिक था। उसके धार्मिक व नैतिक ध्येयों के प्रति वे उदासीन थे। दूसरा—वे लोग जो कि सावोनारोला के पूरे भक्त थे। वे उसे ईश्वर का सन्देश-वाहक, भविष्यवेत्ता एवं दिव्यदृष्टि-सम्पन्न सिद्ध मानते थे। उनका सावोनारोला में अन्ध-विश्वास था।

बरनार्डो डेल नीरो आदि के वध के अनन्तर विगी तथा अराबियाटी दल सावोनारोला के प्रति समान द्वेष के कारण परस्पर निकट आने लगे। यहां प्रजासत्ता पर कोई विशेष-विपत्ति को आसन्न न देख कर,सार्वजनिक दल के वे लोग भी सावोनारोला से तटस्थ होने लगे जो कि उसकी राजनीतिक उपयोगिता को ही महत्व देते थे। पीसा अभी तक फ्लोरेन्स के आधीन नहीं हुआ

था, यद्यपि बार २ सावोनारोला ने उन्हें इसकी आशा दिलवाई थी। सावोनारोला के साथियों को इससे खिन्नता हुई। उसके शत्रुओं ने तो इस बात को लेकर खूब ही लाभ उठाया। वे कहते कि यदि हम पुण्य-संघ में सम्मिलित हो जाते, तो हमें बिना प्रयास के ही पीसा मिल जाता और हमें इतने धन व सैनिकों का व्यर्थ व्यय भी नहीं करना पड़ता। कुछ लोग कहते कि सारा इटली चार्ल्स के विरुद्ध है, केवल फ्लोरेन्स ही उसके पक्ष में है— यह देश-द्रोह है। पुण्य-संघ के सदस्यों में न देश-भक्ति थी, न फ्लोरेन्स प्रजातन्त्र के प्रति सदिच्छा, तथापि अपने स्वार्थ-साधन के लिये सावोनारोला के शत्रुओं ने उपरोक्त अभियोगों को फैलाया। इसका परिणाम यह हुआ कि लोगों की दृष्टि में सावो-नारोला का राजनीतिक महत्व घटने लगा।

जो लोग धार्मिक-भावना के कारण सावोनारोला के अनुयायी थे, उन पर पोप के धर्मास्त्रों का असर हुए बिना नहीं रहा। धर्माधिपति के पद से पोप एलेक्जेंडर कह रहा है कि सावोनारोला धर्म-द्रोही है, अपराधी है; उससे सम्बन्ध रखना, उसे सहयोग देना पाप है, दण्डनीय अपराध है। फ्लोरेन्सवासी एलेक्जेंडर के चरित्र को जानते थे और सावोनारोला के जीवन से भी परि-चित थे। पोप के पाखण्ड को समझते देर नहीं लगी। परन्तु सावोनारोला का साथ देना दारुण विपत्तियों को निमन्त्रण करने के समान था। अतएव सावोनारोला के प्रति उनकी जो श्रद्धा थी उसकी कठिन परीक्षा का यह अवसर था। जिन विद्वत्तापूर्ण तर्कों

और प्रमाणों द्वारा सावोनारोला ने पोप के विरुद्ध अपने पक्ष का समर्थन किया था, उन्हें समझने की जनसाधारण में न योग्यता थी, और न उत्कण्ठा। सावोनारोला कहता कि ईश्वर मेरे साथ है, दिव्य शक्तियां मेरे हाथ में हैं, मैं उनकी साक्षी देकर अपना पक्ष-समर्थन करूंगा, मेरे शत्रु दैवी प्रकोप के शिकार बनेंगे—लोगों को इन सब बातों को सुनने का अभ्यास पड़ गया था। पोप के पुत्र की मृत्यु हुई। सावोनारोला ने संकेत किया कि यह ईश्वरीय दण्ड है। पोप के पक्षपाती कुछ लोग फ्लोरेंस में कहते फिरते थे कि सावोनारोला के सिद्धांत झूठे हैं, वह प्रवन्चक है। सावोनारोला ने उन्हें ऐलान दिया कि हम लोग किसी सार्वजनिक स्थान पर ईसा-कलेवर-प्रतिक अर्घ्य के पात्र को हाथ में लेकर खड़े हों और ईश्वर से प्रार्थना करें कि जो झूठा हो, उस पर अग्नि की वर्षा हो और वह भस्म हो जावे। परन्तु उसके विरोधियों की हिम्मत नहीं हुई। तथापि १४९८ के वासन्तिक हर्षोत्सव के अन्तिम दिन वह स्वयं अर्घ्य-पात्र को हाथ में लिये हुए उपदेश मंच पर आया और बोला—"हे फ्लोरेंस के नागरिको, यदि ईश्वर के नाम पर मैंने कभी तुमसे कोई भी असत्य बात कही हो, यदि पोप की दण्डाज्ञा न्याय-संगत हो, यदि मैंने कभी किसी को धोखा दिया हो, तो तुम लोग ईश्वर से प्रार्थना करो, कि वह आकाश से मुझ पर अग्नि-वर्षा करे और सब लोगों के सामने मुझे जला कर भस्म करदे। मैं भी अपने प्रभु परमेश्वर से विनती करता हूं कि यदि मैंने सत्य का प्रचार न किया हो और यदि

आपने मेरे वचनों को प्रेरित न किया हो तो इसी क्षण मुझ पर प्रहार कर मेरा वध करे" सहस्रों मनुष्यों का समुदाय शान्त भाव से, आंखें मूंदे और घुटने टेके हुए, परमात्मा से उपरोक्त प्रार्थना में तल्लीन रहा। आध घण्टे तक यही दृश्य रहा। ईश्वर ने अग्नि वर्षा नहीं की। सन्यासी व जनसाधारण अपने २ स्थानों को लौट गये। यह घटना सिन्योरी की आज्ञा से पहिले की है। इसका वर्णन हमने यह बतलाने के लिये किया है कि सावोनारोला के प्रभाव का आधार कैसा अलौकिक तथा अद्भुत था। सावोनारोला को वह महानता, प्रतिभा एवं सफलता प्रचुर मात्रा में प्राप्त थी जिससे कि वह अपने प्रभाव के आधार को अधिक सरल, स्वाभाविक तथा साधारण-बुद्धि-गम्य बना सकता। किन्तु इस बात को उसने उचित महत्व दिया ही नहीं। इसे उस युग का लक्षण कहें या सावोनारोला के स्वभाव की विशेषता, कि जनता के अन्ध-विश्वास को ही उसने अपना आधार बनाया। उसकी भविष्यद्वाणी तथा दिव्य-दृष्टि सम्बन्धी बातों में कल्पना, रूपक, अलङ्कार आदि के अतिरिक्त एक काव्यमय रहस्यवाद का आभास मिलता है। समझाने से इसे समझना कठिन नहीं था। तथापि, सावोनारोला इस रहस्यवाद को ऐसी सघन अलौकिकता से आवृत्त किये रहता, कि स्वयं उसके लिये स्वाभाविक होते हुए भी, वह साधारण लोगों के लिये दुर्भेद्य तथा अगोचर थी। इस दुर्भेद्यता से वे हैरान नहीं होते थे क्यों कि सावोनारोला में उनकी अन्ध-श्रद्धा थी। सावोनारोला के प्रभाव को बनाये रखने के लिये

इसी श्रद्धा का बना रहना आवश्यक था। व्यवहारिक तथा क्रियात्मक दृष्टि से सावोनारोला की सिद्धि और सफलता महान् थी, किन्तु अपने प्रभावकी नींव उसने अलौकिक चमत्कारों पर ही दृढ़ की थी। इस नींवके हिलते ही सारा प्रासाद गिर पड़ेगा, उसी के पतनके साथ सावोनारोला का पतन होगा,और उसीके ध्वंसावशेषमें सावोनारोलाका क्षीण,जर्जरित,प्राणहीन शरीर भी मिलेगा।

फ्लोरेंसवासी सावोनारोला के व्यक्तित्व से अभिभूत हो संशयवाद से अन्ध-विश्वास पर आ पहुँचे थे। वह तीक्ष्ण विवेक-बुद्धि, वह मनोयोग तथा वह स्थिरप्रज्ञा अन्ध-विश्वसियों में कहां थी, कि वे सावोनारोला के जीवन के तथ्यों पर शान्तिपूर्वक विचार करते, जिससे कि उनकी भक्ति में स्वाभाविकता के साथ २ दृढ़ता भी आती। इसीलिये तनिक धक्का लगते ही वे कूद कर फिर संशयवाद पर आ पहुँचे और साथ में प्रतिहिंसा के क्रूर भाव भी लेते आये। सावोनारोला के जीवन की सारी महानता, उस की स्मरणीय सेवा, उसका उच्च चरित्र, इन सब को वे तत्क्षण भूल गये, क्योंकि जिस कल्पना पर उनकी भक्ति जमी थी, उसे वह दिव्य चमत्कार द्वारा पुष्ट नहीं कर सका। ऐसे महान परिवर्त्तन का कारण कोई महान तत्व व तथ्य नहीं था। यह हमें आकस्मिक तथा अद्भुत भले ही प्रतीत हो,किन्तु जनसाधारण की मनोवृत्तियों का स्वभाव ही कुछ निराला होता है।

अतएव जब विविध दिशाओं से सावोनारोला को विपत्तियां घेरने लगीं और उसके अनुयायियों की भक्ति की कठिन परीक्षा

का अवसर आया तब दिव्य चमत्कारों की मांगें बढ़ने लगीं। सावोनारोला की अनुपम वाग्मिता उसकी सिद्धि का एक महान साधन थी। किन्तु अब वह वाणी शान्त थी। शत्रु सबल होरहे थे। चमत्कारों का तारतम्य जारी रहना सावोनारोला के प्रभाव के लिये आवश्यक था। इसी समय एक विचित्र घटना घटी जिस ने कि सार्वजनिक उत्तेजना के वातावरण में महान् विप्लव के समान विध्वंसकारी कार्य किया।

सावोनारोला डोमिनिशियन सम्प्रदाय का था। फ्रेन्सिसकन सम्प्रदाय डोमिनिशियनों का प्रतिद्वन्द्वी था। दोनों धर्मप्रचारकों के सम्प्रदाय थे। उनमें बहुत दिनों से पारस्परिक वैमनस्य चला आता था। सावोनारोला के कारण डोमिनिशियनों की अपूर्व उन्नति और प्रसिद्धि हुई थी अतः विरोधी सम्प्रदाय की ईर्ष्या भड़क उठी थी। अब सावोनारोला का मुंह बन्द था। इस से फेन्सिसकनों को अच्छा मौका मिला। पोप सावोनारोला का शत्रु था, फ्लोरेन्स सरकार भी उसकी दुश्मन थी, इसलिये उसके विरुद्ध प्रचार करना पोप तथा फ्लोरेंस सरकारके अनुग्रह को प्राप्त करने का सहज उपाय था। अतएव संन्यासी फेन्सिसको बड़ी प्रचण्डता एवं दुस्साहस के साथ सावोनारोला पर आक्षेप करने लगा। वह कहता कि सावोनारोला धर्म-द्रोही है, प्रवंचक है, झूठा भविष्यवक्ता है। उसने सावोनारोला को चुनौती दी कि मेरे साथ अग्नि में प्रवेश कर अपने सिद्धान्तों की सत्यता को प्रमाणित करो। सावोनारोला के स्थान पर उसका प्रधान शिष्य

तथा परमभक्त सन्यासी डोमिनिको उपदेश दिया करता था। उसने सहर्ष इस ऐलान को स्वीकार कर लिया। ऐलान स्वीकृत देखकर फेन्सिसकन सन्यासी का साहस कूच कर गया। वह कहने लगा कि मैं केवल सावोनारोला के साथ ही अग्नि-परीक्षा में सम्मिलित होऊंगा और किसी के साथ नहीं। लोगों ने समझा कि बात यहीं समाप्त हो गई।

इन दो संप्रदायों की प्रतिद्वन्द्विता से सावोनारोला के शत्रुओं ने अपनी स्वार्थ-सिद्धि करने की ठानी। कंपग्नाकी गुट्ट के सदस्यों की गुप्त सभा हुई। उन्होंने सोचा कि यदि सावोनारोला अग्नि-प्रवेश करेगा तो निश्चय ही वह जल कर भस्म हो जावेगा, यदि वह नहीं करेगा, तो जनसाधारण की उस पर से भक्ति उठ जायगी और ऐसी हालत में हम दंगा खड़ा कर उसका वध कर डालेंगे। यह विचार कर उन्होंने सिन्योरी से—जिसमें कि उन्हीं के दल के लोग थे—निवेदन किया कि अग्नि-परीक्षा अवश्य होनी चाहिए। सिन्योरी भी सावोनारोला के सर्वनाश पर तुली हुई थी, इसलिये उसने भी इस षड्यन्त्र में साथ दिया। नगर की शान्ति व रक्षा का ध्यान रखना उनका परम कर्तव्य था। उनका धर्म था कि ऐसी घातक घटना को, ऐसी अस्वाभाविक परीक्षा को, कदापि न होने देते। परन्तु द्वेष एवं शत्रुता के वशीभूत हो उन्होंने न केवल इसकी अनुमति दे दी प्रत्युत फ्रेन्सिकन सन्यासियों को सिखा पढ़ाकर इसके लिये तैयार भी किया। जब सन्यासी फेन्सिसको राजी नहीं हुआ तो कम्पग्नाकी गुट्ट ने रोन्डीनेली नामक संन्यासी

को डोमिनिको के साथ अग्नि-परीक्षा में प्रवेश करने के लिये समझा बुझा कर प्रस्तुत किया। यह सब फ्लोरेन्स सरकार की इच्छा से ही नहीं, वरन् उनके अनुनय व अनुरोध से हुआ। अग्नि-परीक्षा का प्रबन्ध उन्होंने अपने हाथ में लिया। यह निश्चित किया गया कि यदि सन्यासी डोमिनिको भस्म हो जावे, तो सावोनारोला को देशनिकाले का दण्ड मिले। यदि रोन्डीनेली मरे, तो फ्रेन्सिसको निर्वासित किया जाय। यदि दोनों मर जायें, तो केवल सावोना-रोला को ही दण्ड मिले।

अग्नि-परीक्षा पर सावोनारोला का क्या मत था? वह स्वयं इसमें आगे क्यों नहीं आना चाहता था? वह इस परीक्षा को अस्वाभाविक नहीं समझता था। उसके विचारों तथा सिद्धान्तों से इसकी कुछ अंशों में पुष्टि भी होती थी। बहुत दिनों से लोग इस प्रकार के प्रमाण के लिये लालायित भी हो रहे थे। अतः सावोनारोला के साथियों ने अग्नि-परीक्षा का हार्दिक स्वागत किया। उन्होंने समझा कि हमारे आचार्य को अपनी दिव्य-शक्ति प्रमाणित करने का अवसर मिलेगा। परन्तु सावोनारोला को यह समझते देर नहीं लगी कि अग्नि-परीक्षा का प्रस्ताव उसके शत्रुओं के षड्यन्त्र का एक अंग है। धर्म-तत्व की सिद्धि के हेतु इसका आयोजन नहीं था। इसका ध्येय था सावोनारोला का सर्वनाश। लम्पट विलासी कम्पग्नाकी गुट्ट को धर्म-तत्व से क्या सम्बन्ध था? अराबियाटी मन्त्रि-मण्डल में ऐसी धार्मिक व्यग्रता अकस्मात् कहां से आ गई? ये ही लोग अग्नि-परीक्षा के प्रमुख समर्थक थे।

सावोनारोला ने अग्नि-परीक्षा का अनुमोदन नहीं किया। जब वह स्वयं उपदेश देता था उस समय उसका ऐलान किसी ने स्वीकार नहीं किया। अब क्यों वह प्रस्ताव उठाया जा रहा है? उसे विश्वास हो गया कि इसमें अवश्य छल व कपट से काम लिया जायगा। उसने कहा कि ऐसी घातक परीक्षा की आवश्यकता ही क्या है, पहिले मेरे तर्कों का उत्तर तो दो। जहां बुद्धि व तर्क के लिये स्थान है, वहां अलौकिक चमत्कारों की आवश्यकता नहीं। ऐसा करना तो ईश्वर को प्रलोभन देने के समान होगा। उसने कहा कि मेरे हाथ में इस समय एक महत्वपूर्ण कार्य है, मैं अग्नि-परीक्षा के जंजाल में पड़कर अपना समय नष्ट नहीं कर सकता। हम जानते हैं कि वह इस समय सार्वदेशीय ईसाई-महासभा के अधिवेशन के आयोजन में लगा था। पोप को पद-च्युत करना, ईसाई-जगत् का सुधार प्रारंभ करना, इन महत्वपूर्ण उद्देश्यों में उसकी संपूर्ण स्फूर्ति लगी हुई थी। जिस उद्देश्य को सामने रख कर इस समय सावोनारोला परिश्रम कर रहा था उसका क्षेत्र फ्लोरेन्स से कहीं अधिक विस्तृत था। फ्लोरेन्स सरकार ने उसका साथ न देकर उसके दृष्टि-कोण को बदल दिया था। कहां पोप को सिंहासन से उतारने का विचार, कहां धर्म-महासभा को निमन्त्रित करने का आयोजन, कहां चर्च-सुधार का स्वप्न और कहां क्षुद्र फ्लोरेन्स, उसकी अनुदार दलबन्दियां और यह कपट-पूर्ण धर्म-नामधारी अग्नि-परीक्षा! अग्नि-परीक्षा का प्रश्न जीवन मरण का प्रश्न था। यदि वह इसे स्वीकार करेगा तो उसी उद्देश्य के

निमित्त जिसकी कि साधना के लिये उसने जीवन की बाज़ी लगा दी है। अतएव सावोनारोला ने कहा "मैं अग्नि-प्रवेश करने के लिये तैयार हूँ, किन्तु एक शर्त पर। पोप तथा समस्त ईसाई राजाओं के प्रतिनिधि घटनास्थल पर उपस्थित हों। वे यह प्रतिज्ञा करें कि यदि मैं अक्षत बच जाऊंगा तो वे ईश्वर की सहायता से सार्वदेशीय चर्च का सुधार आरम्भ कर देंगे।" यही उसका उद्देश्य धर्म-महासभा बुलाने का था। इसी के लिये वह अग्नि-प्रवेश करने को उद्यत है। पर सिन्योरी को सावोनारोला की शर्त स्वीकार करने का साहस कैसे होसकता था?

यहां सन्यासी डोमिनिको के हर्ष और उत्साह की सीमा न रही। इस सरलहृदय शिष्य को अपने गुरु की सत्यता में इतनी गहरी श्रद्धा थी, कि वह दृढ़ता एवं निर्भयता के साथ अग्नि प्रवेश करने के लिये उद्यत ही नहीं वरन् अत्यन्त उत्सुक था।

यद्यपि सावोनारोला अग्नि-परीक्षा के पक्ष में नहीं था तथापि उसका यह दृढ़ विश्वास था कि यदि वह हुई तो विजय उसी की होगी। सन्यासी डोमिनिको के उन्मत्त उत्साह को उसने ईश्वरीय प्रेरणा समझा। अतः उसका विरोध क्षीण होता गया। सन्तमार्क के अन्यान्य सन्यासी भी हर्ष और उत्साह के साथ अग्नि-प्रवेश करने की इच्छा प्रकट करने लगे। २५० सन्यासियों ने पोप को पत्र लिखा कि अपने मठाध्यक्ष से सिद्धान्तों की सत्यता को प्रमाणित करने के लिये हम अग्नि-प्रवेश करने के लिये तैयार हैं। कितने ही बालक भी आगे आये। भक्ति और साहस के इस प्रवाह में सावो-

नारोला का विरोध बढ़ गया। अतएव इच्छा न रहते हुए भी उसने सिन्योरी के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और कहा कि विरोधी दल के जितने लोग आगे आवें, उतने ही लोग हमारे यहां से भी तैयार हैं।

सन्यासी डोमिनिको को अग्नि-परीक्षा के लिये अनुमति देते हुए सावोनारोला ने तत्संबंधी अपने विचारों को छपवाकर प्रकाशित करवा दिया। उसने कहा—

"मेरे हाथ में इतना महत्वपूर्ण कार्य है कि मैं इन घृणित झगड़ों में सम्मिलित नहीं होसकता × × × यदि हमारे शत्रु इस परीक्षा द्वारा हमारे मामले का तथा चर्च-सुधार के प्रश्न का निर्णय करना चाहें,तो मैं अग्नि-प्रवेश करने में संकोच नहीं करूंगा, और मेरा यह विश्वास है कि मुझे कोई हानि नहीं होगी। परन्तु यदि वे अग्नि-परीक्षा द्वारा मेरे धार्मिक बहिष्कार की आज्ञा का औचित्य साबित करना चाहते हैं, तो इसके पहिले वे हमारे तर्कों का उत्तर दे लें। कदाचित वे भविष्यद्वाणी की परीक्षा अग्नि द्वारा करना चाहते हैं। किन्तु हम किसी मनुष्य को बाध्य नहीं करते कि अपनी योग्यता से अधिक उसमें विश्वास करे। हम सब को प्रोत्साहित करते हैं धार्मिक जीवन व्यतीत करने के लिये। इसके लिये पुण्य की अग्नि तथा भक्ति के चमत्कार की ही जरूरत है और बाकी सब अनावश्यक है। हमारे विरोधी कहते फिरते हैं कि वे अवश्य अग्नि में भस्म हो जायेंगे। अतएव वे स्वीकार करते हैं कि वे आत्म-घाती हैं। हम इस परीक्षा के लिये विवश

किये गये हैं, और यह समझ कर उसे स्वीकार कर रहे हैं कि ईश्वर के गौरव तथा धर्म की प्रतिष्ठा का प्रश्न है। हमें अभी-तक यह पक्का विश्वास नहीं होता कि अग्नि-परीक्षा होगी अथवा नहीं। यदि यह हुई तो वे अवश्य ही अक्षत बच जावेंगे जो कि ईश्वर की सच्ची प्रेरणा का अनुभव करते हैं। मैं अपने को एक महत्तर कार्य के लिये अलग रखना चाहता हूं और उसके निमित्त प्राणोत्सर्ग करने के लिये सदैव तत्पर रहूंगा।"

अग्नि-परीक्षा के लिये स्थान, राजभवन के सामने का विशाल चौक, तथा तिथि [illegible] अप्रेल नियुक्त की गई। चौक के बीच में ८० फुट लंबा, १० फुट चौड़ा तथा ढाई फुट ऊंचा एक मंच बनाया था। इसी पर ईंधन रक्खा था। यह तय किया गया कि ज्योंही सन्यासी मंच पर आवें, आग प्रज्वलित कर दी जाय। राजभवन के नीचे का हिस्सा दो भागों में बांट दिया गया था—एक डोमि-निशयन तथा दूसरा फेन्सिसकन सन्यासियों के लिये। वहां से मंच तक जाने के लिये २ फुट चौड़ा रास्ता था। चौक में प्रवेश करने के लिये केवल तीन ही द्वार खुले रक्खे गये थे और वहां सशस्त्र सैनिकों का प्रबन्ध था। चौक में भी स्थान २ पर सैनिक नियुक्त किये गये थे जिससे कि किसी प्रकार का दंगा व उत्पात न होने पावे। सेना-नायकों में सलवियाटो को छोड़कर सभी सावोनारोला के शत्रु थे। चौक में १००० सैनिकों से कम नहीं थे। कंपग्नाकी गुट्ट के सैकड़ों सैनिक डोल्फो स्पिनो के नेतृत्व में वहां उपस्थित थे और सावोनारोला पर वार करने का मौका

खोज रहे थे। सब लोग अग्नि-परीक्षा की उत्सुकता से बाट जोह रहे थे। जनसाधारण के लिये यह एक विचित्र तमाशा था, फ्लोरेंस के इतिहास में यह एक अपूर्व चीज़ थी। सारा नगर उस दृश्य को देखने के लिये उमड़ पड़ा। सावोनारोला ने स्त्रियों को सलाह दी थी कि वे न आयें वरन् घर ही पर रह कर ईश्वर से प्रार्थना करें। उनको छोड़कर सारा नगर वीरान होगया था। सब लोग चौक में इकट्ठे हुए थे। १० बजे सवेरे से अग्नि-परीक्षा प्रारंभ होने को थी।

उस दिन संतमार्क के अधिवासी बहुत सवेरे उठे। बहुत समय तक वे प्रार्थना में तन्मय रहे। सावोनारोला के अन्यान्य अनुयायी भी वहीं एकत्रित हुए। सावोनारोला ने पूजा की और उपस्थित उपासकों को प्रसाद दिया। सबके मुख पर प्रसन्नता एवं शान्ति के भाव झलक रहे थे। सावोनारोला ने उनका उत्साह-संवर्द्धन करते हुए कहा—"मैं नहीं जानता कि अग्नि-परीक्षा होगी अथवा नहीं। इतना मुझे अवश्य ज्ञात हुआ है कि यदि वह हुई, तो विजय हमारी ही होगी।" उसने कहा कि सन्यासी डोमिनिको के अग्नि में प्रवेश करने से बाहर निकलने तक हम प्रार्थना में तल्लीन रहें। इसी समय उनको लेने के लिये सिन्योरी के दण्डधर पहुँच गये। सब लोग दो क़तारों में जुलूस बनाकर निकले। आगे २ भिक्षुगण थे, फिर लाल टोपी लगाये डोमिनिको था, और उसके पीछे दो सन्यासियों के साथ अर्घ्य-पात्र लिये हुए सावोनारोला था। सब के हाथों में क्रूश थे जिन्हें कि वे ऊपर उठाये हुए थे। धार्मिक भजन गाते हुए यह जुलूस फ्लोरेंस के मार्गों में

घूमता हुआ, राजभवन के चौक में पहुँचा। जो स्थान उनके लिये नियुक्त था, वहां वे बैठ गये और ईश्वर-भजन में लग गये। पास ही एक वेदी बनी हुई थी। उसी पर अर्घ्य-पात्र को रख कर सावोनारोला घुटने टेक कर ईश्वर-वन्दना में मग्न होगया। चौक में भीड़ का क्या ठिकाना था! प्रातःकाल से लोग जमा होने लगे थे। आसपास की छतों तथा खिड़कियों पर भी लोग बैठे थे और कोई २ खंभों तथा दीवालों पर चढ़ गये थे।

डोमिनिको शान्त था। उसके मुखमण्डल पर अपूर्व आनन्द एवं उत्साह की ज्योति शोभायमान हो रही थी। भिक्षु-गण धर्म-गीत गाते तथा मन्त्रोच्चारण कर रहे थे। अभी तक विरोधी-दल के लोगों ने मुंह नहीं दिखाया था। राजभवन में सिन्योरी की बैठक हो रही थी। फेन्सिसको तथा रोन्डीनेली उससे गुप्त परामर्श कर रहे थे। उनकी बाहर आने की हिम्मत ही नहीं होती थी। सिन्योरी किसी प्रकार उनमें साहस संचार करने की चेष्टा कर रही थी। उनके साथी यहां वहां घबराये हुए घूम रहे थे और समय नष्ट करने की चेष्टा में लगे थे। पाइरो अल्वर्टी, जो कि सावोनारोला का कट्टर शत्रु था, अग्नि-परीक्षा का निरीक्षक नियुक्त किया गया था। फेन्सिसकनों ने डोमिनिको की लाल टोपी पर आपत्ति की और कहा कि इस में जादू फूंक दिया गया है। सावोनारोला ने उत्तर दिया कि हम लोग जादू-टोना में विश्वास नहीं करते। तथापि डोमिनिको ने विरोधियों को सन्तोष देने के लिये अपनी टोपी उतार दी। फिर

भी फ्रेन्सिसकन प्रतिनिधि नहीं आया। अब वे कहने लगे कि इसके वस्त्रों में जादू कर दिया गया है जिससे कि वे जलें नहीं। डोमिनिको ने कहा मैं कपड़े भी बदलने को तैयार हूं। वह राजभवन गया और वहां अपने सब कपड़े उतार कर एक दूसरे सन्यासी के कपड़े पहिन लिये। अब उससे कहा गया कि सावोनारोला के समीप मत खड़े रहो। डोमिनिको ने यह बात भी मान ली। वह विरोधी दल के बीच जाकर खड़ा हो गया और विपत्ती के आने की बाट जोहने लगा।

इतने पर भी विपक्षी प्रतिनिधि आगे नहीं आया। जो शंका सावोनारोला के हृदय में उठ रही थी, वह सबल हो गई। उसने देखा कि विरोधी दल के लोग सिम्योरी के पास आते जाते हैं, और सरकारी कर्मचारी भी उन्हीं का पक्ष ले रहे हैं। उसने संदेशा भिजवाया कि अब विलंब क्यों किया जा रहा है। प्रतिज्ञा करते २ जनसमूह भी उत्तेजित हो रहा था। फ्रेन्सिसकन सन्यासियों ने फिर नयी २ आपत्तियां करना प्रारम्भ किया। वे बोले कि डोमिनिको क्रूश हाथ में लेकर अग्नि-प्रवेश नहीं करे। डोमिनिको इस पर भी राजी हो गया। फिर वे कहने लगे कि वह अर्घ्य-पात्र को लेकर अग्नि में न जावे। अब डोमिनिको के धैर्य व सहिष्णुता का बांध टूट गया। उसने कहा कि यह मांग निरर्थक तथा धर्म-विरुद्ध है। वाद-विवाद प्रारम्भ हुआ। इसी बहाने को लेकर फ्रेन्सिसकनों ने कहा कि हम अग्नि-प्रवेश नहीं कर सकते। १२॥ बज चुके थे। जनसाधारण भूखे प्यासे बैठे २ प्रतीक्षा

कर रहे थे। सिन्योरी के सदस्य बाहर निकलते ही नहीं थे। सावोनारोला के साथियों को बैठे २ तीन घन्टे हो गये थे। बात असल यह थी कि रोन्डीनेली किसी प्रकार अग्नि-प्रवेश करने को राजी नहीं होता था। सिन्योरी ने उसे घन्टों तक समझाया और हिम्मत बंधाई। अन्त में जब उन्होंने देखा कि वह किसी प्रकार उद्यत नहीं होता तो उन्होंने घोषणा करा दी कि अग्नि-परीक्षा नहीं होगी। क्यों नहीं होगी, इसका कारण उन्होंने कुछ भी नहीं बतलाया। उन्होंने सावोनारोला को आज्ञा दी कि अपनी शिष्य मण्डली सहित वापिस लौट जाओ। उन्हें सन्तमार्क तक पहुँचाने के लिये दण्डधर भेजे गये। बर्लामशी कहता है कि "तब यह बात स्पष्टतया प्रगट हुई कि सावोनारोला के शत्रु सिवाय उसकी मृत्यु के और किसी चमत्कार की इच्छा नहीं रखते थे।"

अग्नि-परीक्षा नहीं हो सकी, इसमें सावोनारोला का कोई दोष नहीं था। तथापि यह उसके पतन का कारण हुआ। भूखी, प्यासी, थकित जनता मारे क्रोध के पागल हो उठी। उन्होंने यह नहीं सोचा कि दोष किस का है, वे उन्मत्त होकर सावोनारोला के साथियों पर टूट पड़े। मौका देखकर कम्पग्नाकी गुट्ट सावोनारोला की हत्या करने के लिये दौड़ा। किन्तु वीर सलवियाटी अपने ३०० सैनिक के साथ उनकी रक्षा के लिये पहुँच गया। क्रुद्ध जनता अब क्या करती? उसे अपने को रोकना पड़ा। जनसमूह की गालियों की वर्षा को सहन करते हुए किसी प्रकार सावोनारोला और उसके साथी सन्तमार्क तक सकुशल पहुँचे।

इस घटना ने सावोनारोला की प्रतिष्ठा के आधार को नष्ट कर दिया। उसके थोड़े से निकटस्थ साथियों तथा घनिष्ट मित्रों, भक्तों व शिष्यों को छोड़ कर सारा फ्लोरेंस उसका शत्रु बन गया। जिस फ्लोरेंस की स्वाधीनता का वह विधाता था, उसी की सरकार अब उसके रक्त की प्यासी थी, उसके विरुद्ध षड्यन्त्र तथा विश्वासघात कर रही थी, और लोगों को उस पर आक्रमण करने को उत्तेजित कर रही थी। जिस जनता का वह उद्धारक था, जिसके सुधार के लिये उसने आठ वर्ष तक अथक परिश्रम किया था, वह आज उसकी कट्टर शत्रु बन गयी थी, और हिंसा से पागल हो उसकी हत्या के लिये उतावली हो रही थी। कहने की जरूरत नहीं, इन सब बातों में पोप का अदृश्य हाथ काम कर रहा था।

सावोनारोला के जीवन के शेष दिनों की कथा उसके दुःख, अपमान एवं यन्त्रणा की करुण कहानी है। इन सब को असीम धैर्य एवं शान्ति से वहन करता हुआ, वह मृत्यु का आलिंगन करता है। जनता की नारकीय कृतघ्नता, फ्लोरेंस सरकार की पैशाचिक नीचता व कुटिलता इस करुणार्द्र गाथा को और भी अधिक रोमाञ्चकारिणी बनाते हैं।

---

(१६)

संत मार्क के मठ पर आक्रमण और सावोनारोला का आत्म-समर्पण

अग्नि-परीक्षा न होने से जनसाधारण के भावों में सावोनारोला के विरुद्ध जो सहसा महान् परिवर्तन हुआ, उस पर दो चार शब्द कहना जरूरी है। यह निर्विवाद है कि सावोनारोला का उसमें कोई दोष नहीं था। ऐलान उसकी ओर से नहीं दिया गया था। उसे स्वीकार कर संतमार्क के प्रतिनिधि ठीक समय पर घटना-स्थल पर पहुँच गये थे। वे अग्नि-परीक्षा के लिये तैयार ही नहीं, वरन् व्यग्र भी थे। दोष था उसके विपक्षियों का, जिन्होंने कि पहिले ऐलान दिया, फिर तरह २ की आपत्तियां उपस्थित कीं और उसके बाद घटना-स्थल पर आये तक नहीं। तथापि समस्त फ्लोरेंस ने सावोनारोला तथा संतमार्क के भिक्षुओं को ही दोषी ठहराया। इसका कारण मनोवैज्ञानिक है। लोग भूखे प्यासे प्रतीक्षा करते२ थक गये थे। वे आये थे चमत्कार देखने की उत्कण्ठा से। सावोनारोला पर उनको भरोसा था। वह उन्हें बहुत दिनों से विश्वास दिला रहा था कि अवसर आने पर ईश्वर उसके द्वारा अलौकिक चमत्कार भी करेगा। लोगों की बुद्धि के अनुसार यह अवसर अब आया था। किन्तु वे निराश हुए। अतः उनके विचारों में

विप्लवकारिणी प्रतिक्रिया हुई। सावोनारोला के तर्क-वितर्कों तथा सूक्ष्म विचारों को समझने की इस समय न उनमें इच्छा थी, न विवेक और न स्थिर-चित्तता। बहुत दिनों से संचित अंध-विश्वास का बांध अकस्मात् टूट गया, इसलिये प्रतिक्रिया के प्रवाह ने प्रचण्डरूप धारण कर लिया, हिंसक वृत्तियां जागृत हो उठीं। यह सब युक्ति-संगत नहीं; किन्तु स्वाभाविक था। स्वयं सावोनारोला के ही कितने भक्तों को घोर निराशा हुई। उन्होंने कहा कि यदि विपक्षी दल के लोग नहीं भी आये, तब भी सावोनारोला को अकेले अग्नि-प्रवेश करना चाहिये था और अपनी दिव्य-शक्ति को प्रमाणित करने का यह अवसर उसे कदापि नहीं चूकना चाहिये था।

सावोनारोला के शत्रुओं ने जनसाधारण की प्रकोपाग्नि को तरह २ से प्रज्वलित करने में कोई कसर नहीं की। अराबियाटी दल के लोगों ने यह बात फैला दी कि सावोनारोला ने अग्नि-प्रवेश करने से साफ इन्कार कर दिया और सब लोगों को धोखा दिया। विरोधी दल के प्रतिनिधि, जो कि परीक्षा के समय राज-भवन में छिपे हुए थे, अब बाहर निकले और यह घोषित करने लगे कि विजय हमारी हुई। सिन्योरी ने एक प्रस्ताव पास कर फेन्सिसकन सन्यासियों की सेवा के पुरस्कार स्वरूप २० वर्ष तक के लिये कुछ वार्षिक रकम बांध दी। सिन्योरी के इस नीच एवं पक्षपात-पूर्ण व्यवहार से जनता की हिंसक प्रवृत्तियों को बड़ी उत्तेजना मिली। कंपग्नाकी दल के लोगों ने उन्हें खूब भड़काया

और उनका नेतृत्व ग्रहण किया। वे मार्गों में यत्र तत्र सावोनारोला के साथियों पर हमले करने लगे। कई का तो वध भी कर डाला। इससे उनकी उच्छृङ्खलता व रक्त-पिपासा बढ़ती गई और अब उन्होंने संतमार्क के मठ पर आक्रमण किया।

जिन लोगों ने सावोनारोला की वास्तविक महानता को समझा था, उनकी भक्ति का आधार दृढ़ था। उन्होंने कुसमय में भी उसका साथ नहीं छोड़ा। ये उसके लिये सर्वस्व त्याग करने के लिये तैयार थे। परंतु इनकी संख्या थोड़ी थी। इनमें से बहुतों को यह पता पहिले ही लग गया था कि संतमार्क पर हमला होने वाला है। वे यह भी जानते थे कि सावोनारोला हिंसात्मक उपायों के अवलंबन का विरोध करेगा। अतएव गुप्त रीति से उन्होंने मठ की रक्षा के लिये थोड़े से अस्त्र-शस्त्र इकट्ठे कर लिये थे। आठ दस लोग रात भर रह कर वहां पहरा भी दिया करते थे। एक तरफ ये मुट्ठी भर वीर थे, दूसरी तरफ़ समस्त क्रुद्ध फ्लोरेंस।

अग्नि-परीक्षा के दूसरे दिन, अर्थात् ८वीं अप्रेल की शाम को, कंपग्नाकी-गुट्ट के नेतृत्व में जन-समूह ने मठ पर हमला किया। भिक्षुओं के अतिरिक्त लगभग ३० नागरिक भी मठ में उपस्थित थे। मठ के सब द्वार बंद कर दिये गये थे। जनसमूह ने उसे घेर लिया। १०, १२ भिक्षुओं ने भी मठ की रक्षा के लिये हथियार उठाये। सावोनारोला को यह देखकर बड़ा दुःख हुआ। उसने कहा कि हथियार रख दो, दूसरे के रक्त से अपने हाथों को कलुषित मत करो, मैं शत्रुओं को आत्म-समर्पण करूंगा। भक्तों और

शिष्यों ने, आंखों में आंसू भर, हाथ जोड़ कर, उसका मार्ग रोक लिया और उससे गिड़गिड़ा कर विनती करने लगे कि ऐसा मत कीजिये, शत्रु आप के टुकड़े २ कर डालेंगे, तब आप के बिना हमारी क्या दशा होगी। सावोनारोला ने कहा कि ईश्वर-वंदना ही हमारा अस्त्र है। कुछ लोग द्वारों की रक्षा के लिये रह गये। बाकी सब उपासनागृह में जाकर घुटने टेक कर प्रार्थना में निमग्न होगये।

आक्रमणकारियों की संख्या बढ़ती जाती थी। सिन्योरी के शरीररक्षक भी उनसे मिल गये। वे मठ के दरवाजों को तोड़कर भीतर घुसने का प्रयत्न करने लगे। बाहर से पत्थरों व अस्त्रों की वर्षा होने लगी। इसी समय सिन्योरी के दण्डधर एक आज्ञा-पत्र लेकर वहां पहुंचे। सिन्योरी का आदेश था कि मठ के लोग हथियार रख दें, और जो लोग मठ छोड़ना चाहते हैं, उन्हें अभय-दान मिलेगा। सावोनारोला को आज्ञा दी गई कि १२ घंटे के भीतर फ्लोरेंस राज्य की सीमा से बाहर निकल जाओ। इस आज्ञा का तात्पर्य आक्रमणकारियों को प्रोत्साहित करने तथा मठ-रक्षकों को निर्बल तथा निःशस्त्र करने के सिवाय और कुछ भी नहीं था। आक्रमण रोकने की चेष्टा तो सिन्योरी ने की नहीं, प्रत्युत मुट्ठी पर मठ-रक्षकों को ही दूर हटाने की चाल चली। सावोनारोला की निर्वासन आज्ञा का गुप्त प्रयोजन यही था, कि मठ से बाहर निकलते ही आततायी उसका बध कर डालेंगे।

मठ-रक्षकों में फ्रेन्सिसको वलोरी भी था। सिन्योरी के शारीरिक आरक्षक के बल पर वह मठ से बाहर निकला। उसको

इरादा था कि अपने घर जाकर हथियार और सैनिकों को एकत्रित कर शत्रुओं को रोकने का प्रयत्न करे। उसने देखा कि शत्रु-दल ने उसके घर को चारों तरफ से घेर लिया है। इसी समय सिन्योरी का एक दण्डधर आया और बोला कि सिन्योरी ने आपको राजभवन में बुलाया है। निर्भीकता से वलोरी राजभवन की ओर चला। वह थोड़ी दूर ही जा पाया था कि शत्रु उस पर चारों तरफ से टूट पड़े और उसे मार डाला। हत्यारों में उन षड्यन्त्रकारियों के सम्बन्धी थे जिन्हें कि वलोरी के कारण प्राणदण्ड मिला था। वलोरी का आर्त्तनाद सुन कर उसकी पत्नी खिड़की से झांक रही थी। नीचे से किसी शत्रु ने उसे भी एक बाण मारा और वह स्वर्ग में अपने पति से जा मिली। इस के बाद आततायियों ने उसके भवन को लूट कर उसमें आग लगा दी। इन अत्याचारों पर सिन्योरी ने कोई ध्यान ही नहीं दिया।

मठ का घेरा जारी था। रात्रि हो रही थी। आक्रमणकारियों की संख्या और हिम्मत बढ़ती जाती थी। कुछ लोग दीवाल फांद कर मठ में पहुँच गये और प्रार्थना में दत्तचित्त सन्यासियों पर वार करने लगे। इस पर सन्यासी भी आत्म-रक्षा के लिये तैयार हो गये। खूब मार-काट होने लगी। जो आक्रमणकारी मठ के भीतर आ गये थे उन्होंने दरवाजे खोल दिये। इस कारण बहुत से लोग मठ में घुस आये। सन्यासियों ने जीवन में प्रथम बार हथियार उठाये थे। तथापि बहुतों ने अद्भुत साहस एवं

वीरता का परिचय दिया। नतीजा यह हुआ कि आक्रमणकारियों को पीछे हटना पड़ा। विजय मठ-रक्षकों की हुई।

इसी समय सिन्योरी की दूसरी आज्ञा पहुँची कि जो लोग एक घण्टे के भीतर मठ छोड़ कर नहीं चले जावेंगे, वे विद्रोही समझे जावेंगे। यह स्पष्ट था कि सरकार मठ के सर्वनाश पर तुली हुई है। बहुत से लोग मठ छोड़ कर चले गये। इससे मठ-रक्षकों की संख्या कम हो गयी। आक्रमणकारियों ने फिर हमला किया। सन्यासियों ने फिर उन से लोहा लिया। वेदी के पास रक्तपात हुआ। सावोनारोला सब से कहता फिरता कि हथियार फेंक दो, रक्त से हाथ लाल मत करो, क्रूश उठाओ -।- पर उस कोलाहल व मारकाट में दो चार को छोड़ कर किसी ने उसकी नहीं सुनी।

अब सिन्योरी की तीसरी आज्ञा पहुँची। सावोनारोला डोमिनिको तथा सिलवेस्ट्रो को राजभवन में आने का आदेश दिया गया था। उन्हें सिन्योरी ने अभयदान दिया था, और यह प्रतिज्ञा की थी कि शान्ति स्थापित होते ही मठ में वापिस जाने की अनुमति दे दी जायगी। उनको लाने के लिये सैनिक भी भेजे थे। सावोनारोला ने इस आज्ञा को शिरोधार्य किया। सिन्योरी की आज्ञा का वास्तविक अर्थ वह जानता था। वह समझ गया था कि अब मैं वापिस नहीं लौटूंगा। अतएव अपने भिक्षु भाइयों से उसने अन्तिम विदा ली और कहा—

"जो कुछ मैंने कहा है, ईश्वर की प्रेरणा से कहा है। स्वर्ग-

स्थित ईश्वर इस बात के साक्षी हैं कि मैं असत्य नहीं कह रहा हूं। मैं यह नहीं जानता था कि सारा नगर इतनी जल्दी मेरा शत्रु बन जायगा। तथापि ईश्वर की इच्छा पूरी होगी। मेरा अन्तिम प्रोत्साहन यही है कि आप लोग श्रद्धा, प्रार्थना एवं धैर्य को अपने अस्त्र-शस्त्र समझें। शोक और दुःख से मैं तुम से विदा लेता हूं और शत्रुओं के हाथ में अपने को सौंपता हूं।"

रात्रि के ९ बज चुके थे। दण्डधरों ने सावोनारोला के हाथ बांध दिये और उसे राजभवन की ओर ले चले। उन्मत्त जन-समूह ने उसे चारों तरफ से घेर लिया। उनके हाथों में शस्त्र और आंखों में हिंसा थी। वे सावोनारोला को गालियां देने तथा उसका अपमान करने लगे। कोई उसको आंखों के सामने लाल-टेन घुमा कर कहता 'सची ज्योति देखो'। कोई उसकी अँगुलियां मरोड़ता, किसी २ ने उस पर थूका और पदाघात किया। जब सैनिकों ने यह अत्याचार देखा तो सावोनारोला को बीच में कर, किसी प्रकार उसे बचाते हुए आगे बढ़े। संतमार्क से राजभवन जाते समय सावोनारोला को जो व्यंग,दुर्वचन व अपमान सहन करना पड़े, उनका ध्यान करते ही सहसा महात्मा ईसा के जीवन के उस दृश्य की याद आ जाती है जब कि उनके शत्रु उन्हें गिरफ्तार कर लिये जा रहे थे!

राजभवन में लेजाकर सावोनारोला और उसके साथी अलग२ कमरों में क़ैद किये गये। जो कमरा सावोनारोला को दिया गया

यहां किसी समय कासिमो डी मेडिसी क़ैद था। समय की कैसी विचित्र गति है !

सिन्योरी ने पोप के पास इन घटनाओं की खबर भेजने में देरी नहीं की। वे जानते थे कि पोप को इससे कितना हर्ष होगा। अतएव इस अवसर से लाभ उठा कर उन्होंने पोप से निवेदन किया कि हमें फ्लोरेंस-राज्य की धार्मिक संपत्ति पर दशमांश कर लगाने की अनुमति दी जावे। सावोनारोला का संहार करना पोप के लिये जीवन-मरण का प्रश्न होगया था। सिन्योरी के हाथों ही अपने शत्रु का अन्त कराने का मौका उसे मिलगया। पोप ने उत्तर देते हुए सिन्योरी तथा फेन्सिसकन सन्यासियों को बधाई दी। धर्म-बहिष्कृत सावोनारोला से संबंध रखने के कारण सिन्योरी व फ्लोरेंस ने जो पाप किया था उसके लिये पोप ने उन्हें क्षमा-दान दिया। उनका उत्साह बढ़ाते हुए उसने कहा कि तुम चर्च के सच्चे भक्त हो, और उन्हें आशीर्वाद दिया। उसने कहा कि सन्यासियों पर अभियोग लगाओ, उन्हें यन्त्रणा दे देकर, अपराध स्वीकार कराओ, और फिर दण्ड पाने के लिये हमारे पास भेजदो दशमांश कर की अनुमति के संबंध में उसने आशा देते हुए कहा कि पहिले कार्यों द्वारा अपने को हमारी कृपा के पात्र साबित करो। तात्पर्य यह कि पहिले सावोनारोला को मिटाओ, फिर यह अनुमति मिलेगी। लुडोविको ने भी सिन्योरी को बधाई दी। उसने कहा कि मैं सब प्रकार से प्रजातंत्र की सहायता करने को तैयार हूं, और थोड़े दिनों में पीसा वापिस दिलाने का भी प्रबंध

कर दूँगा। इन प्रलोभनों व प्रशंसाओं द्वारा पोप तथा लुडोविको ने सिन्योरी को शीघ्रातिशीघ्र सावोनारोला का बलिदान देने के लिये उत्तेजित किया।

इसी समय फ्रांस-नरेश चार्ल्स की मृत्यु का संवाद आया। सावोनारोला ने उससे बारर कहा था कि'ईश्वर-निर्धारित कार्य की अवहेलना करने से तुम्हारी दुर्गति होगी और तुम्हारा अन्त भी करुणापूर्ण एवं कष्टमय होगा।' हुआ भी ऐसा ही। तथापि चार्ल्स की मृत्यु से सावोनारोला के हितों को भारी धक्का पहुँचा। वह आलसी, अस्थिर-चित्त, दीर्घ सूत्री—सब कुछ था, फिर भी वह सावोनारोला का एक प्रबल प्रशंसक और सहायक था। इटली पर आक्रमण करने का इरादा उसने अन्त तक नहीं छोड़ा था। पोप को पदच्युत करने में, तथा चर्च-सुधार के लिये, सावोनारोला को चार्ल्स ही से अधिक आशा थी। फ्लोरेन्स की स्वतंत्रता व प्रजासत्ता का चार्ल्स ही सहारा था। ७ अप्रैल को—जिस दिन कि फ्लोरेंस में अग्नि-परीक्षा का आयोजन किया गया था—चार्ल्स की मृत्यु हुई। इसने एक प्रकार से सावोनारोला को पूर्णतया असहाय व निःसम्बल बना दिया। फ्लोरेंस तथा इटली में सर्वत्र उसके शत्रु ही शत्रु भरे हुए थे। वह अकेला था, शत्रुओं के हाथ में कैदी था, और अपने अन्त की प्रतीक्षा कर रहा था।

---

(२०)

न्याय की हत्या

सावोनारोला तथा उसके दो शिष्यों की गिरफ्तारी के बाद संतमार्क की तलाशी ली गई और उसके बहुत से अनुयायी भी पकड़े गये। मठ में जो हथियार मिले, उन्हें कंपग्नाकी गुट्ट के लोगों ने इकट्ठा किया और गाड़ी में रखकर सारे नगर में घुमाया, जिससे कि लोग सावोनारोला तथा पियग्नोनी दल के विरुद्ध और भी उत्तेजित हों।

कह चुके हैं कि सिन्योरी ने प्रतिज्ञा की थी कि दंगा शान्त होते ही सावोनारोला और उसके साथी मठ वापिस जा सकेंगे। किन्तु यह उनका छल था। उनका वास्तविक उद्देश्य था, सावोनारोला तथा पियग्नोनी दल का संहार। अब सब कहीं अराबियांटी दल का ही बोलबाला था। छल-कपट, न्याय-अन्याय, किसी भी रीति से वे अपना प्रयोजन सिद्ध करना चाहते थे।

पर-राष्ट्र-समिति तथा न्याय-समिति में सावोनारोला के कुछ अनुयायी थे। उनकी अवधि अभी समाप्त नहीं हुई थी। अतएव सिन्योरी ने प्राटिका सभा बुलवाई और यह प्रस्ताव किया कि उक्त समितियों का फिर से चुनाव हो। यह प्रस्ताव क़ानून तथा शासन-विधान के बिलकुल विपरीत था। तथापि यह स्वीकृत हुआ। दोनों समितियों का नया निर्वाचन हुआ और उनमें अरा-

थियाटो दलके लोग भर दिये गये। सावोनारोला का हितचिन्तक एक भी सदस्य नहीं रहा।

सावोनारोला, डोमिनिको और सिलवेस्ट्रो के मामले की जांच व सुनवाई के लिये १० सदस्यों की एक विशेष समिति नियुक्त की गई। विचारकों में सावोनारोला के कट्टर शत्रुओं का बहुमत था। कंपग्नाकी दल का नेता डोल्फोस्पिनी, जिसने कि कितनी ही बार सावोनारोला की हत्या करने की चेष्टा की थी, आज उसके निर्णायक के पद पर आसीन था।

उस जमाने में मामलों की जांच करते समय अपराध स्वीकार कराने तथा प्रश्नों का जबरदस्ती उत्तर लेने के लिये अभियुक्तों को तरह २ की वीभत्स एवं दारुण यन्त्रणायें दी जाती थीं। पुनर्जागृति के इस युग में, विद्या एवं सभ्यता का केन्द्र फ्लोरेंस भी इन नारकीय प्रथाओं से बचा नहीं था। इस प्रथा का नाम था—रस्सी से खींचने की प्रथा। अभियुक्त के हाथ-पैर रस्सी से बांध दिये जाते,फिर उसे जमीन से ऊपर उठाकर नीचे पटकते और जोर से झटका देकर सहसा बीच ही में रोक लेते। इससे हाथ पैर की हड्डियां टूट जातीं, मांस-पेशियां विदीर्ण होजातीं, सारा शरीर दर्द से कांपने लगता। एक बार ऐसा कर अभियुक्त से प्रश्न का उत्तर मांगा जाता। यदि वह उत्तर नहीं देता अथवा यदि उसका उत्तर अधूरा व असन्तोषप्रद होता, तो उपरोक्त क्रिया की पुनरावृत्ति की जाती। इसी तरह न्याय का परीक्षा-क्रम जारी रहता। कुछ देर के बाद अभियुक्त बेहोश होजाता और अनाप शनाप बकने

लिये पोप की अनुमति लेना भी अनिवार्य था। पोप की आज्ञा का तिरस्कार, चर्च में मतभेद व अनैक्य फैलाने की चेष्टा तथा दिव्य दृष्टि व भविष्य-ज्ञान का दावा कर लोगों को बहकाने का प्रयत्न—ये सब धार्मिक अभियोग थे। राजनीतिक मामलों का विचार फ्लोरेंस सरकार के हाथ में तथा धार्मिक न्याय पोप के अधिकार में था। पोप चाहता था कि सावोनारोला रोम भेज दिया जावे। यह बात सरकार ने नहीं मानी। इसलिये पोप ने धार्मिक मामले की जांच का अधिकार फ्लोरेंस सरकार को देदिया और धार्मिक अभियोगों का निर्णय करने के लिये अपनी ओर से दो विचारक रोम से भेजे।

इन अभियोगों को स्वीकार कराने तथा अन्यान्य अपराधियों के नाम जाननेके लिये विचार-पतियों ने यन्त्रणा दे दे कर सावोनारोला से उपरोक्त रीति से प्रश्न किये। वे अभियोगों में बहुत से लोगों को फंसाकर पियग्नोनी दल का अस्तित्व मिटा देना चाहते थे। सावोनारोला का शरीर जर्जरित व निर्बल था ही, इससे वह अधिक यातना वहन नहीं कर सका। शीघ्र ही वह मूर्च्छित होगया और अनाप शनाप बकने लगा। होश में आते ही उसने अत्याचारियों से कहा "ईश्वर के लिये मुझे मार डालो।" तब उसे लिखने का सामान दिया गया। सावोनारोला ने अपना वक्तृत्व लिखा। जो उसने लिखा वह शत्रुओं की स्वार्थ-सिद्धि के प्रतिकूल था। इसलिये विचारपतियों ने उसे छिपा दिया और बाद में नष्ट कर डाला। जब उन्होंने देखा कि इस प्रकार काम नहीं निका-

लगता। ऐसी दशा में उससे चाहे जिस बात की स्वीकृति लेली जाती। कभी २ तो यह यन्त्रणा इतनी असह्य होजाती कि अभियुक्त का शरीरान्त होजाता। सभ्य शब्दों में इस प्रथा को "प्रश्न करना" कहते थे।

सावोनारोला का शरीर बचपन ही से सुकुमार था। तप, व्रत, उपवास, जागरण तथा आठ वर्षों के अनवरत परिश्रम व चिन्ता-भार के कारण वह और दुर्बल होगया था। यहां बहुत दिनों से वह रोग ग्रस्त भी रहा करता था। इतने पर भी उपरोक्त क्रिया-विधि से उससे प्रश्न किये गये। सावोनारोला के विरुद्ध जो अभियोग लाये गये थे उन्हें हम दो भागों में बांट सकते हैं, राजनीतिक और धार्मिक। राजनीतिक अभियोग था—राजसत्ता के विरुद्ध विद्रोह। इसके तीन अंग थे—उसने मठ में हथियार जमा कर नगर में उत्पात कराया और सिन्योरी की आज्ञा का विरोध करते हुए बल-प्रयोग किया। दूसरा—वह उस षड्यन्त्र में शामिल था जिसका कि उद्देश्य फ्रेन्सिसको वलोरी को जीवन भर के लिये प्रजातंत्र का प्रधान बनाने का था, अर्थात् वह बलात् शासन-विधान को पलट देना चाहता था। तीसरा—उसने राजसत्ता की अवहेलना कर, सरकार से बिना पूछे ही, यूरोप के राजाओं को पत्र भेजे थे कि धर्म महासभा का अधिवेशन करें। यह अन्तिम अभियोग राजनीतिक व धार्मिक दोनों ही था, क्योंकि विदेशी राजाओं को पत्र भेजने के लिये फ्लोरेंस सरकार की अनुमति तो आवश्यक थी ही, परंतु ये पत्र धार्मिक थे, इस-

लिये पोप की अनुमति लेना भी अनिवार्य था। पोप की आज्ञा का तिरस्कार, धर्म में मतभेद व अनैक्य फैलाने की चेष्टा तथा दिव्य दृष्टि व भविष्य-ज्ञान का दावा कर लोगों को बहकाने का प्रयत्न—ये सब धार्मिक अभियोग थे। राजनीतिक मामलों का विचार फ्लोरेंस सरकार के हाथ में तथा धार्मिक न्याय पोप के अधिकार में था। पोप चाहता था कि सावोनारोला रोम भेज दिया जावे। यह बात सरकार ने नहीं मानी। इसलिये पोप ने धार्मिक मामले की जांच का अधिकार फ्लोरेंस सरकार को देदिया और धार्मिक अभियोगों का निर्णय करने के लिये अपनी ओर से दो विचारक रोम से भेजे।

इन अभियोगों को स्वीकार कराने तथा अन्यान्य अपराधियों के नाम जाननेके लिये विचार-पतियों ने यन्त्रणा दे दे कर सावोनारोला से उपरोक्त रीति से प्रश्न किये। वे अभियोगों में बहुत से लोगों को फंसाकर पियग्नोनी दल का अस्तित्व मिटा देना चाहते थे। सावोनारोला का शरीर जर्जरित व निर्बल था ही, इससे वह अधिक यातना सहन नहीं कर सका। शीघ्र ही वह मूर्छित होगया और अनाप शनाप बकने लगा। होश में आते ही उसने अत्याचारियों से कहा "ईश्वर के लिये मुझे मार डालो।" तब उसे लिखने का सामान दिया गया। सावोनारोला ने अपना वक्तव्य लिखा। जो उसने लिखा वह शत्रुओं की स्वार्थ-सिद्धि के प्रतिकूल था। इसलिये विचारपतियों ने उसे छिपा दिया और बाद में नष्ट कर डाला। जब उन्होंने देखा कि इस प्रकार काम नहीं निका-

लता तब उन्होंने स्वयं जालसाज़ी करने की ठानी। सावोनारोला फिर बन्दीगृह में भेज दिया गया। अपनी कोठरी में पहुँचते ही वह घुटने टेक कर अपने शत्रुओं के लिये ईश्वर से क्षमा-याचना करने लगा कि "हे प्रभु, वे नहीं जानते कि वे क्या कर रहे हैं।"

सिसोने नाम का एक व्यक्ति सावोनारोला के शत्रुओं की मदद के लिये आगे आया। वह सिन्योरी का प्रतिलिपि-लेखक अथवा सिरश्तेदार था। उसने कहा "जब सच्चे प्रमाण नहीं मिलते, तब झूठे प्रमाण तैयार करना ज़रूरी है।" सिसोने मेडिसियों का पक्षपाती था। पाइरो के पतन के अनंतर उसने संतमार्क में आश्रय लिया था। वहां से वह लुडोविको के गुप्तचर का काम करता रहा। सावोनारोला के पतन के बाद वह खुल्लमखुल्ला उसका दुश्मन बन गया और जालसाज़ी से उसके विरुद्ध प्रमाण जुटाने का प्रस्ताव उसने किया। सिन्योरी ने इस नीच प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार किया, और यह प्रतिज्ञा की, कि यदि वह सफल हुआ तो उसे पुरस्कार भी दिया जावेगा।

सावोनारोला से फिर प्रश्न किये जाने लगे। उसे घोरातिघोर यन्त्रणायें दी जाने लगीं। विकलांग, अचेतन व अर्ध-चेतन अवस्था में जो कुछ उत्तर उसके मुँह से निकलता, उसे सिसोने लिखता और आवश्यकतानुसार यहाँ वहाँ परिवर्त्तन करता जाता। कहीं 'हां' की जगह 'ना' लिख लेता, कहीं वाक्य के वाक्य, प्रकरण के प्रकरण, उड़ा देता, कहीं कुछ अपनी तरफ से जोड़ देता, कहीं ऐसा परिवर्त्तन कर देता जिससे कि सारा अर्थ ही बदल जाता।

११ दिन तक पैशाचिक यन्त्रणा का वीभत्स नर्त्तन होता रहा और सिसोने जालसाज़ी के काम में नीचता के साथ लगा रहा।

इतने पर भी सावोनारोला के शत्रु क्या प्रमाण जुटा सके? सावोनारोला ने क्या २ स्वीकार किया? इस कठोर परीक्षा में सावोनारोला कहां तक सफल हुआ?

राजनीतिक प्रश्नों में वह दृढ़ रहा। कोई भी यन्त्रणा उसे तिलमात्र भी विचलित नहीं कर सकी। सिसोने द्वारा परिवर्त्तित रूप में भी उसके उत्तर उसकी महान् आत्मा एवं आदर्श की साक्षी देते हैं। सावोनारोला ने कहा "मेरा एक मात्र उद्देश्य यही था कि स्वतन्त्र शासन की स्थापना और उन्नति हो। शासन की छोटी २ बातों में मैंने कदापि हस्तक्षेप नहीं किया। मेरे निकट स्थमित्र सत्ता पर अपना आधिपत्य जमाने की चेष्टा कर रहे थे। मैंने उन्हें रोका, और निरंकुश शासन के विरोधमें व्याख्यान दिये। जब२ स्वतन्त्रता का प्रश्न उपस्थित हुआ है,तब२ कोई भी व्यक्तिगत हित मुझे सार्वजनिक सेवा से विमुख नहीं कर सका। इस कर्त्तव्य के सन्मुख मैंने अपने सर्वश्रेष्ठ मित्रों तथा भक्तों की भी परवाह नहीं की।"

धार्मिक प्रश्नों के उत्तर भी उसके अविचल साहस एवं अजेय आत्म-विश्वास का परिचय देते हैं। उसनें कहा—"मेरा विश्वास है कि पहिले चर्च को दण्ड मिलेगा, फिर उसका उत्थान होगा। इसी ध्येय को सामने रखकर, मैंने उन बातों का प्रचार किया जिससे कि सब ईसाइयों को यह ज्ञात हो जावे कि रोम में कैसे२ घृणित अनाचार हो रहे हैं, जिससे कि वे सब मिल कर सार्व-

जागृत दिव्य चेतनता, यह अदम्य विश्वास कि ईश्वर ने उसे एक महान् कार्य के निमित्त चुना है, यह दृढ़ धारणा कि ईश्वर के चिरन्तन विधान के अनुसार पापियों को दण्ड तथा पुण्यात्माओं का उद्धार अवश्यंभावी है—इन सब ने सावोनारोला में यह भावना विकसित कर दी थी कि उसे दिव्यदृष्टि एवं भविष्य-ज्ञान प्राप्त है। इसी से मानस-जगत् में उसे देवदूत दीखते, दिव्य ध्वनियां सुनाई देतीं। श्रद्धालु श्रोतागणों के सन्मुख ईश्वर-भक्ति, एवं आत्म-विश्वास से उत्तेजित वाग्मिता, में अतिशयोक्ति, रूपक तथा अलङ्कारभरी भाषा में, इस का प्रगट होना सहज था। उसकी अंतर्दृष्टि स्वार्थ एवं सांसारिकता से इतनी ऊपर थी, उसकी दूरदर्शिता इतनी तीक्ष्ण थी, कि बहुधा उसकी भविष्यद्-वाणी ठीक निकलती। इससे जनसाधारण की श्रद्धा बढ़ती और सावोनारोला की इस भावना को भी प्रोत्साहन मिलता कि उसे दिव्यदृष्टि प्राप्त है। तथापि यह कहना पड़ेगा कि सांसारिक एवं वैज्ञानिक दृष्टि से सावोनारोला की दिव्यदृष्टि तथा भविष्य-ज्ञान सम्बन्धी बातों में तत्वपूर्ण एवं प्रत्यक्ष प्रमाणों का अभाव है। इसके विपरीत होना कदाचित् असम्भव है। कहते हैं कि सन्यासी सिलवेस्ट्रो जागृत्-स्वप्न देखा करता था और उनका वर्णन सावोनारोला से किया करता था। सावोनारोला को उनकी दिव्यता पर विश्वास था। अस्तु। जब असहनीय यातनाओं के बीच, कठोर तथ्यों के वातावरण में, सावोनारोला से इस सम्बन्ध में प्रश्न पूछे गये, तो वह अपनी अभ्यस्त स्पष्टता

देशीय महासभा का अधिवेशन करें। यदि यह सभा होती तो मेरी ऐसी आशा थी कि इसके द्वारा पोप तथा अनेक महंतों व.. पादरियों की अधोगति होती। मेरी इच्छा थी कि मैं इस महासभा में उपस्थित होता। मेरा यह निश्चय था कि वहां ऐसी बातों का प्रचार करता जो कि मेरे लिये अभिमान का कारण बनतीं × × × × मेरी इच्छा थी कि इटली और उसके बाहर भी महान् धार्मिक कार्य संपादित करता।" उससे पूछा गया, 'क्या तुम पोप बनना चाहते थे'? सावोनारोला ने उत्तर दिया— "नहीं, यदि मैं अपना अभिमत कार्य पूरा कर सकता तो अपने को पोप व कार्डिनल से कहीं अधिक महान् समझता।" जब उसके शत्रुओं द्वारा परिवर्तित वक्तव्य का ऐसा आभास है तब यह समझना कठिन नहीं कि सावोनारोला ने किस वीरता व निर्भिकता के साथ बीभत्स यन्त्रणाओं को सहन किया होगा।

सावोनारोला का सब से निर्बल स्थल था, उसका दिव्यदृष्टि तथा भविष्य-ज्ञान का दावा। उसकी सहृदयता एवं सदाशयता में कोई शंका नहीं की जा सकती। भक्ति-विभोर ध्यानावस्था में उसकी अन्तर्दृष्टि अपने एक निराले संसार में विचरण करने लगती। इसके कारण अपने विचारों की सत्यता व अमोघता में उसका ऐसा अन्ध-विश्वास जमगया था कि कल्पना-जगत् के दृश्यों को वह प्रकृत जगत् के दृश्यों के समान ही महत्व देता था। रहस्यवाद उसके स्वभाव का एक अभिन्न अंग था। काव्य-कल्पना की उड़ान, ईश्वर से निरन्तर आध्यात्मिक साक्षात् से

जागृत दिव्य चेतनता, यह अदम्य विश्वास कि ईश्वर ने उसे एक महान् कार्य के निमित्त चुना है, यह दृढ़ धारणा कि ईश्वर के चिरन्तन विधान के अनुसार पापियों को दण्ड तथा पुण्यात्माओं का उद्धार अवश्यंभावी है—इन सब ने सावोनारोला में यह भावना विकसित कर दी थी कि उसे दिव्यदृष्टि एवं भविष्य-ज्ञान प्राप्त है। इसी से मानस-जगत् में उसे देवदूत दीखते, दिव्य ध्वनियां सुनाई देतीं। श्रद्धालु श्रोतागणों के सम्मुख ईश्वर-भक्ति, एवं आत्म-विश्वास से उत्तेजित वाग्मिता, में अतिशयोक्ति, रूपक तथा अलङ्कारभरी भाषा में, इस का प्रगट होना सहज था। उसकी अंतर्दृष्टि स्वार्थ एवं सांसारिकता से इतनी ऊपर थी, उसकी दूरदर्शिता इतनी तीक्ष्ण थी, कि बहुधा उसकी भविष्यद्-वाणी ठीक निकलती। इससे जनसाधारण की श्रद्धा बढ़ती और सावोनारोला को इस भावना को भी प्रोत्साहन मिलता कि उसे दिव्यदृष्टि प्राप्त है। तथापि यह कहना पड़ेगा कि सांसारिक एवं वैज्ञानिक दृष्टि से सावोनारोला की दिव्यदृष्टि तथा भविष्य-ज्ञान सम्बन्धी बातों में तत्वपूर्ण एवं प्रत्यक्ष प्रमाणों का अभाव है। इसके विपरीत होना कदाचित् असम्भव है। कहते हैं कि सन्यासी सिलवेस्ट्रो जागृत्-स्वप्न देखा करता था और उनका वर्णन सावोनारोला से किया करता था। सावोनारोला को उनकी दिव्यता पर विश्वास था। अस्तु। जब असहनीय यातनाओं के बीच, कठोर तथ्यों के वातावरण में, सावोनारोला से इस सम्बन्ध में प्रश्न पूछे गये, तो वह अपनी अभ्यस्त स्पष्टता

तथा दृढ़ता से उत्तर नहीं दे सका। पहिले उसने कहा—'हां, देव-दूतों के द्वारा मैं ईश्वर का सन्देश पाता था।' फिर उसने कहा—"इस बात को छोड़ दो। यदि ईश्वर-प्रेरित होकर मैंने भविष्यद्-वाणी की होगी तो उसके तुम्हें प्रत्यक्ष प्रमाण मिलेंगे, अन्यथा वह निरर्थक जायगी।" फिर उसने कहा—"मैं भविष्यद्वक्ता हूं या नहीं, इससे सरकार को क्या मतलब!" जब उसे और भी कठोर यन्त्रणा दी गई तो उसने कहा कि मुझ में यह शक्ति नहीं थी। दूसरे क्षण वह बोला कि नहीं, मुझ में यह शक्ति थी। इस प्रकार कष्ट-विह्वल अवस्था में उसके विचारों ने अस्पष्ट एवं असंगत रूप धारण कर लिया। सिसोने आदि ने सावोनारोला के उत्तरों को तोड़-मोड़ कर उसके स्वीकृत वक्तव्य के रूप में यह लिपिबद्ध किया—"मेरी भविष्यवाणी का आधार ईश्वरीय प्रेरणा नहीं, प्रत्युत मेरी अपनी बुद्धि थी जिसका कि आधार धर्म-पुस्तक के सद्धान्तों का अध्ययन था।" कहां तक ये वचन सावोनारोला के वास्तविक दृष्टिकोण को प्रगट करते हैं, यह कहना असम्भव है।

इतने पर भी सावोनारोला को दोषी साबित करने के संतोष-प्रद प्रमाण इकट्ठे न हो सके। स्वीकृति-पत्र में छल से उसके हस्ता-क्षर ले लिये गये, उनमें बार २ परिवर्त्तन किये गये, तथापि सिन्योरी ने यह आज्ञा दी कि अभियोगों की जांच फिर से हो। अतएव दूसरी बार प्रश्न व परीक्षा हुई। किन्तु इससे भी कोई लाभ नहीं दिखा। तब यही निश्चय किया गया कि पहिले स्वीकृति-पत्र के बल पर ही मामला चलाया जाय।

डोमिनिको और सिलवेस्ट्रो की जांच अलग अलग की जा रही थी। डोमिनिको ने अद्भुत साहस एवं सहनशीलता से अत्याचारी विपत्तियों का सामना किया। उससे कहा गया, कि सावोनारोला ने अभियोगों को मान लिया है, और यह स्वीकार कर लिया है, कि "मैं प्रवंचक हूँ"। तब भी डोमिनिको अटल रहा। उसे दारुण यातनायें दी गईं। किन्तु वह विचलित नहीं हुआ। उसने कहा "मेरा यह दृढ़ विश्वास है, कि सन्यासी सावोनारोला ईश्वर-प्रेरित है और हम दोनों ईश्वर-दत्त कार्य की सिद्धि में लगे हैं।" राजसत्ता के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह के दोषारोपण पर उसने कहा—"मैं तथा सावोनारोला मठ की रक्षा के लिये अस्त्र-शस्त्र इकट्ठे करने के पक्ष में नहीं थे।" कौन २ से नागरिकों ने मठ की रक्षा में भाग लिया था, इसका उत्तर देने से उसने इन्कार किया। उसे बार २ घोरातिघोर यन्त्रणायें दी गईं। परन्तु डोमिनिको ने शांत संयत भाव से कह दिया कि "जो कुछ मुझे कहना था, मैं कह चुका, अब आगे आप लोगों को कोई बात नहीं मालूम होगी। हां, सम्भव है, कि मेरा यह शरीर, जो क्षत-विक्षत व विकलांग हो ही चुका है, मृत्यु को प्राप्त हो जाय।" डोमिनिको के वक्तव्य में भी सिन्योरी ने परिवर्तन कराये।

सिलवेस्ट्रो निर्बल-हृदय व्यक्ति था। वह यातनाओं को सहन नहीं कर सका। और कष्ट-विह्वल अवस्था में जो कुछ उसके शत्रुओं ने चाहा वही उसने कह दिया। अपने प्राणों के मोह में आकर उसने सावोनारोला के साथ विश्वासघात किया। मठ में

आने-जाने वालों के नाम की एक सूची उसने सिन्योरी को दी। उसने कहा, कि सावोनारोला के सिद्धान्त धर्म-विरुद्ध थे और वह लोगों को धोखा देता था। तथापि सिलवेस्ट्रो ने भी सिन्योरी के सामने सावोनारोला के परमोज्वल चरित्र की प्रशंसा की, और कहा, कि वह स्वार्थ एवं दलबन्दी की भावना से सर्वथा मुक्त था।

सिलवेस्ट्रो के कथन के बल पर सिन्योरी ने सावोनारोला के अनेक साथियों को गिरफ्तार किया। सावोनारोला व सिलवेस्ट्रो के जाली वक्तव्य भी प्रकाशित करा दिये गये जिससे कि जनसाधारण को यह विदित होजाय कि वह प्रवंचक भविष्यवक्ता था और उसके धार्मिक सिद्धान्त झूठे थे। इससे सावोनारोला के भक्तों के हृदय पर गहरा आघात पहुँचा। जब उन्हें यह बतलाया गया कि स्वयं सावोनारोला ने ही सब अभियोगों को स्वीकार कर लिया है, तब उस पर से उनकी श्रद्धा जाती रही। साधारणतः सिन्योरी की धूर्त्तता काम कर गयी। संतमार्क के भिक्षुओं को विश्वास नहीं होता था कि सावोनारोला वास्तव में अपने को प्रवंचक अंगीकार कर सकता है। उन्हें सावोनारोला के जाली स्वीकारपत्र और हस्ताक्षर दिखलाये गये। तब उन्होंने स्तंभित एवं भयाकुल होकर पोप एलेक्ज़ेंडर से शरण एवं क्षमा की भिक्षा मांगी। प्रार्थना-पत्र में संतमार्क के भिक्षुओं ने लिखा—"हमारा उसमें इतना अधिक विश्वास था कि उसके लिये हम अग्नि-प्रवेश तक करने को तैयार थे। यदि वह स्वयं ही अपने दोषों को स्वीकार नहीं करता तो हमारे लिये यह असंभव था कि उस पर से

अपनी श्रद्धा को हटा सकते।" उन्होंने कहा कि "सावोनारोला ही सब पाखण्ड एवं प्रवंचना की जड़ था। उसे उपयुक्त दण्ड मिलना चाहिये। हम भोलेभाले सरलहृदय जीवों को उसी ने बहकाया था। अतएव हमें दया की भिक्षा एवं शरण देकर कृतार्थ करें।"

किन्तु सन्यासी बेनेडोटो ने इस आत्म-समर्पण में सन्तमार्क के भिक्षुओं का साथ नहीं दिया। पहिले तो प्रकाशित वक्तव्यों ने उस पर भी शंका का आघात किया। परन्तु इसका प्रभाव क्षणस्थायी रहा। बेनेडोटो फ्लोरेंस छोड़कर चला गया। कुछ समय के बाद वह लौटा और वर्षों तक इस मामले की छान-बीन करता रहा। उसने लिखित प्रमाणों की खोज की। वह लोगों से मिला, उनसे पूछ-तांछ की और जो सामग्री उसे मिली उसकी परीक्षा की। तब उसे सच्ची बातों का पता लगा और यह ज्ञात हुआ कि सावोनारोला के साथ कैसा छल-कपट व अन्याय किया गया था। अतः अपने गुरु की निर्दोषिता, महानता एवं धर्मवीरता में उसकी श्रद्धा पुनःदृढ़ और अजेय हो गयी, और जीवन-पर्यन्त वह उसकी स्मृति-पूजा करता रहा। अपनी खोज और अध्यवसाय से बेनेडोटो ने संसार के सामने सावोनारोला के सम्बन्ध की सच्ची बातों को प्रकाशित कर, अपने गुरु की स्मृति को पुण्य-तीर्थ बनाने में सहयोग देते हुए, श्रद्धांजलि समर्पित की।

एक २ करके सावोनारोला के अनुयायी उसका परित्याग कर रहे थे। कोई भाग गये थे, कोई छिप रहे थे, बहुत से शत्रुओं से मिल गये थे। ऐसे वातावरण में भी कुछ वीरात्मायें ऐसी थीं जिन

की भक्ति एवं श्रद्धा अटल तथा अखण्ड थी। उनके लिये यह विश्वास करना असम्भव था कि सावोनारोला अधर्म का प्रचारक था। किन्तु इन लोगों के प्राण संकट में थे। इनके सन्मुख पूर्ण नैराश्य था। अतएव वे शांत भाव से अपने गुरु के लिये ईश्वर से प्रार्थना करने के सिवाय और कुछ भी नहीं कर सकते थे।

२५ अप्रैल १४९८ को सावोनारोला की जांच खतम हो गई। इसके बाद उसके भाग्य के निपटारे के सम्बन्ध में पोप और फ्लोरेन्स सरकार से लिखा पढ़ी होती रही। पोप चाहता था कि सावोनारोला रोम भेज दिया जावे जिससे कि वह स्वयं उसे मृत्यु दण्ड देकर निश्चिन्त हो सके। पर सिन्योरी चाहती थी सावोनारोला के प्राणों का यथासंभव मूल्य प्राप्त करना। अतएव वह धार्मिक सम्पत्ति पर दशमांश कर लगाने की अनुमति पर जोर दे रही थी। उसने कहा कि सावोनारोला को रोम भेजने में फ्लोरेंस की इज्जत को धक्का लगेगा। साथ ही साथ सिन्योरी ने यह स्पष्ट कर दिया कि वह भी पोप के समान सावोनारोला के प्राणों को लेना चाहती है। इससे पोप शांत हो गया। उसने तीन साल तक धार्मिक सम्पत्ति पर कर लगाने की अनुमति दे दी और सावोनारोला के धार्मिक अपराधों का निर्णय करने के लिये अपनी ओर से दो विचारक फ्लोरेन्स भेजे गये। यह समिति १९ मईको फ्लोरेन्स पहुँची। इस लिखा-पढ़ी के कारण २५ अप्रैल से १९ मई तक सावोनारोला को कारावास की कोठरी में अवकाश एवं एकान्त मिला।

सावोनारोला का शरीर यन्त्रणाओं से क्षत-विक्षत हो गया था। शत्रुओं ने उसके दाहिने हाथ की हड्डियों को इसलिये बचने दिया था कि वह स्वीकार-पत्र पर हस्ताक्षर कर सके। मित्रों व अनुयायियों ने उसका परित्याग कर दिया था। मृत्यु उसकी आंखों के सामने नाच रही थी। ऐसी दशा में, शारीरिक व मानसिक वेदना को अपूर्व आत्मिक शक्ति से जीत कर, सांसारिक आशा-निराशा तथा मान-अपमान से पूर्णतया विरक्त हो, सावोनारोला ने ईश्वर से ध्यान लगाया और अपने विचारों को लेखबद्ध करने लगा। गिरफ्तारी से लगा कर मृत्यु तक सावोनारोला के क्या विचार थे, उनका वास्तविक परिचय हमें इन्हीं लेखों से मिलता है। जो वक्तव्य उसके हस्ताक्षर से प्रकाशित कराया गया था, उसमें उसके स्वतन्त्र विचार नहीं थे, क्योंकि वह यन्त्रणा दे दे कर लिया गया था, उसकी अनेक बातें अचेतन व अर्ध-चेतन अवस्था में कही गई थीं; इस पर भी उनमें परिवर्तन किये गये थे और छल से सावोनारोला के हस्ताक्षर प्राप्त किये गये थे। कारावास की कोठरी के एकान्त में अब सावोनारोला ने जो कुछ लिखा, उसमें न झूठे भविष्यद्वक्ता का अनुताप व आत्म-ग्लानि है, न अपमानित नेता का प्रकोप है और न अपने शत्रुओं व अत्याचारियों के प्रति रोष व प्रतिहिंसा के भाव हैं। इन रचनाओं में हम ईश्वर-भक्ति एवं आदर्श-सेवा के प्रति उस खिन्नता के भाव भी नहीं पाते जो कि परित्यक्त एवं तिरस्कृत व्यक्ति के लिए स्वाभाविक कहे जा सकते हैं। ईश्वर का सैनिक शैतान से युद्ध करता

हुआ अब अनन्त विश्राम की बाट जोह रहा है और प्रभु की दया, क्षमा एवं आशीर्वाद की भिक्षा मांग रहा है। वह कहता है—"मुझे केवल ईश्वर का ही विश्वास है। परमात्मा की दृष्टि में संतों का प्राणदान उत्कृष्ट है। अतएव मैं सब के सन्मुख उन्हें धन्यवाद दूंगा। यदि संसार की समस्त सेनायें भी मेरे विरुद्ध आकर खड़ी हो जावें, तब भी मुझे कोई भय नहीं होगा, क्योंकि हे प्रभु, तुम्हीं मेरी गति हो, तुम्हीं मुझे पार उतारोगे।" स्याही और कागज खतम हो जाने पर उसे लिखना बन्द कर देना पड़ा। जेलर को सावोनारोला से बड़ी भक्ति हो गई थी। उसने सावोनारोला से संदेश की याचना की। सावोनारोला ने किताब के एक पत्र पर "साधु-जीवन के नियम" लिख दिए। कारावास में लिखी गई उसकी ये रचनायें सावोनारोला की मृत्यु के बाद प्रकाशित हुईं।

यहां सिन्योरी इस बात का प्रबन्ध कर रही थी कि सावोनारोला को प्राण-दण्ड ही मिले तथा उसके पक्ष का कोई भी समर्थन न करे। उनकी यह चिन्ता थी कि कहीं न्याय के स्वांग की पोल न खुल जाय। जो न्याय-समिति उन्होंने नियुक्त की थी उस के तीन चार सदस्य स्वतन्त्र विचार के थे और उनका झुकाव न्याय की ओर होने लगा था। यह भय सिन्योरी को होने लगा था कि वे निष्पक्ष विचार करेंगे, जिसका अर्थ यही था कि वे सावोनारोला को प्राण-दण्ड से बचाने का प्रयत्न करेंगे। यह उन्हें असह्य था। अतएव ये विचारक निकाल दिए गये और उनके स्थान में सावोनारोला के कट्टर शत्रु नियुक्त किए गये। दूसरे राज्यों

में फ्लोरेन्स के जो २ राजदूत सावोनारोला से सहानुभूति रखते थे, वे भी हटा लिये गये। इसके अतिरिक्त सभी राजदूतों को ऐसी आज्ञायें व सूचनायें भेजी गईं जिससे कि विदेशों में सच्चा हाल न फैलने पावे और कोई भी सावोनारोला की सहायता न कर सके।

सावोनारोला के विश्राम तथा जीवन का अन्त आ रहा था। पोप के भेजे हुए विचारक ता० १९ मई को फ्लोरेन्स पहुँचे। जब वे नगर में प्रवेश कर ही रहे थे, उसी समय उन्होंने अपनी निष्पक्षता व न्याय-बुद्धि का परिचय दे दिया। उनमें से एक का नाम था रोमोलिनो। उसने जनसमूह से कहा—"सावोनारोला को निश्चय ही प्राण-दण्ड मिलेगा।" जिस नागरिक के यहां वह ठहरा हुआ था, उससे उसने कहा—"वध की आज्ञा तो मैं रोम ही से लेकर आया हूँ।"

२० मई को सावोनारोला की फिर से परीक्षा हुई। फ्लोरेंस की न्याय-समिति भी उपस्थित थी। पुनः क्रूर तथा वीभत्स यातनायें दे दे कर उससे प्रश्न किये गये। पुनः उसके उत्तरों में परिवर्त्तन कराये गये। तथापि वे निर्णायक ऐसे प्रमाण नहीं जुटा सके जिससे कि अभियुक्तों को प्राण-दण्ड दिया जाता। अतएव न्यायालय की लिखित कार्यवाही गुप्त रखी गई और जाँच अधूरी ही रह गई। तथापि फैसला कर ही दिया गया।

न्याय के स्वांग में असफल हो, विचारकों को न्याय की हत्या करनी पड़ी। बिना पूरी परीक्षा तथा पर्याप्त प्रमाणों के ही, २२मई

को निर्णय निश्चित करने के लिये धार्मिक तथा राजनीतिक न्याय-समितियों की बैठक हुई। वादविवाद के लिये गुञ्जाइश ही कहां थी! अभियुक्त भी उपस्थित नहीं थे। फ्लोरेन्स सरकार की न्याय समिति ने सावोनारोला, डोमिनिको तथा सिलवेस्ट्रो को राजसत्ता के विरुद्ध विद्रोह करने का अपराधी ठहराया और मृत्यु-दण्ड का फैसला सुनाया। पोप के प्रतिनिधियों ने उन्हें धर्म-द्रोह, आज्ञा-तिरस्कार तथा धार्मिक मत-भेद फैलाने का दोषी पाया। दण्ड के सम्बन्ध में उन्होंने उपरोक्त न्याय-समिति के मत का अनुमोदन कर अपनी धार्मिकता तथा न्याय-प्रियता का परिचय दिया।

यह भी तय हुआ कि अगले दिन मृत्यु-दण्ड दे दिया जाय। अपराधियों के प्राण किस प्रकार लिये जांय, इस विषय पर भी विचार हुआ। यह निर्णय किया गया कि पहिले सन्यासियों को फांसी पर लटका दिया जाय, और उसके बाद उसी अवस्था में उनके शरीर को आग लगा कर भस्म कर दिया जाय।

---

(२१)

अन्त

सन्यासियों को प्राण-दण्ड की आज्ञा बन्दीगृह में अलग २ सुनाई गई। उसे सुनते ही डोमिनिको के हर्ष का पारावार नहीं रहा। वह ऐसे आनन्द के साथ तैयारी करने लगा मानो किसी प्रीतिभोज में जा रहा हो। बेचारे सिलवेस्ट्रो को ऐसे कठोर दण्ड की आशा नहीं थी, क्योंकि उसने अपने वक्तव्य में सावोनारोला के विरुद्ध बहुत कुछ कह कर दया की प्रतीक्षा की थी। अतएव यथाज्ञा सुनकर वह व्याकुल हो गया। किन्तु वह कर ही क्या सकता था?

जो दूत सावोनारोला को आज्ञा सुनाने आये, उन्होंने उसे घुटने टेके हुए प्रार्थना में तन्मय पाया। सावोनारोला ने मृत्यु-दण्ड का सम्वाद सुना। उसके शांत गम्भीर मुखमण्डल पर हर्ष-विषाद किसी की भी रेखा नहीं आयी। मानो इसकी प्रतीक्षा वह बहुत काल से कर रहा था। आज्ञा सुनकर निर्विकार भाव से वह पुनः प्रार्थना में लीन हो गया।

थोड़ी देर के बाद उसके लिये रात्रि का भोजन लाया गया। सावोनारोला ने उसे ग्रहण करने से इन्कार किया, और कहा· "मुझे शरीर से अधिक अपनी आत्मा को सबल एवं पवित्र बनाने की जरूरत है, जिससे कि मैं मृत्यु के लिये तैयार हो सकूं।"

इतने ही में एक पुरोहित आया। वह काले कपड़े पहिने हुए था और उसका मुँह भी घूंघट से ढका हुआ था। वह बन्दीग्रह का एक कर्मचारी था और बन्दियों को सान्त्वना तथा धर्मोपदेश देकर मृत्यु के लिये तैयार करना ही उसका कर्त्तव्य था। इस पुरोहित का नाम था निकोलिनी। उसने सावोनारोला से पूछा 'तुम्हारी कोई इच्छा हो तो कहो।' सावोनारोला ने कहा "मरने से पहिले मैं डोमिनिको और सिलवेस्ट्रो से भेंट करना चाहता हूँ।" निकोलिनी उसी वक्त सिन्योरी के पास गया। पहिले तो उन्होंने आगा-पीछा किया, किन्तु बाद में निकोलिनी के आग्रह से एक घंटे के लिये सन्यासियों को परस्पर भेंट करने की आज्ञा देदी। इसी बीच में सावोनारोला मरणप्राय लोगों के लिये विहित पाप-स्वीकार, क्षमा-याचना आदि के धार्मिक कृत्यों से निवृत्त हो चुका था।

४० दिनों तक अलग २ रहने तथा अवर्णनीय दारुण यातनाओं के सहन करने के अनन्तर, मृत्यु के द्वार पर तीनों सन्यासी महासभा के भवन में मिले। यह भवन सावोनारोला के अनुरोध से बनाया गया था। जिस शीघ्रता से अथवा जिस सुन्दरता के साथ, इसका निर्माण हुआ था, उसे देखकर लोग कहते थे, कि देवदूतों ने इसकी सृष्टि की है। आज बन्दी की हालत में, वहीं अपने शिष्यों के साथ जीवन की अन्तिम रात्रि में, सावोनारोला की भेंट हुई। उसके शिष्यों से कहा गया था, कि सावोनारोला ने अभियोगों को अंगीकार कर लिया है। किन्तु उसके तापस मुख-

मण्डल की उग्र विभूति को अक्षुण्ण देखते ही सन्यासियों की शंका तत्क्षण विलीन हो गयी। उनकी भक्ति और श्रद्धा पुनः वापिस आ गई। डोमिनिको चाहता था कि वह जीवित ही जला दिया जावे। सावोनारोला ने उसके उत्साह-अतिरेक को संयमित कर, समझाते हुए कहा "हमारा धर्म मृत्यु को वहन करना ही है। किस प्रकार हमारी मृत्यु हो, यह निर्णय करना हमारा काम नहीं।" सिलवेस्ट्रो को आश्वासन एवं प्रोत्साहन की जरूरत थी। सावोनारोला ने उससे कहा "मैं जानता हूँ, कि तुम जनसाधारण के सन्मुख अपनी निर्दोषिता प्रगट करने के लिये उत्सुक हो। मेरा आदेश यह है, कि तुम इस इरादे को छोड़ दो और प्रभु ईसा के उदाहरण का अनुगमन करो, जिन्होंने कि शूली पर चढ़ते हुए भी अपनी निर्दोपिता का प्रतिपादन करने के लिये कुछ भी नहीं कहा था।" शिष्य बिना कुछ कहे हुए नतमस्तक हो घुटने टेककर बैठ गये, और शान्ति तथा भक्ति के साथ उन्हों-ने सावोनारोला का आशीर्वाद ग्रहण किया। इसके बाद वे अपने २ कमरों में पहुँचाये गये।

सावोनारोला भी अपने कमरे में पहुँचा। रात बीत चुकी थी। वह थक गया था। उसे निद्रा आने लगी। दयाशील निको-लिनी की गोद में स्नेह भाव से अपना सिर रखकर वह लेट गया। उसे हलकी नींद आ गई। थोड़ी देर में वह उठ बैठा। सावोना-रोला ने निकोलिनी को धन्यवाद दिया, और कृतज्ञता भरे शब्दों में निकोलिनी से फ्लोरेंस पर आनेवाली विपत्तियों की चर्चा

की ओर कहा "याद रखना, ये सब बातें क्लीमेन्ट नामक पोप के समय में होंगी।" कहते हैं कि निकोलिनी ने इन्हें लिख लिया, और १५२९ में ये सब पूरी हुईं।

शेष रात्रि सन्यासियों ने ईश्वरोपासना में बिताई। प्रातःकाल पूजा के समय वे एक बार फिर मिले। सावोनारोला ने अर्घ्य-पात्र को उठाकर ईश्वर से प्रार्थना की कि "हे प्रभु, हमारे अपराध क्षमा करो। यदि मेरे द्वारा इस नगर का कोई अपकार हुआ हो, यदि अनजान में मैंने कोई अपराध किया हो, तो उसके लिये भी मुझे क्षमा-दान दो।" डोमिनिको और सिलवेस्ट्रो ने भी इन शब्दों को दुहराया। इतने ही में उन्हें वध-स्थल लेजाने के लिये सिन्योरी के सैनिक पहुँच गये।

मृत्यु-दण्ड की तैयारियां राजभवन के विशाल चौक में की गईं थीं, राजभवन के समीप तीन उच्चासन बने हुए थे। एक था धर्माधिकारी,वसोनाके विशप,के लिये। दूसरा:पोपके द्वारा भेजे गये विचार पतियों के लिये। तीसरा:फ्लोरेंस की न्याय-समिति के लिये।

इस स्थान से चौक की चौथाई दूरी तक बीच में एक मंच बनाया गया था। इसके दूसरे कोने पर एक बड़ा खंभा खड़ा किया गया था। उसके ऊपर एक मजबूत लकड़ी आड़ी लगी हुई थी। यह वध-स्तंभ था। इसका आकार क्रूश के समान था— एक ऊंचा स्तंभ और उसके दोनों तरफ़ एक एक भुजा। वध-स्तंभ से तीन रस्सियां और तीन लोहे की जन्जीरें लटक रही थीं। रस्सियां फांसी देने के लिये थीं और लोहे की जंजीरें शव को

लटकाने के लिये। स्तंभ के नीचे ईंधन का ढेर लगा हुआ था। जन-समूह प्राण-दण्ड के दृश्य को देखने के लिये उमड़ पड़ा था।

बन्दीग्रह से अपराधी वध-भूमि को लाये गये। वे सन्यासी का परिधान पहिने हुए थे। उनके हाथ बंधे व पैर नंगे थे। पहिले वे वसोना के बिशप के सन्मुख लाये गये। यहां उन्हें सन्यासी के पद से गिराने की प्रथा पूरी की गई। सावोनारोला से कहा गया कि भिक्षु-वस्त्र उतार दो। इस आकस्मिक मांग से उसे मार्मिक दुःख हुआ। किन्तु वह कर ही क्या सकता था! परिधान उतारते हुए उसने कहा "पुनीत परिधान, तुम्हें पहिनने की मेरी कितनी उत्कट अभिलाषा रही है! तुम मुझे ईश्वर की कृपा से प्राप्त हुए थे और मैंने कदापि तुम्हें कलंकित नहीं होने दिया। अब मैं तुम्हारा त्याग नहीं करता वरन् तुम मुझसे बलात् छीने जारहे हो।" सावोनारोला को सामने देखकर वसोना का बिशप घबड़ा गया और अपने को प्रकृतिस्थ नहीं रख सका। पदच्युत करते समय जो वाक्य कहे जाते थे, उन्हें वह भूल गया। "मैं तुम्हें युद्ध-प्रवृत्त चर्च से अलग करता हूँ" इसके स्थान पर यह सावोनारोला की बांह पकड़ कर, लड़खड़ाती हुई आवाज़ से बोला "मैं तुम्हें युद्ध-प्रवृत्त तथा विजयवान् चर्च से अलग करता हूँ।" सावोनारोला ने शान्त भाव से उस वाक्य को सुधारते हुए कहा "युद्ध-प्रवृत्त चर्च से, यह तो ठीक है, किन्तु विजयवान् चर्च से, यह ठीक नहीं, क्योंकि ऐसा करना तुम्हारा काम नहीं।" इस प्रकार वे सन्यासी के पद से गिराये गये।

तदनंतर केवल एक लंबा कुर्ता पहिने हुए तीनों बन्दी पोप के द्वारा भेजे गये विचारकों के सामने लाये गये । यहां रोमोलिनो ने नियमानुसार फैसला सुनाने की रीति पूरी की । उसने कहा—"तुमने धर्म-द्रोह तथा चर्च-विच्छेद का पाप किया है।" इसके बाद वे न्याय-समिति के सामने लाये गये। उनका एक सदस्य फ्रेन्सिसको सिनो अनुपस्थित था क्योंकि वह इस अन्याय में भाग नहीं लेना चाहता था। इस समिति ने नियमानुसार अन्तिम बार निर्णय पर मत लिया। सातों सदस्यों ने उसका अनुमोदन किया। तब अपराधियों को इस प्रकार आज्ञा सुनाई गई— "आठ सदस्यों की इस समिति ने तीनों सन्यासियों के वक्तव्य पर तथा उन अपराधों पर, जिनका कि सब हाल उन वक्तव्यों में मिलता है, तथा पोप द्वारा भेजे गये विचारकों के निर्णय पर; बड़ी सावधानी से विचार किया है और अब ये यह आज्ञा देते हैं कि इन तीनों सन्यासियों में से प्रत्येक को फांसी पर लटका दिया जाय और फिर वे जला दिये जायं, जिससे कि उनकी आत्मा उनके शरीर से पूर्णतया अलग होजाय।"

तब शांत चित्त तथा संयत चाल से बन्दी सन्यासी एक २ कर वध-स्तम्भ की ओर बढ़े। मंच के चारों तरफ जन-समूह उमड़ रहा था। कितने ही नीच लोग सन्यासियों पर दुर्वचनों की वर्षा करने लगे। सावोनारोला स्थिर चित्त से धीरे २ आगे बढ़ रहा था। किसी दयाशील नागरिक ने आगे आकर आश्वासन के कुछ शब्द कहे। सावोनारोला ने उत्तर दिया "अन्त

समय में ईश्वर ही मनुष्यों को सान्त्वना दे सकता है।" एक पुरोहित ने उससे पूछा "तुम किस भावना से प्राणोत्सर्ग कर रहे हो ?" सावोनारोला ने कहा "प्रभु ने मेरे लिये बहुत कष्ट सहन किये हैं !" यह कह कर उसने क्रूश का चुम्बन किया। इसके बाद उसने किसी से कुछ नहीं कहा।

सबसे पहिले जल्लाद सिलवेस्ट्रो को सीढ़ी पर चढ़ाकर फांसी तक लेगया। सिलवेस्ट्रो के मुंह से यह शब्द निकल ही रहे थे कि "हे प्रभु, मैं अपनी आत्मा को आपको समर्पित करता हूँ" कि जल्लाद ने उसके गले में फांसी का फन्दा लगा दिया और सीढ़ी पर से उसके पैर हटा दिये। दूसरे क्षण सिलवेस्ट्रो का प्राणहीन शरीर जंजीरों से लटकने लगा।

अब डोमिनिको की बारी आई। उसने कहा "अच्छी तरह याद रखना, सावोनारोला की भविष्यद्वाणी अवश्य सार्थक होगी। हम लोग निरपराध मर रहे हैं।" वह प्रसन्नता से जल्दी जल्दी चढ़कर फांसी तक पहुँचा। गले में फंदा लगा और डोमिनिको का शरीर भी लटकने लगा। खंभे के दोनों तरफ की फांसियों पर सिलवेस्ट्रो तथा डोमिनिको की मृत देह झूल रही थी।

शिष्यों के बाद सावोनारोला की बारी आई। वह किसी ऐसे दिव्य-ध्यान में मग्न था, उसका सारा व्यक्तित्व किसी ऐसी आध्यात्मिकता से आवृत था, कि मालूम होता था कि वह कोई दिव्य-जीव है। बीच की फांसी उसके लिये थी। वहां पहुंच कर उसने सिर उठाकर उस विशाल जन-समुदाय की ओर देखा जिसे

सन्मार्ग पर लेजाने के लिये उसने अथक परिश्रम एवं घोर तपस्या की थी। इसके बाद उसने सिर झुका दिया। जल्लाद ने उसके गले में फन्दा डाल दिया और फांसी पर लटका दिया। वध-स्तंभ के नीचे ईंधन का जो ढेर लगा हुआ था उसमें मशालों से आग लगा दी गई। सन्यासियों का प्राणहीन शरीर जलने लगा।

सावोनारोला के शत्रुगण इस दृश्य को देखकर नारकीय विजयोल्लास से फूले नहीं समाते थे। दुःखित और उदास भक्तगण भी वहां उपस्थित थे। अब तक भी उनके हृदय में यह आशा जीवित थी कि कोई अलौकिक चमत्कार होगा। जिस रस्सी से सावोनारोला के हाथ बंधे हुए थे, वह आग लगने से जल गई। इसी समय हवा का एक झोंका आया। इससे सावोनारोला के हाथ, रस्सी से मुक्त होकर, इस प्रकार हिलने लगे मानो जन-समूह को आशीर्वाद दे रहे हों। पियग्नोनी दल के लोगों ने इस दृश्य को देखा। तत्क्षण कितने ही लोग भक्ति-विह्वल हो पूजा-भाव से वहीं घुटने टेककर बैठ गये। स्त्रियां शोकावेग को न रोक सकीं, और सिसक २ कर रोने लगीं।

जहां भक्ति और क़रुणा का यह दृश्य था, वहीं अराबियाटी दल द्वारा नियुक्त बालकों का एक समूह वध-स्तंभ के आस-पास कूदने, नाचने, गाने तथा अध-जले शवों को पत्थरों से मारने लगा। इससे गतप्राण सन्यासियों के अंगों के टुकड़े कट २ कर गिरने लगे। यह देखकर कितने ही साहसी भक्तगण वध-स्तंभ के पास गये और स्मृति-चिन्ह बटोरने लगे। यह बात सिन्योरी

को अच्छी नहीं लगी। उन्होंने अपने दण्डधरों को आज्ञा दी कि इन लोगों को हटा दो, और सन्यासियों के भस्मावशेष को आर्नो नदी में डाल दो। ऐसा ही किया गया। इस प्रकार ४५ वर्ष की अवस्था में, ता० २३ मई १४९८ ईस्वी को, सन्यासी गिरोलमा सावोनारोला शहीद-पद को प्राप्त हुआ।

भक्तगणों ने सावोनारोला के स्मृति-चिन्हों को सावधानी से सुरक्षित रखा और उनकी पूजा करते रहे। उनका विश्वास था कि इनमें अद्भुत शक्ति है। सावोनारोला के प्राणोत्सर्ग के दृश्य से कितने ही शंकित-हृदय पुरुषों की आंखें खुल गईं। मृत्यु को शान्तभाव से आलिंगन करते हुए तपस्वी की निर्भय भव्य-मूर्ति, उनके हृदय-पटल पर सदा के लिये अंकित होगई।

लोग अपने २ घरों को लौटे। सारे नगर में मुर्दनी सी छागई थी। अराबियाटी तथा कंपग्नाकी दलों का पैशाचिक हर्षोल्लास उसे और भी भयानक बना रहा था। जो लोग अपने पाप-मार्ग में सावोनारोला को प्रधान कण्टक समझते थे, जिन लोगों को उसके बलिदान से स्वार्थ-सिद्धि की आशा थी, वे घमण्ड और हर्ष के भावों को लेकर लौटे। जिन २ नागरिकों में साधुता व धर्मशीलता की भावना शेष थी, उनके हृदय पर एक अज्ञात आतंक छा गया। शोक-विह्वल भक्तगण पश्चाताप, प्रेम तथा उपासना के भावों से गद्‌गद्‌ हो घरों को लौटे। सरकार उनकी दुश्मन थी। अब उनके पथ-प्रदर्शक की मृत्यु होचुकी थी, और उनकी कठिन परीक्षा का समय आगया था।

(२२)
उपसंहार

उसी दिन सिन्योरी ने पोप तथा इटली के अन्य शासकों के पास सावोनारोला की मृत्यु का समाचार भेज दिया। पोप को चिन्ता से मुक्ति मिली। उसके हर्ष का पारावार नहीं रहा। जिस समय उसे यह सुखद संवाद मिला, उस समय ब्रह्मचारियों के सिरमौर तथा ईसा के प्रतिनिधि कहलाने वाले पोप एलेक्जेंडर अपनी प्रेमिका गियूलिया फारनेसी से उत्पन्न अपने अनौरस पुत्र की धर्म-दीक्षा का उत्सव बड़े समारोह के साथ मना रहे थे। उसके चरित्र में जो कुछ भी संयम, लज्जा व शिष्टता बची थी, वह भी सावोनारोला की मृत्यु के बाद कूच कर गई और जीवन के वीभत्स अंत तक एलेक्जेंडर कामुकता एवं विलासिता का गुलाम बना रहा। पोप ने सावोनारोला के संहार के लिये फ्लोरेंस सरकार की भूरि २ प्रशंसा की और नागरिकों की धार्मिकता पर प्रसन्नता प्रगट की। मिलेन से लूडोविको ने भी बधाई के पत्र भेजे। किन्तु जो प्रतिज्ञायें उन्होंने की थीं, उनकी अब चर्चा तक नहीं उठाई।

चारों तरफ से फ्लोरेंस सरकार के पास प्रशंसात्मक पत्र आरहे थे। केवल फ्रांस ही एक अपवाद था। यह जानते हुए कि फ्रांस का राजा सावोनारोला का भक्त है, सिन्योरी ने वहां

ठोक २ समाचार नियमितरूप से नहीं भेजे थे। तथापि चार्ल्स के उत्तराधिकारी लूई १२ वें का उन्हें एक जरूरी पत्र मिला। इसमें लूई ने प्रार्थना की थी कि अनेक अत्यावश्यक कारणों से सावोनारोला का वध स्थगित कर दिया जाय। उसने लिखा कि इन कारणों का विस्तृत विवरण दूसरे पत्र में दिया जा रहा है। किंतु इस पत्र के पहुंचने से पहिले ही सन्यासियों की भस्म आर्नो के जल-गर्भ में विलीन हो चुकी थी!

फ्लोरेंस में अराबियाटी दल की तूती बोलती थी। पियग्नोनी दल का घोर दमन होने लगा। संतमार्क के विरुद्ध कितनी ही आज्ञायें निकाली गईं। कितने ही सन्यासी राज्य से निकाल दिये गये। जो नागरिक सावोनारोला से सहानुभूति रखते थे, उन पर भी सिन्योरी की शनिदृष्टि पड़ी। बहुत से अधिकारी-पद के निर्वाचन के अयोग्य कर दिये गये। बहुतों ने पोप के प्रतिनिधियों को रिश्वत देकर क्षमा मोल ली। कंपग्नाकी गुट्ट स्वच्छंदता से धार्मिक कार्यों में बाधा डालती, और सावोनारोला तथा उसके भक्तों के विरुद्ध नीच एवं अश्लील गीत गाते हुए नगर में घूमती। जो विद्वान् पहिले अपने को सावोनारोला का मित्र व प्रशंसक कहना गौरव की बात समझते थे, अब उसके शत्रु बन गये और उसकी तीव्र आलोचना कर लोकप्रिय बने रहनेको चेष्टा करने लगे।

परंतु सावोनारोला के सच्चे भक्त अपने गुरुदेव की स्मृति-पूजा श्रद्धा पूर्वक करते रहे। कोई गुप्त रीति से उसके सिद्धांतों के समर्थनमें ग्रंथों की रचना करते। कोई उसका जीवन-चरित्र लिखते।

कोई उसका गुणगान करने के निमित्त कविताओं व काव्यों की रचना करते। किसी ने उसके उपदेशों का संग्रह किया। रोम से आज्ञा आई कि सावोनारोला के उपदेश तथा रचनायें प्रकाशित न की जावें और कोई भी उसकी चर्चा तक न करे, उसका नाम तक न ले। किन्तु प्रशंसनीय अध्यवसाय एवं धैर्य के साथ भक्तगण आनेवाली सन्तान के लिये अपने हुतात्मा गुरुदेव के संबंध की ऐतिहासिक सामग्री को जुटाते रहे। पोप तथा सिन्योरी की निषेधाज्ञा के होते हुए भी, जिस स्थान पर सन्यासियों को फांसी लगी थी वहां भक्तगण घुटने टेके प्रार्थना में तन्मय दिखलाई देते। प्रतिवर्ष २३ मई को उस स्थान पर फूल चढ़ाये जाते। यह प्रथा सदियों तक जारी रही। सावोनारोला की स्मृति को मिटा देने की सभी चेष्टायें निष्फल हुईं। उसकी मृत्यु के बाद जो घटनायें घटीं, उन्होंने उसकी महानता को पूर्णतया सिद्ध कर दिखाया।

शीघ्र ही अराबियाटी दल को सावोनारोला की दूरदर्शिता के प्रमाण मिले। उन्हें पोप तथा लुडोविको से बहुत कुछ आशा थी। पाइरो नगर पर चढ़ाई करने के लिये आरहा था। लुडोविको उससे जलता था और खुद फ्लोरेंस पर अधिकार जमाना चाहता था। इसलिये उसने पाइरो के विरुद्ध सहायता दी। किन्तु उसकी मित्रता शत्रुता से अधिक भयंकर थी। पोप ने तुर्कों से सन्धि करली। वह धार्मिक पदों को निर्लज्जता से बेच २ कर धन संग्रह करता था। उसका ध्येय यही था कि अपने अनौरस पुत्र के लिये किसी राज्य की प्राप्ति करे। अतएव वह फ्लोरेंस पर तरह २

के संकट लाने लगा। कभी पाइरो को सहायता देता, कभी किसी उच्च घराने को राजद्रोह के लिये उसकाता। उसका पुत्र सीजर फ्लोरेंस-राज्य पर हमले करता और लोगों को लूटता। पोप तथा उसके पुत्र को शान्त बनाये रखने के लिये फ्लोरेंस सरकार उन्हें प्रतिवर्ष ३६,००० मुद्रायें देती, और लूटमार को चुपचाप सहन करती जाती। अन्त में नगर की रक्षा के लिये, उन्हें बरबश सावोनारोला की नीति का अनुसरण करना पड़ा। उन्होंने फ्रांस से मित्रता करली। पियग्नोनी दल का दमन बंद कर दिया। इस से उन्हें शान्ति मिली, उनकी रक्षा हुई। कुछ दिनों बाद उन्होंने पीसा पर भी अधिकार जमा लिया।

सावोनारोलाने जिन आपत्तियों की भविष्यद्वाणी की थी वे भी पूरी हुईं, फ्रांस-नरेश लुई १२ वें ने इटली पर चढ़ाई की। खून की नदियां बहीं। कितने ही नगर लूटे और जलाये गये। इटली को अपने पापों का दण्ड मिलता रहा। सन् १५०३ ई० में एले-क्जेन्डर की मृत्यु हुई। सन्यासी से विश्वासघात कर तथा उसके सन्देश का तिरस्कार कर, फ्लोरेंस भी विपत्तियों से नहीं बचसका। उसी की प्रेरणा से नगर को स्वाधीनता प्राप्त हुई थी। उसने कहा था कि सच्चरित्रता तथा धर्मशीलता को नागरिक-कर्त्तव्योंकी आधार-शिला बनाओ, कृतघ्न फ्लोरेंसवासी उन्हें भूल गये, परिणाम स्वरूप उन्हें दण्ड मिला—स्वतंत्रता का अपहरण, निरंकुश शासन की पुनः स्थापना। १५१२ ईस्वी में पोप तथा स्पेन-नरेश की सेनाओं की सहायता से मेडिसी-दल ने फ्लोरेंस पर अधिकार जमा लिया।

जैसा कि सावोनारोला ने पहिले ही कह दिया था, चर्च पर भी प्रहार प्रारंभ हुए। उसने चर्च के सुधार की आवाज उठाई थी। उसकी वाणी अनन्त नीरवता में विलीन हो चुकी थी, परंतु वह फिर दूसरे कण्ठ से शब्दायमान हुई। मार्टिन लूथर ने १५१७ ईस्वी में पोप के विरुद्ध जर्मनी में धार्मिक क्रान्ति का झण्डा उठाया। उसने सावोनारोला के सन्देश को दुहराया। किंतु लूथर पोप से किसी प्रकार का समझौता नहीं करना चाहता था। उसके जयघोष में विरोध के भाव तथा सुधार का उद्देश्य था। वह पोप-विरोधी सम्प्रदाय का प्रवर्त्तक बनगया, जिससे कि सदा के लिये ईसाई सम्प्रदाय दो भागों में विभाजित होगया। सदियों तक यूरोप धार्मिक युद्धों का क्षेत्र बना रहा। सावोनारोला ने पोप से न्याय की याचना करते हुए ईश्वरीय दण्ड की चेतावनी दी थी। जब इटली तथा यूरोप में सर्वत्र धार्मिक-विप्लव के भाव जागृत होगये और ईसाई-संसार दो रण-शिविरों में विभाजित होगया, जब कि रक्तपात, लूटमार तथा धर्म-विद्रोह सब कहीं फैल गये, उस समय सावोनारोला के भक्त जनों ने अपने गुरुदेव की भविष्यद्वाणी को सार्थक पाया। १५२७ ईस्वी में जर्मन-सम्राट चार्ल्स की सेना ने रोम को घेर लिया। पोप की राजधानी लूट ली गई। गिर्जाघर अस्तबल तथा शराब-घर बन गये। तब संशयवादियों तक को सावोनारोला के वचन याद आये। निकोलिनी ने सावोनारोला का अन्तिम सन्देश प्रकाशित किया। सब लोग उनके उपदेशों का मनन करने लगे। फ्लोरेन्स में एक वार फिर शहीद

सावोनारोला की प्रेरणा से जीवन-स्पंदन हुआ। पियग्नोनी दल सहसा लोक-प्रिय बन गया। मेडिसी मार भगाये गये। प्रजातन्त्र की स्थापना की गई। ईसा-मसीह एक बार फिर फ्लोरेन्स के शासक घोषित किये गये। कालान्तर में फिर प्रजातन्त्र का पतन हुआ। किन्तु यह पतन गौरवपूर्ण एवं वीरोचित था। प्रजातन्त्र पर जब प्रहार हुए तब फिर सन्तमार्क स्वतन्त्रता एवं देशभक्ति का केन्द्र बना। सदियों तक फ्लोरेन्स किसी न किसी निरंकुश सत्ता के आधीन रहा। पापाचार, अनैक्य एवं कृतघ्नता का दण्ड भोगने के अन्तर, सावोनारोला को मृत्यु के ३७० वर्ष बाद, जब इटली को मुक्ति मिली तो नवीन राष्ट्र की प्रथम प्रतिनिधि-सभा का अधिवेशन फ्लोरेन्स के उसी भवन में हुआ जिसे कि सावोनारोला ने महासभा के लिये बनवाया था और जिसका निर्माण उसकी अनन्य-निष्ठा एवं स्वातंत्र्य-प्रियता का स्मृति-स्तम्भ था।

पोप ने सावोनारोला के भौतिक शरीर को ही नहीं बरन् उसका नाम-निशान तक मिटा देने का भरसक प्रयत्न किया था। लूथर ने कहा—"इस महापुरुष को मृत्यु केवल इसीलिये दी गई थी कि वह चाहता था कि रोम के पवित्रीकरण के लिये किसी को आगे आना चाहिये। ईसा-शत्रु (पोप) की यह मनोकामना थी कि इस महात्मा की समस्त स्मृति उसके अभिशाप के बोझ से दब कर नष्ट हो जायगी। किन्तु तुम देखते कि वह अब भी जीवित है। उसकी स्मृति धन्य है। हमारे द्वारा ईसा मसीह उसे सन्त घोषित कर रहे हैं।" लूथर सावोनारोला को रोम-विरोधी

सुधार-आन्दोलन का पथ-प्रदर्शक मानता था। परन्तु सावोनारोला के भक्तगण लूथर के अनुयायी नहीं बने। सावोनारोला ने रोमन पोप के विरुद्ध इसलिये आवाज उठाई थी कि वह उसकी आज्ञा को धर्म विरुद्ध और न्याय-विरुद्ध मानता था और चाहता था कि चर्च का सुधार हो। धार्मिक सिद्धान्तों से उसका मतभेद नहीं था। परन्तु लूथर रोमन चर्च के कितने ही सिद्धान्तों और प्रथाओं का कट्टर विरोधी था। जब लूथर का आन्दोलन इस सीमा तक पहुँच गया कि उसे दबाना रोमन चर्च के अधिकारियों को असम्भव प्रतीत होने लगा, तब उन्होंने भी सुधार कार्य प्रारम्भ किया। इस समय उन्हें सावोनारोला की चेतावनी याद आई। बहुतों के हृदय में अब यह ज्ञानोदय हुआ कि यदि उसकी चेतावनी समय रहते मान ली जाती तो चर्च इस महान् विच्छेद एवं भीषण कलह से बच जाता, न धर्मके नाम पर खूनकी नदियां बहतीं और न देश के देश वीरान होते। क्योंकि सावोनारोला के बलिदान का नैतिक प्रभाव यह हुआ कि लोग समझ गये कि चर्च के अधिकारियों द्वारा चर्च के सुधार की आशा निराशा है, अतएव क्रान्ति अनिवार्य है। तब धीरे २ सावोनारोला की अनेक रचनाओं को प्रकाशित करने की अनुमति दे दी गई। उसके कितने ही ग्रन्थ रोमन चर्च के अन्तर्गत विद्यालयों में पाठ्य-पुस्तकों के रूप में चुने गये।

ईसाइयत के इतिहास में सावोनारोला का भविष्यद्‌वक्ता का पद निर्विवाद है। उसने कह दिया था कि समय रहते चर्च का सुधार कर लो, अन्यथा, विलंब करने से, भीषण क्रान्ति होगी

जिससे कि धर्म की एकता और प्रतिष्ठा को भारी हानि होगी। और हुआ भी ऐसा ही।

यूरोपीय इतिहास में पुनर्जागृति का युग 'आधुनिक सभ्यता' का जन्म-काल माना जाता है। वह युग बुद्धिवाद का युग था। उसकी प्रवृत्ति धर्म व सदाचार के प्रति संशय व उदासीनता से भरी थी। सावोनारोला का जीवन इन प्रवृत्तियों के विरुद्ध एक अनवरत संग्राम था। उसका सन्देश था कि बुद्धि,साहित्य, कला आदि को पुण्य की प्रेरणा शक्ति से विस्तृत व संयमित करो। वह बुद्धि, ईश्वर-भक्ति, सदाचार तथा स्वातन्त्र्य के समष्टीकरण द्वारा एक नूतन पथ का प्रदर्शन करना चाहता था। इसी प्रयास में उसे आत्म-बलिदान देना पड़ा। इस दृष्टि से हम उसे आधुनिक सभ्यता का एक नियति-विधायक कह सकते हैं।

यद्यपि सावोनारोला का जीवन अपने युग,अपने देश तथा धर्म के रंग से रंगा हुआ है,तथापि उसमें अनेकों तत्व ऐसे हैं जो कि सब देश,सब काल तथा सब जातियों के सामने किसी न किसी रूप एवं मात्रा में अवश्य आते रहते हैं। संसार-त्यागी सन्यासी, संसार के कल्याण के लिये, किस भांति सांसारिकता से संबंध रखते हुए भी उससे विरक्त रह सकता है, और किस प्रकार आदर्शोपासक, आदर्श की अनन्य उपासना करते हुए, सांसारिक हानि-लाभ व जय-पराजय से ऊंचे उठ कर,ईश्वर-भक्ति में ही अपने जीवन-कार्यकी सिद्धि को देखता है-ये सब प्रश्न किसी देश,जाति व धर्ममें सीमित नहीं।

नैतिक व धार्मिक दृष्टि से संसार के इतिहास का निष्कर्ष दो

शब्दों में निकाला जा सकता है—पाप और पुण्य का अनवरत संग्राम, ईश्वर और शैतान की शक्तियों का चिरंतन द्वन्द्व। महात्मा वही है जो कि ईश्वर की सेवा में, पुण्य की उपासना में, अपना सब कुछ अर्पण करने को तैयार रहता है। ईश्वर से कार्य के निमित्त जो सर्वश्रेष्ठ दान एवं सर्वोत्कृष्ट त्याग मनुष्य के हाथ में है, वह है अपने जीवन का। और जितना ही यह जीवन पवित्र एवं महान् होता है, उतना ही गौरवपूर्ण वह बलिदान होता है, और उतनी ही अधिक प्रतिष्ठा ईश्वर की संसार में होती है। मनुष्य का सब से बड़ा अधिकार यही है, कि धर्म एवं पुण्य के ईश्वरीय आदर्श की कर्ममय उपासनामें, यातना एवं तिरस्कार को गम्भीर विरक्त भाव से सहन करते हुए,अपने प्राणों की आहुति द्वारा अपने निःस्वार्थ एवं पवित्र जीवन की लीला का संवरण करे। संसार-दीपकके लिये ऐसी ही हुतात्माओं का रक्त स्नेह-स्वरूपहोता है। स्वार्थ, वासना, दासत्व एवं पाखण्ड के शैतानी कोलाहल में, ऐसे लोगों की ध्वनि ही ईश्वर के अस्तित्वएवं महिमा को निरन्तर घोषित करती रहती है,ऐसी ही आत्मायें अपने बलिदान से संसार में ईश्वरीय तत्वको अमर बनाते हैं,काल एवं शैतान के विकराल गर्भ में विलीन होने से जो धर्म आज बचे हुए हैं, उनके इतिहास में ऐसे महान् वीरों का वृतान्त सर्वत्र मिलता है। सात्रोनारोला भी इसी श्रेणी का एक महान् हुतात्मा था। उसी के समान महा-पुरुषों के आत्म-बलिदान से आज ईसाई-धर्म जीवित है, अमर है।

□ समाप्त □

